श्री अभय जैन ग्रन्थमाला पुष्प ३०

शासनप्रभावक आचार्य जिनप्रभ
और
उनका साहित्य

लेखक
महोपाध्याय विनयसागर

प्रकाशक
जयपुर निवासी श्री छुट्टनलाल वैराठी एवं श्री राजरूप जी टांक
प्रदत्त आर्थिक सहायता से
श्री अगरचन्द नाहटा
संचालक, अभय जैन ग्रन्थमाला
नाहटों की गवाड़, बीकानेर

भ० महावीर निर्वाण
महोत्सव वर्ष (सं० २५०१)

मूल्य ५.००

पुस्तक मिलने का स्थान

१. श्री अभय जैन ग्रन्थालय
नाहटों की गवाड़
बीकानेर (राजस्थान)

२. नाहटा ब्रदर्स,
४. जगमोहन मल्लिक लेन
कलकत्ता–७.

३. जौहरी श्री राजरूप जी टांक
जौहरी बाजार, टांक भवन,
जयपुर–३ (राजस्थान)

४. श्री छुट्टनलाल जी वैराठी
जौहरी बाजार
जयपुर–३. (राजस्थान)

महावीर निर्वाण सं० २५०१
विक्रम सं० २०३२

ईस्वी सन् १९७५

मुद्रक
महावीर प्रेस,
भेलूपुर, वाराणसी ।

शासन प्रभावक श्री जिनप्रभ सूरि मूर्ति
(शत्रुंजय महातीर्थ खरतर बसही)

प्रकाशकीय

जैन-शासन की प्रभावना करने वाले महान् आचार्यों ने समय-समय पर शासन की रक्षा, प्रभावना और जैन-धर्म का प्रचार करके शासन का गौरव बढ़ाया है। भगवान् महावीर का शासन ढाई हजार वर्षों तक अविच्छिन्न रूप से सुचारु रूप में जो चला आ रहा है, यह उन्हीं आचार्यों की महान् देन है। जैन-धर्म में उन शासन-प्रभावक आचार्यों की बड़ी भक्ति-भाव से प्रशंसा और पूजा की जाती रही है, उनमें खरतर-गच्छ के महान् आचार्यों का विशिष्ट एवं उल्लेखनीय स्थान है। खरतर-गच्छ के आचार्यों में युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि जी, उनके शिष्य मणिधारी जिनचंद्रसूरि जी और उनकी परम्परा में प्रगट-प्रभावी श्री जिनकुशलसूरिजी और सम्राट् अकबर प्रदत्त युगप्रधान पद-धारक श्री जिनचन्द्रसूरि जी—ये चार तो दादा साहब के नाम से प्रसिद्ध और पूज्यमान हैं। उनकी प्रतिमाएँ, चरण दादावाड़ियों और जिनालयों में सैकड़ों हजारों की संख्या में भारत के कोने-कोने में विद्यमान-पूज्यमान हैं। उनकी जीवनी और स्तवना सम्बन्धी सैकड़ों रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उससे भी अधिक अप्रकाशित स्तवनादि साहित्य ज्ञान-भंडारों में पड़ा है। इन चारों दादा गुरुओं के जीवन-चरित्र हम बहुत वर्ष पूर्व प्रकाशित कर चुके हैं और उनके संस्कृत व गुजराती अनुवाद भी छप चुके हैं, कुछ छपने वाले हैं।

युगप्रधान चारों दादा साहब की ही भाँति खरतर-गच्छ में एक पाँचवें दादाजी महान् शासन-प्रभावक और हो चुके हैं जिनके सम्बन्ध में जनसाधारण को बहुत ही कम जानकारी है। कई वर्ष पूर्व पं० लालचंद भगवान गांधी के लिखित "जिनप्रभसूरि अने सुलतान मुहम्मद" नामक गुजराती भाषा व देवनागरी लिपि में ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था, उसके बाद हमने विधिमार्ग-प्रपा के प्रारम्भ में श्रीजिनप्रभकी जीवनी संक्षेप में प्रकाशित की थी। आव-

श्यकता थी ऐसे महान् विद्वान् और शासन-प्रभावक आचार्य के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर स्वतंत्र ग्रन्थ प्रकाशन की । महोपाध्याय विनयसागरजी के प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा उस आवश्यकता की पूर्ति बहुत अच्छे रूप में हो रही है । हमारी प्रेरणा व सहयोग से उन्होंने यह ग्रंथ कई वर्ष पूर्व तैयार कर दिया था पर अभी तक प्रकाशन-सुयोग नहीं मिल सका था ।

जययुर के श्रीमालवंश-विभूषण छुट्टनलालजी वैराठी एवं श्री राजरूपजी टांक ने प्रकाशन के लिए आर्थिक सहयोग देकर हमें प्रकाशन का सुअवसर दिया अतः हम उनके आभारी हैं । भ० महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के मंगलमय प्रसंग में उन्हीं के शासन के एक महान् आचार्य का जीवन-चरित्र प्रकाशित करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री विनयसागर जी ने प्राप्त समस्त साधनों और सूरि जी द्वारा रचित साहित्य का भली-भाँति उपयोग करते हुए उनके अप्रकाशित स्तोत्रों के साथ पुस्तक तैयार करके गच्छ और गुरुभक्ति का जो आदर्श उपस्थित किया है, उसके लिए हम उनके सविशेष आभारी हैं । इस ग्रन्थ में जिनप्रभसूरि जी के समस्त स्तोत्रों को प्रकाशित करने के लिए प्रेसकापी तैयार की गई थी, पर वैसा करने पर व्यय व समय अधिक लगता इसलिए प्रकाशित स्तोत्रों की केवल सूची देकर सन्तोष करना पड़ा है और अप्रकाशित स्तोत्र ही प्रस्तुत ग्रन्थ में दिए जा सके हैं ।

श्रीमालवंश-विभूषण श्री जिनप्रभसूरिजी चौदहवीं शताब्दी के महान् विद्वान् और तत्कालीन सम्राट् मुहम्मद तुगलक को जैन-धर्म का बोध देकर जैन-शासन का गौरव बढ़ाने वाले महापुरुष हो गए हैं । उनमें सम्राट् से मिलने और विशिष्ट सम्मान प्राप्त करने के विश्वस्त उल्लेख तत्कालीन प्रामाणिक ग्रन्थों में पाये जाते हैं । सूरिजी के विविध-तीर्थकल्प नामक ग्रन्थ में कन्यानयनीय महावीर-तीर्थकल्प और कल्प परिशेष में उन घटनाओं का समावेश होने के कारण उनकी प्रामाणिकता एवं महत्त्व निर्विवाद है । आपके

सम्बन्ध में रचित समकालीन गीतों को हमने बहुत वर्ष पूर्व उन्हीं की परम्परा की प्राचीन संग्रह-प्रति से लेकर अपने सम्पादित 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित कर दिये थे। इसके बाद समकालीन परवर्ती खरतर-गच्छीय सामग्री के अतिरिक्त सूरिजी के सम्बन्ध में तपागच्छीय दो विद्वानों ने चामत्कारिक प्रवादों का अपने ग्रन्थों में संग्रह किया है, वह भी बहुत ही उल्लेखनीय एवं महत्त्वपूर्ण है।

आचार्यश्री के कई ग्रन्थ तो भारतीय व जैन-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उनमें से विविध-तीर्थकल्प तो अपने ढंग का एक ही ग्रन्थ है जिसमें उस समय के प्रसिद्ध जैन-तीर्थों सम्बन्धी पौराणिक और ऐतिहासिक जानकारी प्राकृत और संस्कृत, गद्य एवं पद्य उभय रूप में दी गई है। इसी तरह 'विधिप्रपा' में जैन विधि-विधानों सम्बन्धी जितनी अच्छी जानकारी प्राप्त होती है वैसी अन्य ग्रन्थों में उस रूप में किसी एक ही ग्रन्थ में अन्यत्र दुर्लभ है। ये दोनों ग्रन्थ सुसम्पादित रूप में प्रकाशित हैं। श्रेणिक द्व्याश्रय महाकाव्य आदि भी आपकी विशिष्ट रचनाएँ हैं। उक्त द्वाश्रय बहुत वर्षों पहले गुजराती अनुवाद सहित अपूर्ण ही छपा इसका सुसम्पादित पूर्ण संस्करण सानुवाद और साहित्यिक अध्ययन सहित प्रकाशित किया जाना अपेक्षित है।

स्तोत्रों के क्षेत्र में तो जिनप्रभसूरिजी का सर्वोच्च स्थान है। विविध प्रकार के इतने अधिक व उच्चस्तर के स्तोत्र आपके ही प्राप्त हैं। खेद है कि ७०० स्तोत्रों में से अब केवल १०० के भीतर ही आपके रचित स्तोत्र उपलब्ध हैं। आपकी अप्रकाशित रचनाएँ अभी भी बहुत-सी मिलनी चाहिए पर खरतर-गच्छ की जिस लघु आचार्य-शाखीय श्रीजिन-सिंहसूरि जी के आप पट्टधर थे, उस शाखा का अस्तित्व न रहने से रचनाएँ सुरक्षित नहीं रह सकीं।

महान् श्वेताम्बर तीर्थ शत्रुञ्जय की खरतर-वसही में आपकी एक प्रतिमा स्थापित है जिसका ब्लाक प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रकाशित किया जा रहा है।

आपकी परम्परा की एक विशिष्ट संग्रह-प्रति बीकानेर के वृहद्-ज्ञान भंडार में हमें प्राप्त हुई और एक उल्लेखनीय विशिष्ट संग्रह गुटका हमारे अभय जैन ग्रन्थालय के कला-भवन में प्रदर्शित है। आपकी परम्परा में कई आचार्य और मुनिगण अच्छे विद्वान् हुए हैं जिनका कुछ परिचय प्रस्तुत ग्रन्थ में दिया गया है। अठारहवीं शताब्दी तक तो आप की परम्परा चलती रही पर आचार्य-परम्परा १७ वीं शती में समाप्त हो गई थी। महान् टीकाकार चारित्रवर्द्धन आपकी परम्परा के उल्लेखनीय विद्वान् हैं।

परिशिष्ट में जिनप्रभसूरि गुण-वर्णन एवं छप्पय त्रय दिये गये हैं। वैसे पट्टावलियों आदि में और भी कई उल्लेख और पद्य पाये जाते हैं। प्राप्त सामग्री से यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि सारे जैन-शासन में आप जैसे आचार्य विरले ही हुए हैं। ऐसी महान् विभूति के सम्बन्ध में यह ग्रन्थ प्रकाशित करते हुए हमें असीम हर्ष का अनुभव होना स्वाभाविक है। इससे भारतीय इतिहास का एक नया पृष्ठ खुलेगा। ऐसे महान् आचार्य का हमारे ऐतिहासिक एवं साहित्यिक ग्रन्थों में उल्लेख होना ही चाहिए।

—अगरचन्द नाहटा

दो शब्द

विद्वच्छिरोमणि महाप्रभाविक आचार्य श्रीजिनप्रभसूरिजी रचित अनेक विधाओं, अनेक भाषाओं एवं यमक-श्लेष परिपूर्ण स्तोत्र-साहित्य की ओर मैं बचपन से ही आकृष्ट रहा। वर्षों पूर्व मेरी अभिलाषा थी कि आचार्यश्री के प्राप्त समग्र स्तोत्रों का संकलन प्रकाशित हो तो भक्तजन एवं विद्वद्गण अधिक लाभ ले सकेंगे। इसी अन्तःप्रेरणा से प्रेरित होकर मैंने सन् १९६० तक प्राप्त समग्र स्तोत्रों का संकलन करना प्रारम्भ किया था। विजयधर्म-लक्ष्मी-ज्ञान मन्दिर आगरा के संग्रहस्थ स्वाध्याय पुस्तिका के ४ स्तोत्रों को छोड़कर, प्रकाशित एवं अप्रकाशित समग्र स्तोत्रों की मैंने पाण्डुलिपि तैयार कर ली और उक्त संग्रह के परिचय-स्वरूप भूमिका भी ३१ जनवरी १९६१ को लिखकर पूर्ण कर दी थी। संयोगवश आज तक यह संग्रह प्रकाशित न हो सका। किन्तु मुझे प्रसन्नता है कि केवल वही 'भूमिका' आज बारह वर्ष पश्चात् पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो रही है।

आचार्यश्री के जीवन-चरित्र आलेखन में मैंने मुख्यतः 'वृद्धाचार्य प्रबन्धावली', उपाध्याय जयचन्द्र गणि भण्डारस्थ 'पट्टावली', विजयधर्मलक्ष्मी ज्ञानभण्डारस्थ १ पत्रात्मक अपूर्ण 'पट्टावली', श्री सोमधर्म गणि रचित 'उपदेशसप्ततिका', श्री शुभशील गणि रचित 'पंचशती कथा-प्रबन्ध', पं० लालचन्द भगवान् गांधी लिखित 'श्रीजिनप्रभसूरि अने सुलतान मुहम्मद' पुस्तक, श्री अगरचन्द्र जी भंवरलाल जी नाहटा लिखित 'शासन प्रभावक श्रीजिनप्रभसूरि' नामक लेख एवं स्वयं जिनप्रभसूरि रचित 'कन्यानयन-तीर्थकल्प' आदि अन्तःसाक्ष्य ग्रन्थों का उपयोग किया है।

आचार्यश्री की चामत्कारिक घटनाओं का उल्लेख १६ वीं शताब्दी में तपागच्छीय सोमधर्म गणि एवं शुभशील गणि ने किया है। वर्तमान समय में भी पुरातत्त्वज्ञ डॉ. जी. व्युह्लर ने 'विविधतीर्थकल्प' गत

'मथुराकल्प' पर स्वतन्त्र निबन्ध लिखा, तब से ही जैन-विद्वानों का ध्यान इस ओर गया। खरतरगच्छीय स्व० श्रीजिनहरिसागरसूरिजी, उपाध्यायश्री सुखसागरजी म. के प्रयत्नों से और पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजयजी के सम्पादित ग्रन्थों, पं० लालचन्द भ. गांधी, श्री अगरचन्दजी नाहटा के लिखित जीवन-चरित्र एवं लेखों तथा स्व० चतुरविजयजी आदि विद्वानों द्वारा सम्पादित कतिपय स्तोत्र-संग्रहों में प्रकाशित स्तोत्रों से आचार्य जिनप्रभ के व्यक्तित्व और कृतित्व की कुछ झलक विद्वानों के सम्मुख आई। किन्तु आज भी जिनप्रभसूरि का अधिकांश साहित्य अप्रकाशित ही है। अतः विद्वानों और साहित्य-प्रकाशिनी संस्थाओं से मेरा अनुरोध है कि जिनप्रभसूरि रचित न केवल स्तोत्र-साहित्य ही अपितु श्रेणिकचरित (द्वयाश्रयकाव्य), कल्पसूत्र-संदेहविषौषधि टीका, अनेकार्थ-संग्रह टीका एवं विदग्धमुखमण्डन टीका आदि ग्रन्थों का सुसम्पादित संस्करण अवश्य प्रकाशित करें, जिससे आचार्यश्री के कृतित्व का विद्वज्जगत् पूर्णरूपेण मूल्यांकन कर सके।

जिनप्रभसूरि उल्लिखित कविदर्पण—

श्री जिनप्रभसूरि ने वि० सं० १३६५ में 'अजितशान्तिस्तव' पर टीका की रचना की है। टीका की प्रान्तपुष्पिका में लिखा है—इस स्तोत्र में छन्दों के लक्षण मैंने प्रायः करके 'कविदर्पण' के आधार से स्व-परोपकार हेतु प्रदान किये हैं। अतः मैं 'कविदर्पण' का 'उपजीव्य' हूँ।

कविदर्पणमुपजीव्य प्रायेण च्छन्दसामिह स्तोत्रे।
स्वपरोपकारहेतोरभिदधिरे लक्षणानि मया॥

'उपजीव्य' शब्द पर विचार करने के पूर्व कविदर्पणकार एवं उसके रचनाकाल के सम्बन्ध में विचार करना अपेक्षित है।

कविदर्पण टीका के साथ प्रोफेसर हरि दामोदर (एच० डी०) वेलणकर, सह-संचालक भारतीय विद्या भवन, बम्बई द्वारा सुसम्पादित होकर, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से सन् १९६२ में प्रकाशित हो

चुका है। उसकी प्रस्तावना में पृष्ठ ४ पर सम्पादक ने लिखा है कि कविदर्पण का प्रणेता कोई खरतरगच्छीय विद्वान् ही है।

कविदर्पण की टीका में टीकाकार ने छन्द-लक्षणों के उदाहरणों में कई उदाहरण ऐसे दिये हैं जिनमें धर्मसूरि (पृ० २१), समुद्रसूरि (पृ० २८), तिलकसूरि (पृ० ४६), यशोघोषसूरि (पृ० ३७), सूरप्रभसूरि (पृ० ४६), लक्ष्मीसूरि (पृ० ३९), आदि जैनाचार्यों के स्तुति एवं प्रशंसापरक पद्य हैं, तो कतिपय उदाहरण पादलिप्तसूरि (पृ० ८), हेमसूरि (पृ० ४३), जिनसिंहसूरि (पृ० २४), सूरप्रभसूरि (पृ० ४४), तिलकसूरि (पृ० ३४) आदि आचार्यों द्वारा प्रणीत हैं।

पूर्वोक्त आचार्यों में से सूरप्रभसूरि, तिलकसूरि और जिनसिंहसूरि खरतरगच्छ के आचार्य एवं श्रेष्ठ विद्वानों में से हैं। इन तीनों आचार्यों का समय वि० सं० १२५० से १३४० के मध्य का है। जिनसिंहसूरि तो अजितशान्तिस्तव टीका के टीकाकार जिनप्रभसूरि के गुरु ही हैं। अतः यह तो निःसंदेह कहा जा सकता है कि यह कृति किसी खरतरगच्छीय जैनाचार्य द्वारा ही प्रणीत है।

कविदर्पण की टीका में पृ० ८ पर 'शूर (सूर) परिभाषेयं पूज्यप्रयुक्ता' वाक्य प्राप्त होता है। 'सूर की यह परिभाषा पूज्य द्वारा प्रयुक्त है' इस वाक्य से सूरप्रभाचार्य के लिये कल्पना की जा सकती है कि इन्होंने भी छन्दःशास्त्र का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ बनाया था, जो उस समय उपलब्ध था।

टीका में पृ० ३३, ३५, ३६, ३७ पर 'छन्दःकन्दली' नामक छन्दोग्रन्थ के उदाहरण भी कतिपय स्थलों पर प्राप्त हैं। उदाहरणों की भाषा देखते हुये छन्दःकन्दलीकार भी जैन-विद्वान् ही प्रतीत होते हैं।

जिनसिंहसूरि के गुरुभ्राता श्री जिनप्रबोधसूरि रचित 'वृत्तप्रबोध' (उल्लेख-युगप्रधानाचार्य गुर्वावली पृ० ५७) नामक छन्दोग्रन्थ का इसमें कहीं भी उल्लेख न होने से अधिक सम्भावना यही है कि इस ग्रन्थ का प्रणेता लघु खरतरशाखीय जिनसिंहसूरि का सहाध्यायी या शिष्य हो! किन्तु जब तक कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त न हो जाय तब तक कर्त्ता के सम्बन्ध

में निश्चित रूप से निर्णय नहीं किया जा सकता, केवल अनुमान ही किया जा सकता है।

कविदर्पण का सर्वप्रथम उल्लेख वि० सं० १३६५ में जिनप्रभसूरि ने किया है। अतः यह निश्चत है कि कविदर्पण की रचना वि० सं० १३६५ के पूर्व हो चुकी थी। खरतरगच्छीय पट्टावलियों के अनुसार जिनसिंहसूरि वि० सं० १२८० में आचार्य बने थे। अतः पृष्ठ २४ पर प्राप्त 'जिनसिंह-सूरि कृत 'चूडालदोहक' से स्पष्ट है कि वि० सं० १२८० के पश्चात् ही इसका निर्माण हुआ है। इसलिये कविदर्पण का रचना समय १२८० से १३६५ के मध्य में माना जा सकता है।

जिनप्रभसूरि ने अजितशान्तिस्तव के छन्दों के लक्षण-निर्धारण में ८, ३२, ३३ वीं गाथाओं के लक्षण हेमचन्द्रसूरि कृत 'छन्दोनुशासन', गाथा २४, २५ के लक्षण केदारभट्ट कृत 'वृत्तरत्नाकर', गाथा ३ री सिलोगो (श्लोक) का लक्षण 'नन्दिताढ्य छन्दःग्रन्थ' और गाथा तथा मागधिका छन्द के लक्षण 'कविदर्पण' के आधार से दिये हैं। शेष समस्त छन्दों के लक्षण किस छन्दोग्रन्थ के आधार से दिये हैं, उल्लेख न होने से स्पष्ट नहीं हैं। किन्तु 'कविदर्पणमुपजीव्य प्रायेण च्छन्दसामिह स्तोत्रे' पंक्ति से स्पष्ट ध्वनित है कि प्रायः करके समस्त छन्दों के लक्षण कविदर्पण के ही प्रदान किये हैं। यदि केवल दो छन्दों के लक्षण मात्र कविदर्पण के देने अभीष्ट होते तो 'उपजीव्य' और 'प्रायेण' शब्दों का प्रयोग कदापि सम्भव नहीं था। ऐसी अवस्था में प्रायः समस्त छन्दों के लक्षण कविदर्पण के ही स्वीकार करने होंगे।

अजितशान्तिस्तव टीका में, प्राकृत भाषा में उद्धृत छन्दों के लक्षण कविदर्पण के मुद्रित संस्करण में प्राप्त नहीं हैं। अतः निश्चित है कि सम्पादक महोदय को प्राप्त आदर्श प्रति पूर्णरूपेण खण्डित एवं अपूर्ण ही थी। अतः शोध-विद्वानोंका कर्त्तव्य है कि इसकी पूर्ण प्रति की शोध करें एवं उसके प्राप्त होने पर उसे प्रकाश में लाने का प्रयत्न करें।

रहस्यकल्पद्रुम

इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में प्रस्तुत पुस्तक के पृष्ठ ११८ पर मैंने लिखा है कि—"रहस्य कल्पद्रुम नामक ग्रन्थ में जैन समाज में प्रचलित अनेक मन्त्रों के इष्ट प्रयोगों का अनुकथन है। पूर्ण ग्रन्थ प्राप्त न होकर कुछ प्रयोग मात्र ही प्राप्त हैं।"

श्रीजैनप्रभसूरि के स्वर्गवास के ५-७ वर्ष पश्चात् ही रुद्रपल्ली गच्छीय श्री सोमतिलकसूरि ने सं० १३९७ में रचित त्रिपुराभारती लघुस्तव पद्य ६ की टीका में इस ग्रन्थ का उल्लेख करते हुए निम्न अंश उद्धृत किया है।

"यदाहुः श्रीजिनपदसूरिपादा रहस्ये—पुंसो वश्यार्थं शिवाक्रान्तं शक्तिबीजं रक्तध्यानेन। स्त्रियास्तु वश्यार्थं शक्त्याक्रान्तं शिवबीजं ध्यायेदिति।"

ग्यारह पत्रात्मक इस ग्रन्थ का केवल अन्तिम ग्यारहवाँ पत्र श्रीनाहटा जी को प्राप्त हुआ है। ग्यारहवें पत्र की लेखन प्रशस्ति के अनुसार यह प्रति वि० सं० १५४६ श्रावण शुक्ला १३ गुरुवार के दिन मण्डपदुर्ग (मांडवगढ़) में खरतरगच्छीय श्रीजिनप्रभसूरि, श्री जिनचन्द्र सूरि के पट्टधर श्रीजिनसमुद्रसूरि के धर्मसाम्राज्य में महोपाध्याय श्री तपोरत्न के शिष्य वाचनाचार्य श्री साधुराज गणि के आदेश से और भक्तिवल्लभ गणि के सानिध्य में शिष्यलेश ···· ने लिखा था।

इस प्राप्त पत्र में महात्मातंगिनी, रक्तचामुण्डा, प्रत्यंगिरा देवी के उच्चाटन, आकर्षण, कार्मण सम्बन्धी मन्त्र प्राप्त हैं और अन्त में औषध के प्रयोग भी हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि मान्त्रिक रहस्यों के साथ-साथ औषध के अनुभूत प्रयोग भी इस ग्रन्थ में सम्मिलित हैं। भंडारों में इस ग्रन्थ के खोज की आवश्यकता है। पूर्ण ग्रन्थ प्राप्त होने पर मान्त्रिक रहस्यों व अनुभूत प्रयोगों पर विशेष प्रकाश पड़ सकता है।

आभार

प्रसिद्ध साहित्यसेवी विद्वान् श्री अगरचन्दजी नाहटा की सतत प्रेरणा और सामग्री संकलन में पूर्ण सहयोग मुझे सदैव ही प्राप्त होता रहा है। अतः श्री नाहटाजी का मैं अत्यन्त ही आभारी हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक में प्रूफ-संशोधन में असावधानी अधिक रहने से अशुद्धि-बाहुल्य रहा है, जिसका मुख्य कारण प्रकाशक महोदय का प्रेस वालों पर आधारित रहना ही प्रतीत होता है। अतः पाठकों के प्रति मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

३३ A, न्यू कॉलोनी गुमानपुरा,
कोटा
दिनाङ्क २२–१०–१९७३

म० विनयसागर

विषयानुक्रम

	पृष्ठाङ्क
तत्कालीन स्थिति	
मुहम्मद-तुगलक-कालीन भारत	२
राजनीतिक स्थिति	३
सामाजिक दशा	६
आर्थिक स्थिति	७
धार्मिक जीवन	९
साहित्यिक विकास	१०
सांस्कृतिक मूल्यांकन	११
गुरु-परम्परा	
आचार्य वर्द्धमान और जिनेश्वर सूरि	१२
जिनचन्द्रसूरि	१६
अभयदेवसूरि	१६
जिनवल्लभसूरि	१७
युगप्रधान जिनदत्तसूरि	२०
मणिधारी जिनचन्द्रसूरि	२२
जिनपतिसूरि	२३
जिनेश्वरसूरि	२६
जन्म, दीक्षा और आचार्य पद	
जन्म	२७
आचार्य जिनसिंहसूरि	२८
पद्मावती आराधना	३०

सुभटपालकी दीक्षा और आचार्य पद ३२
जन्म-दीक्षा-आचार्यपद संवत् ३३
दीक्षा-नाम ३४
अध्ययन और अध्यापन ३५
तीर्थयात्रा और विहार ३९
सोमप्रभसूरिसे मुलाकात या सोमतिलकसूरिसे ४४
मुहम्मद तुगलक प्रतिबोध और तीर्थ-रक्षा ४५
संघरक्षा और तीर्थरक्षाके फरमान ४७
कन्यानयनीय महावीर प्रतिमाका इतिहास और उद्धार ४८
देवगिरिकी ओर विहार और प्रतिष्ठानपुर यात्रा ५४
देवगिरिके जैन मन्दिरोंकी रक्षा ५५
सम्राट्का पुनः स्मरण और आमन्त्रण ५६
देवगिरिसे प्रयाण और अल्तावपुरमें उपद्रव-निवारण ५६
दिल्लीमें सम्राट्से पुनर्मिलन ५७
पर्युषणमें धर्मप्रभावना ५८
दीक्षा और बिम्ब प्रतिष्ठादि उत्सव ५८
सम्राट् सर्मपित भट्टारक सरायमें प्रवेश ५८
मथुरा तीर्थका उद्धार ५९
हस्तिनापुरकी यात्रा और प्रतिष्ठा ५९
स्वर्गवास ६०
चमत्कारी घटनाएँ
मुहम्मदशाहसे मुलाकात ६२
मुहम्मदशाहकी राणी बालादेका व्यन्तरोपद्रव दूर करना ६३
राघव चैतन्यका अपमान ६४
कलंदरका गर्वहरण ६६
अद्भुत निमित्त कथन ६७
वटवृक्षको साथ चलाना ६८

क्या भोजन करूँगा ?	६८
मीठी कहाँ	६८
सरोवर छोटा कैसे हो ?	६९
पृथ्वी पर मोटा फल कौन सा ?	६९
विजय-यन्त्र महिमा	६९
मरुस्थलमें दान	७०
ज्वरका जलमें आरोप	७०
तैलंग बन्दी मोचन	७०
अमावस्याकी पूर्णिमा	७१
महावीर प्रतिमाका बोलना	७१
रायणवृक्षसे दूध बरसाना	७२
चौसठ योगिनी प्रतिबोध	७३
संघका उपद्रव निवारण	७४
आचार्य सोमप्रभसे मिलाप और चूहोंको शिक्षा	७५
खंडेलपुरके निवासियोंको जैन बनाना	७६
कंवला तपा विवाद निवारण	७७
शिष्य-परम्परा	
आचार्य जिनदेवसूरि, जिनमेरुसूरि, जिनहितसूरि	७७
जिनसर्वसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनसमुद्रसूरि	७९
वाचनाचार्य चारित्रवर्द्धन	७९
जिनतिलकसूरि, जिनराजसूरि, जिनचन्द्रसूरि,	८८
जिनभद्रसूरि, जिनमेरुसूरी, जिनभानुसूरि	८८
विद्वद्-परम्परा	८८
साहित्य-सर्जना	९०
स्तोत्र	९८
आचार्य जिनप्रभका साहित्य	
काव्य	१०२

व्याकरण १०६
अलङ्कार १०७
तर्कशास्त्र १०८
विधिविधान-विधिमार्ग प्रपा १०९
विधिविधानके अन्य ग्रन्थ ११६
मन्त्र-साहित्य ११७
ऐतिहासिक ११९
जैन-साहित्य १२०

आचार्य जिनप्रभका स्तोत्र-साहित्य

चतुर्विंशति जिनस्तव १२४
पार्श्वजिनस्तव १२८
वीरजिनस्तव १३५
अभय स्तोत्र १३७
पद्मावती चतुष्पदिका १५६
कालचक्रकुलकम् १५७
दार्शनिक स्तोत्र १५८
वाणी वन्दना १६३

जिनप्रभ-स्तोत्र-साहित्यकी सामान्य विशेषताएँ

भक्ति, विनय व औदार्य १६६
भाषा १६९
शैली १६९
वर्णन वैचित्र्य : विविध प्रयोग १७०
चित्रकाव्य १७१
उपसंहार १७३

परिशिष्ट

जिनप्रभसूरि गुणवर्णन छप्पय १७३
जिनप्रभसूरि षट्पद १७६

शुद्धिपत्र १७७

जैनप्रभीय प्रकाशित स्तोत्र-सूची १९२

जैनप्रभीय अप्रकाशित स्तोत्र

१. मङ्गलाष्टकम् १९७
२. पञ्चपरमेष्ठिस्तवः १९७
३. द्वित्रिपञ्चकल्याणस्तवः १९८
४. युगादिदेवस्तवः २००
५. चन्द्रप्रभ-चरित्रम् २०५
६. पारसी भाषा चित्रकेण शान्तिनाथाष्टकम् २०७
७. पार्श्वस्तवः २०९
८. फलवर्द्धिपार्श्वस्तवः २१३
९. फलवर्द्धिपार्श्वजिनस्तवः २१५
१०. षड्ऋतुवर्णनागर्भित-पार्श्वस्तवः २१६
११. उवसग्गहरस्तोत्रस्य समग्रपादपूर्तिरूपं पार्श्वजिनस्तोत्रम् २१६
१२. तीर्थमालास्तवः २१८
१३. विज्ञप्तिः २२०
१४. सुधर्मस्वामीस्तवनम् २२३
१५. ४५ नामगर्भित आगस्तवनम् २२६
१६. परमतत्त्वावबोध द्वात्रिंशिका २२७
१७. हीयाली २३०
१८. कालचक्रकुलकम् २३०

जिनप्रभसूरि-गीतानि

श्रीजिनप्रभसूरि परम्परागीत २३३
जिनप्रभसूरीणां गीतम् २३४
श्रीजिनप्रभसूरि गीत २३४
जिनदेवसूरि गीत २३५

शासन-प्रभावक आचार्य जिनप्रभ
और
उनका—साहित्य

कोई भी शासन हो, चाहे दर्शन हो या समाज, संघ या परंपरा हो वह तब ही स्थायी, दीर्घजीवी और प्रभावशाली हो सकता है जब कि उस शासन-दर्शन-समाज-संघ-परंपरा में समय-समय पर प्रतिभाशाली साहित्यकार, वक्तृत्वकलाधारी उपदेशक (प्रावचनिक), सिद्धिधारक चमत्कारी, अत्युग्रतपस्वी और सिद्धान्तज्ञ और वादी हों, अन्यथा वर्षा के अभाव में जैसे नदियाँ शुष्क और क्षीण हो जाती हैं वैसे शासन आदि का स्रोत निर्बल होता हुआ समाप्तप्राय हो जाता है। क्योंकि व्यक्ति अपने स्व-अर्थ (भौतिक और आध्यात्मिक) साधन में संलग्न रहता है, और प्रतिभा-युक्त व्यक्तित्वधारी स्व-अर्थ साधन के साथ समाज के उत्कर्ष में लीन रहता है। यही कारण है कि जैन ग्रन्थों में ऐसे व्यक्तित्वधारियों को 'प्रभावक' शब्द से संबोधित किया है और प्रभावक आठ प्रकार के बतलाये गए हैं :—

पावयणी धम्मकही वाई नैमित्तिओ तवस्सी य।
विज्जा-सिद्धा य कवी अट्ठे य प्रभावगा भणिया॥

[[1]प्रावचनिक, [2]धर्मकथाप्ररूपक, [3]वादी, [4]नैमित्तिक, [5]तपस्वी, [6]विद्याधारक, [7]सिद्धिधारक और [8]कवि—ये आठ प्रकार के प्रभावक होते हैं।]

ऐसे प्रभावक अपने चमत्कारों से रंक से लेकर राजा-महाराजाओं को अपने शासन के प्रेमी बनाते हैं, तो दर्शन और साहित्य द्वारा समस्त दार्शनिकों और साहित्कारों को अपना अनुगत और स्वदर्शन तथा साहित्य के रसिक बनाते हैं।

जैन शासन-परंपरा में आचार्य सिद्धसेन दिवाकर (दार्शनिक और चमत्कारी), जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण, आचार्य हरिभद्रसूरि, आचार्य समन्त भद्र, आचार्य अकलंक जैसे दार्शनिक, आचार्य जिनेश्वरसूरि, श्रीबुद्धि-सागरसूरि, आचार्य अभयदेव, आचार्य हेमचन्द्र जैसे असाधारण साहित्य-कार, युगप्रधान जिनदत्तसूरि जैसे चमत्कारी और आचार्य जिनेश्वर तथा जिनपतिसूरि जैसे वादी अनेकों प्रभावक हुए हैं। ऐसे ही प्रभावक पुरुषों में आचार्य जिनप्रभसूरि एक विशिष्ट प्रभावक हुए हैं।

आचार्य जिनप्रभ ने न केवल असीम साहित्य रचनाकर अपना नाम उपार्जित किया अपितु तुगलक बादशाह को भी अपने चमत्कारों से अनु-रंजित कर, अनेक तीर्थों की रक्षा कर जैन शासन के 'यश' को चतुर्मुखी विस्तृत किया है। हालाँ कि वर्तमान वैज्ञानिक युग में इन चमत्कारों-प्रदर्शनों का कोई स्थान नहीं है, किन्तु इनका विशाल साहित्य आज के ऐति-हासिक युग में भी 'ज्योति' प्रकाश का कार्य कर रहा है। अतः ऐसे समाज के साहित्य से जैन समाज का परिचित होना अत्याश्यक है।

मुहम्मद–तुगलककालीन भारत

आचार्य जिनप्रभसूरि के समय में दिल्ली में तुगलक वंश के सुल्तान मुहम्मदशाह का शासन था जिसका पूरा नाम मुसलमानी तवारीखकारों ने सुल्तान मुहम्मदशाह इब्ने तुगलुकशाह उल्लिखित किया है। जैन साहित्य तथा स्वयं जिनप्रभसूरि के ग्रन्थों के अन्तः साक्ष्य से प्रमाणित होता है कि जिनप्रभ कुछ वर्षों तक योगिनीपुर (दिल्ली) में रहे थे और सुल्तान मुहम्मदशाह पर भी उनका पर्याप्त प्रभाव था। सुल्तान मुहम्मद तुगलक भारतीय इतिहास में अपने जल्दबाजी व अदूरदर्शितापूर्ण कार्यों के लिए विख्यात है। तो भी सभी इतिहासकार असंदिग्ध रूप से स्वीकार करते हैं कि वह मध्यकाल के भारतीय शासकों में विद्वता में सबसे बढ़ा-चढ़ा था। वह हिन्दी व फारसी में काव्य-रचना करता था। हिन्दी में उसने अपना उपनाम जोन्हा (ज्योत्स्ना) रक्खा था। दर्शनशास्त्र में भी उसकी अभि-

रुचि थी। स्वयं विद्वान् होने के साथ-साथ वह विद्वानों का समादर भी करता था।

मुहम्मद तुगलक के समय की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति समझने के लिए हमें तत्कालीन मुसलमान इतिहासकारों के ग्रंथों से बड़ी सहायता मिलती है, परंतु कुछ ऐसे कारण हैं कि हम सम्पूर्णतः उन्हीं को आधार नहीं बना सकते। जियाउद्दीन बरनी मुहम्मद तुगलक का समकालीन प्रसिद्ध इतिहासकार है। एसामी, बद्रेचाच, अमीरखुर्द, शिहाबुद्दीन अल उमरी, यहया बिन अहमद सहरिन्दी, अब्दुल कादिर बदायूनी, मुहम्मद कासिम हिन्दूशाह 'फिरिश्ता' आदि इतिहास व साहित्यकारों के ग्रन्थों से भी तुगलककाल के विषय में यथेष्ट सामग्री प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त सबसे अधिक प्रामाणिक सामग्री इब्नबतूता नामक प्रसिद्ध अफ्रीकी यात्री के यात्रा-वर्णन से मिलती है। इन सभी प्रमाणों के आधार पर हम तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक स्थिति का मूल्यांकन तटस्थ दृष्टि से इस प्रकार कर सकते हैं।

राजनीतिक स्थिति

भारत में राष्ट्रीयता को भिन्नतः समझा गया था। यहाँ वैयक्तिक भेदों से ऊपर उठकर विश्वबन्धुत्व की ओर होनेवाले मानसिक विकास के मार्ग के एक स्थितिस्थान (Station) को राष्ट्रीयता माना गया है। जब तक भारतीयों की इस मान्यता पर आघात न होता, तब तक वे बाहर से आनेवाली जातियों से भी युद्ध को तैयार नहीं होते थे। पूर्व-मध्यकाल में अनेक जातियाँ मध्य एशिया से आकर भारत में बस गईं। उनके बड़े-बड़े साम्राज्य भी भारत में स्थापित हुए और मिट गये। सच्चे भारतीय की तरह ही उन्होंने भी भारतीय धर्म और दर्शन की रक्षा के लिए प्रयत्न किए। ७ वीं शती के अन्त होते ही अरबों के आक्रमण सिन्ध पर होने लगे। राष्ट्रीय स्तर पर इसका तीव्र विरोध नहीं हुआ। भारतीयों को वैदान्तिक एकेश्वरवाद और इस्लाम के एकेश्वरवाद में कोई भेद

दृष्टिगत नहीं हुआ। यही कारण है कि लगभग ४ शताब्दियों तक भारत के इस्लाममत का प्रचार करने मुस्लिम सन्त आते रहे। भारतीयों ने उनका आदर किया और उनके उपदेशों का श्रवण करते रहे, किन्तु १२ वीं शताब्दी में उत्तर-पश्चिमी सीमान्त से उत्तरी भारत पर भिन्न प्रकार के आक्रमण प्रारंभ हुए, जिन्हें बड़े पैमाने पर सशस्त्र डकैती कहा जा सकता है। आक्रमणकारी महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी यद्यपि मुसलमान थे, परन्तु उनके आक्रमणों का इस्लाम से कोई सम्बन्ध न था। गजनवी तो केवल धन लूटने ही अनेक बार भारत आया था। गोरी ने धन के साथ साम्राज्य स्थापना की ओर भी ध्यान दिया और यों, उत्तरी भारत में मुसलमानी-साम्राज्य स्थापित हुआ।

गोरी की मृत्यु के बाद भारत में गुलामवंशी व खिलजीवंशी शासकों ने राज्य किया। अलाउद्दीन खिल्जी ने तो लगभग सारे भारत को जीत लिया। इन सभी शासकों ने इस्लाम के नाम पर स्वार्थी मुसलमानों को अपने वश में करके तलवार के बल पर शासन किया। बहुसंख्यक प्रजा के ऊपर अत्याचार किए गए, धनिकों का धन व स्त्रियों का यौवन लूटा गया। सत्ता क्रूरता का पर्याय बन गई। जो जितना सशक्त सुल्तान होता वह उतना ही प्रजा को आतंकित किया करता। अधिकतर सत्ताधारी विलासिता का जीवन बिताते और विलासिता में ही किसी सामन्त की तलवार के शिकार हो जाते थे। इस प्रकार की राजनीति भारत के लिए नई थी। भारतीयों के मन में इन शासकों से अधिक उनके धर्म से घृणा हो गई थी, क्योंकि उन पर सभी अत्याचार धर्म के नाम पर किए जाते थे। इस्लाम के प्रति इस घृणा ने इस आगन्तुक जाति को सदैव विदेशी बनाए रक्खा; किन्तु तथ्य की बात तो यह है कि इस्लाम का शासकों की क्रूरता के साथ स्वार्थ के अतिरिक्त कोई सम्बन्ध न था।

सन् १३२० ई० में गयासुद्दीन तुगलक ने खिल्जीवंश समाप्त करके तुगलक वंश की नींव डाली। इसके चार वर्ष बाद ही मुहम्मद तुगलक

शासक बना जिसने १३५३ ई० तक राज्य किया। इसके राज्य की सीमाएँ सुदूर दक्षिण तक विस्तृत थीं। वह विद्वान् होने से अन्य मुसलमान सुल्तानों से कहीं अधिक उदार था। मुसलमान इतिहासकारों ने उसकी दानशीलता व क्रूरता का समान रूप से उल्लेख किया है, किन्तु मुसलमानी सल्तनत के लब्धप्रतिष्ठित विचारशील-स्तम्भ की उन उपलब्धियों का उल्लेख नहीं किया; जिनको उसने बहुसंख्यक हिन्दू प्रजाजनों के लिए प्रयुक्त किया होगा। हाँ, अन्य धर्मों के प्रति उसके द्वारा प्रदर्शित उदार दृष्टिकोण की उन्होंने जीभरकर निन्दा तक की है। इसीलिए ऐतिहासिक तिथिक्रम की दृष्टि से प्रमाणित तत्कालीन इतिहास भी राष्ट्रीय तत्त्वों की दृष्टि से अप्रामाणिक हैं।

मुहम्मद तुगलक के समय कई प्रान्तों में विद्रोह हुए। मुहम्मद के जीवन का अधिक समय युद्धों में ही व्यतीत हुआ। मुसलमान इतिहासकारों के उल्लेखों से प्रमाणित होता है कि मुहम्मद तुगलक के समय सभी विद्रोह उसके मुसलमान सामन्तों ने किए थे। ऐसा ज्ञात होता है कि सुल्तान की हिन्दुओं के प्रति उदारनीति ने कदाचित् उन्हें विद्रोह के लिए प्रेरित किया होगा। सुल्तान मुहम्मद ने दूर देशों के अरबी, ईराकी आदि विद्वानों को बुलाकर ऊँची पदवियों पर नियुक्त किया था। इसका कारण भी कदाचित् अपने सामन्तों पर अविश्वास ही रहा होगा। उसने कई विद्रोहियों व विद्रोह के प्रेरक धार्मिक नेताओं को मौत के घाट उतार दिया था। इतिहासकारों ने उसकी इस क्रूरता की बड़ी निन्दा की है और साथ ही उसके हिन्दू सलाहकारों पर सारा दोषारोपण किया है। परन्तु सत्य बात तो यह है कि वे १५० से अधिक वर्षों तक धर्म के नाम पर अत्याचार करने के आदी हो चुके थे और कदाचित् मुहम्मद की उदार नीति की इसीलिए प्रशंसा करने में समर्थ न थे। दूसरी ओर सुल्तान स्वयं विगत काल में की गई सुल्तानों की हत्या से सचेत रहा करता था, और शायद इसीलिए उसने विद्रोहियों का क्रूरतापूर्वक वध कराया हो। कुछ भी हो, मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में साम्राज्य पर्याप्त विस्तृत

हो गया था फिर भी राजनीतिक अवस्था असन्तुलित होने से विद्रोह हुए और विद्रोहियों से युद्ध करते रहने के कारण उसकी मानसिक उदारता के प्रतिफलन के रूप में साम्राज्य की ऐसी नीति सफलता को प्राप्त करके प्रसिद्धि में न आ सकी जिसका सभी धर्मों की प्रजा के हित से सम्बन्ध हो। हाँ, मुहम्मद के उत्तराधिकारी फिरोज तुगलक ने सर्वप्रथम प्रजा-हितार्थ कल्याणकारी राज्य की परंपरा को सफलतापूर्वक क्रियान्वित किया।

सामाजिक दशा

राजनीतिक असन्तुलन के युग में किसी भी प्रकार की सामाजिक प्रगति की योजना की राज्य से आशा नहीं की जा सकती। मुहम्मद तुगलक निश्चय ही अपने अधीनस्थ सामन्तों की नीति से असन्तुष्ट था, किन्तु वह प्रत्यक्ष रूप से उनका विरोध करके हिन्दू लोगों को उनका स्थान देने का साहस नहीं करता था। इसलिए उसने अरबी, ईराकी व ईरानी लोगों को बुलाकर योग्यतानुसार कार्य सौंपा था। शासन के अतिरिक्त वह हिन्दू लोगों का अन्य कार्यों में भरपूर सहयोग प्राप्त करता था। कुकृत्य करनेवाले सामन्तों को वह हिन्दुओं की सहायता से ही दण्ड दिया करता था। उसने इस्लाम के प्रचार के लिए प्रयत्न किया अवश्य, किन्तु कदाचित् उसका ध्यान इससे अधिक ज्ञान की खोज करने में लगा हुआ था। वह विद्वानों का समादर करता था।

सामान्य हिन्दू मुसलमानों से आक्रान्ता के रूप में घृणा करते थे, किन्तु इस्लाम के सिद्धान्तों व मुसलमान फकीरों व पीरों का आदर करते थे। तीव्र घृणा के उपरान्त भी सामान्य लोगों में सहअस्तित्व की भावना पनप रही थी। हिन्दू लोग पीर-पैगम्बरों में आस्था रखने लगे थे। वैष्णव सम्प्रदायों का प्रचार बढ़ने लगा था। कदाचित् हिन्दू लोग अपने धर्म का नमनशील संस्करण तैयार करने में व्यस्त थे। हिन्दुओं में जाति-भेद चरम अवस्था पर पहुँच रहा था। मुसलमानी शासकों के अत्याचारों

ने उन्हें मानव के एक घृणास्पद, बीभत्स रूप से परिचय कराया था, जिससे एक मनुष्य अपने सहयोगी के प्रति आस्था खो चुकता है। इस अनास्था का परिणाम हम आज तक भोग रहे हैं। जातिभेद और छुआ-छूत इसी अनास्था की चरमावस्था के परिणाम हैं जो इस उत्तरमध्य-काल में सामाजिक कोढ़ के रूप में भारत को मिले।

भारतीय-संस्कृति की नमनशीलता का चरम रूप १४हवीं से १७ वीं शताब्दी के बीच में मिलता है। इस काल में भारतीय समाज ने सबसे अधिक सांस्कृतिक नेता पैदा किए, किन्तु दुर्भाग्यवश फिर भी भारतीय संस्कृति इस्लाम को आत्मसात् नहीं कर सकी। इसका कारण कदाचित् जीवन के प्रति इस्लाम का दृष्टिकोण उतना नहीं है जितना भारत में उसके प्रचारकों का अनुदार व अनुत्तरदायित्वपूर्ण रुख है।

मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में उत्तर भारत में इस्लाम का प्रचार बढ़ रहा था। राजस्थान व गुजरात में जैनधर्म का प्रचार अधिक हो रहा था। बुद्धधर्म मुसलमानों के आक्रमणों से अपना सामान्य जनता पर प्रभाव खोकर भारत से समाप्त हो चुका था। भारतीय जनता अनेक वर्गों में विभाजित थी फिर भी उसमें सामाजिक व्यवहारों की समानता के कारण सांस्कृतिक ऐक्य विद्यमान था, जिसे इस्लाम के प्रचारकों ने नहीं समझा और न शासकों ने ही उसकी ओर ध्यान दिया। धनिक वर्ग तो प्राप्त साधनों के आधार पर अपना बचाव कर सकते थे, किन्तु सामान्य लोग राजनीतिक व धार्मिक अत्याचारों से पीड़ित थे। भारत में अनेक अछूत जातियाँ इस प्रकार के अत्याचारों से पीड़ितों की ही हैं जिन्हें उच्च वर्गों ने विवशता के दण्ड के रूप में पीछे रह जाने को अपने भाग्य पर छोड़ दिया।

आर्थिक स्थिति

मुसलमान सुल्तान योग्य योद्धा तो अवश्य थे किन्तु व्यावसायिक उन्नति की ओर उनका ध्यान नहीं था। लूटकर या प्रजा को आतंकित करके धन

प्राप्त कर लेना ही उनके लिए पर्याप्त था। प्रजा के लिए उन्होंने विशद व्यापक आर्थिक नीति का निर्धारण नहीं किया। तुगलककालीन राजनीतिक अवस्था ही असन्तुलित थी अतः आर्थिक क्षेत्र में मुहम्मद तुगलक ने कोई उल्लेखनीय प्रयत्न नहीं किया। हाँ, उसने प्रतीकमुद्रा चलाने की आयोजना अवश्य निर्धारित की थी, जिससे वाणिज्य-व्यवसाय में प्रभूत सुविधा होने की संभावना थी, किन्तु ठीक तरह से कार्यान्वित न किए जाने से योजना सफल न हो सकी।

कृषि व वाणिज्य पर अब भी हिन्दूप्रजा का एकाधिकार स्थापित था। अपनी राजनीतिक व आर्थिक आवश्यकताओं के हेतु कुछ सुल्तानों व प्रान्तीय-शासकों ने भी वाणिज्य-व्यापार व उद्योगों को प्रोत्साहित किया। अधिकांश जनता तो आज ही की तरह उस समय में भी कृषिजीवी ही थी। कृषक गाँवों में रहते थे। वस्त्र-व्यवसाय, मिट्टी लकड़ी, व धातु की चीजें बनाना आदि ग्रामीण-क्षेत्र के व ईंट-निर्माण, शक्कर व कागज बनाना, रंगसाजी, शस्त्र, सुरा, तेल, इत्र आदि बनाना नागरिक-क्षेत्र के प्रमुख व्यवसाय थे। ऊनी, सूती व रेशमी कपड़े महीन से महीन बनाए जाते थे।

आन्तरिक व्यापार उन्नत व व्यापक था। कभी-कभी कठोर शासकीय नियन्त्रण के कारण व्यापारियों को हानि भी उठानी पड़ती थी। मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में आन्तरिक विद्रोहों व निरन्तर युद्धों से व्यापार को पर्याप्त हानि हुई थी। फिर भी बाह्य व्यापार की दृष्टि से योरोप के दूरस्थ प्रदेश, पूर्वी द्वीपसमूह, चीन व प्रशान्त महासागरीय अन्य देशों से भारत का व्यापारिक संम्पर्क था। अफगानिस्तान, ईरान, तिब्बत आदि से स्थलमार्ग से व्यापार चलता था। अरब से घोड़े बहुत संख्या में आते थे। भारतीय वस्त्रों की ख्याति इन सभी देशों में फैली हुई थी।

शासक, सामन्त व उच्चवर्गीय लोग भोग-विलासों में लिप्त थे। दास-दासियों का व्यापार चलता था। कृषकों की दशा बड़ी दयनीय थी। उन्हें अधिक कर देना पड़ता था। मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में दुर्भिक्ष

भी पड़ा था। जिसमें सुल्तान ने पर्याप्त अन्न व धन बँटवाया, कर माफ कर दिये गये। तो भी काफी संख्या में निर्धन मर गये। फिर भी तुगलककालीन कृषक आधुनिक कृषकों से कहीं अधिक संपन्न थे। उनके गाँव आत्म-निर्भर थे। मुसलमान शासकों ने ग्रामों की व्यवस्था में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। इसका लाभ के साथ दुष्परिणाम यह हुआ कि ग्रामीण जनता शासन व शासकों के प्रति अधिक उदासीन होती गई। १६वीं शताब्दी की जनता की उदासीनता का परिचय तुलसीदास ने 'कोऊ नृप होउ हमहिं का हानी।' शब्दों में यथातथ्य दिया है। इस उदासीनता का परिणाम यह हुआ कि १९वीं शती के उत्तरार्द्ध तक ग्रामीण जनता ने राजनीतिक षड्यन्त्रों-क्रान्तियों में कोई उल्लेखनीय भाग नहीं लिया। १८५७ का स्वातंत्र्य संग्राम कदाचित् इसी उदासीनता के कारण असफल रहा, यद्यपि इसमें जनता के एक अंश का सहयोग अवश्य रहा।

धार्मिक जीवन

सुल्तानों नें धर्म के नाम पर राजनीतिक स्वार्थों की सिद्धि को प्रमुख उद्देश्य बना लिया था। इसलिए अत्याचार पीड़ित लोगों के मन में इस्लाम के प्रति घृणा उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक ही था। विगत १००० वर्षों का इतिहास प्रमाणित करता है कि नमनशील धर्म के अनुयायी होने पर भी आर्थिक संकटों से विवश होकर २०वीं शती के अतिरिक्त कभी भारतीयों ने धर्मपरिवर्तन नहीं किया, न अत्याचार ही उन्हें धर्मपरिवर्तन के लिए विवश कर सके थे। फिर भी तुगलक काल में इस्लाम का प्रचार बढ़ता जा रहा था। वह कदाचित् उसकी मूलभूत अच्छाइयों का परिणाम था और बढ़ती हुई घृणा इसी प्रकार शासकों की अत्याचारपूर्ण नीति के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई थी।

भारतीय धर्मचेता संकट से जाति को बचाने के लिए विचाररत थे। रामानुजाचार्य ने वैष्णवभक्ति का प्रचार करते हुए विश्वास व विचार का समन्वय उपस्थित किया था, जो इस्लाम से कहीं अधिक आगे की

वस्तु थी । रामानुज के मतानुसार सभी जातियों के स्त्री-पुरुष ईश्वरोपासना व मुक्ति के समान रूप से अधिकारी थे । भक्ति-संप्रदाय का आन्दोलन स्पष्टतः इस्लाम के प्रतिरोध के लिए किया गया भारतीय जनता का सांस्कृतिक अभियान था ।

राजस्थान, मालवा व गुजरात में जैनधर्म का प्रचार था । जैनसाहित्य का स्वर्णकाल समाप्तप्राय था, किन्तु अब भी अनेक जैनाचार्य लोकजीवन में अपना प्रमुख स्थान बनाये हुए थे । आचार्य जिनप्रभ जैनसाहित्य के स्वर्णयुग के प्रमुख साहित्यकार थे । बहुमुखी प्रतिभा के धनी होने से सुल्तान के कानों तक उनकी ख्याति पहुँची थी और उन्होंने सुल्तान से भेंट करके उसे अपने विचारों से प्रभावित किया था ।

मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में एक ओर तो हिन्दूधर्म पर इस्लाम का प्रभाव पड़ रहा था, दूसरी ओर इस्लाम पर भी हिन्दुओं के संपर्क से प्रभाव बढ़ता जा रहा था । सूफी सन्तों पर भारतीय वेदान्त का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा था । एक ओर हिन्दू सांस्कृतिक अभियान के लिए अपने को तैयार कर रहे थे । दूसरी ओर मुसलमान हिन्दुओं के धार्मिक व ज्ञान-विज्ञान-सम्बन्धी विचारधाराओं से परिचित होते जा रहे थे ।

साहित्यिक विकास

इस समय में संस्कृत और अपभ्रंश साहित्य का ह्रास होता जा रहा था, साथ ही प्रान्तीय भाषाएँ अधिक प्रभाव ग्रहण करती जा रही थीं । फिर भी दार्शनिक व धार्मिक साहित्य अब भी संस्कृत में ही लिखा जाता था । जैन साहित्यकारों ने उस समय में अनेक नाटकों व काव्यों की रचना भी की थी उनका प्रकाश में आना अभी शेष है । संस्कृत भाषा में ग्रन्थरचना इसलिए भी होती थी कि जिससे उनका भारतभर में प्रचार हो सके ,क्योंकि संस्कृत उस समय भी अन्तःप्रान्तीय व्यावहारिक भाषा थी । हिन्दी, मराठी, बंगला व दक्षिण की तमिल, तेलगू आदि भाषाओं में प्रौढ़ साहित्य की रचना प्रारम्भ हो गई थी । हिन्दी का प्रसिद्ध कवि अमीर खुसरो खिल्जी व तुग-

लक सल्तनत का राजकवि था। वह हिन्दी में मनोरंजन साहित्य का जन्मदाता था। उसे खड़ी बोली को सर्वप्रथम प्रयोग करने का श्रेय प्राप्त हैं। इब्नबतूता नामक अफ्रीकी यात्री मुहम्मद तुगलक के समय भारत में आया था। उसका यात्रावर्णन साहित्य व इतिहास की बहुमूल्य सम्पत्ति हैं। जियाउद्दीन बर्नी तुगलककाल का सबसे प्रसिद्ध इतिहासकार है जो मुहम्मद का दरबारी था। मुहम्मद तुगलक के दरबार में एसामी, बद्रे-चाच आदि कवियों को भी पर्याप्त सम्मान प्राप्त था। विद्या-व्यसनी होने से मुहम्मद तुगलक साहित्यकारों का पर्याप्त सम्मान करता था और स्वयं भी काव्यरचना करता था।

सांस्कृतिक मूल्यांकन

मुहम्मद तुगलक ने अनेक योजनाएँ बनईं और क्रियान्वित न कर पाने के कारण उसे इतिहास में पागल तक कहा गया। किन्तु फिर भी उसका शासनकाल उसकी उदारदृष्टि के परिणाम स्वरूप अत्यन्त महत्त्व पूर्ण रहा। उसके विचारों से प्रभावित होकर ही उसके उत्तराधिकारी फिरोज तुगलक ने अनेक जनहितकारी योजनाओं को क्रियान्वित किया।

हिन्दू संस्कृति के लिए तो यह काल पर्याप्त महत्त्व का था ही। गुजरात, राजस्थान, मालवा आदि पददलित हो चुके थे या निरन्तर आक्रमणों के शिकार बनते जा रहे थे। इस भूखण्ड के जैन-साहित्यकारों ने निश्चय ही इस काल में महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक कार्य किया। अनेक राजनैतिक उत्थान-पतनों के उपरान्त भी वैदिक साहित्य को कण्ठस्थ करके सुरक्षित बनाए रखने का गौरव ब्राह्मणों को प्राप्त है। लगभग यही गौरव इस काल के जैन-साहित्यकारों को मिलना चाहिए जिन्होंने विनाश के लोमहर्षक दृश्यों के बीच गुजरात व राजस्थान में पल्लवित व विकसित जैन-साहित्य की स्वर्णकालीन परंपरा की पवित्रता व गुरुता को नष्ट होने से ही नहीं बचाया वरन् नवीन साहित्य के सृजन में भी पर्याप्त योग दिया।

आचार्य जिनप्रभसूरि इस गौरव के अधिकारी साहित्यकारों में शीर्ष स्थानीय हैं।

गुरु-परम्परा

श्रमण भगवान् महावीर के शासन में विक्रम की ८ वीं शती से पूर्व चैत्यवास नाम से प्रसिद्ध जिस शिथिलाचार परम्परा का उद्‌भव और ११ वीं शती तक जिसका प्रबल वेग से प्रचार हुआ उस चैत्यवास-प्रथा का उन्मूलन कर सिद्धान्तोक्त श्रमण एवं श्रावक वर्ग को पुनः प्रतिष्ठित करने का श्रेय खरतरगच्छ के आचार्यों को ही प्राप्त है। सुविहित पक्ष और विधिपक्ष इस गच्छ के अपर नाम हैं। इस गच्छ का जहाँ शास्त्रीय दृष्टि से महत्त्व है वहाँ इसका ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस गच्छ का नामकरण अन्य गच्छों की तरह सामान्य विशेषताओं के कारण नहीं हुआ है अपितु सैद्धान्तिक आधार पर प्रबल संघर्ष करते हुए क्रान्ति की ज्वाला फैलाने के कारण हुआ है। इस क्रान्ति के प्रमुख सूत्रधार हैं आचार्य वर्धमान और आचार्य जिनेश्वर।

आचार्य वर्धमान अम्भोहर प्रदेश में ८४ स्थानों के नायक चैत्यवासी जिनचन्द्राचार्य के शिष्य थे। सिद्धान्त-वाचना ग्रहण करते हुए जिन मन्दिर के विषय में ८४ आशातनाओं के प्रसंग को पढ़कर और चैत्यवास के व्यावहारिक जीवन को देखकर इन्हें ग्लानि उत्पन्न हुई, फलस्वरूप सारा वैभव त्यागकर सुविहित श्रमण उद्योतनाचार्य के शिष्य बनकर शास्त्रोक्त साधुत्व का अंतरंग और बहिरंग समान रूप से प्रतिपादन करने लगे।

आचार्य जिनेश्वर इन्हीं वर्धमानाचार्य के सुयोग्य शिष्य एवं पट्टधर हैं। प्रभावकचरित के अनुसार आचार्य जिनेश्वर दीक्षित होने के पूर्व मध्य देश के निवासी कृष्ण नामक ब्राह्मण के पुत्र थे। इनका पूर्व नाम श्रीधर था तथा इनके अनुज का नाम श्रीपति था। दोनों भाई बड़े प्रतिभाशाली और मेधावी थे। इन्होंने वेद, वेदांग, इतिहास, पुराण, षड्दर्शन शास्त्र और स्मृतिशास्त्र आदि समग्र साहित्य का विधिवत् अध्ययन किया

था। अध्ययनोपरान्त देशाटन करते हुए ये दोनों भाई धारानगरी[1] में पहुँचे। धारानगरी के श्रेष्ठि लक्ष्मीपति के संपर्क से दोनों भाइयों का आचार्य वर्धमान से साक्षात्कार हुआ। आचार्य के उपदेश और साधना से प्रभावित होकर दोनों ने वर्धमानाचार्य का शिष्यत्व अंगीकार किया। दीक्षा-ग्रहण के पश्चात् दोनों भाइयों ने जैन-शास्त्रों का अध्ययन बड़ी लगन तथा तत्परता के साथ किया। शास्त्रों के पारंगत होने पर आचार्य वर्धमान ने दोनों भाइयों को आचार्यपद प्रदान किया। इसी समय से ये दोनों जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि के नाम से प्रख्यात हुए।

वर्धमानसूरि को चैत्यवास जीवन का कटु अनुभव होने के कारण इस परम्परा के प्रति क्षोभ एवं वेदना थी कि महावीर के शासन का यह विकृत रूप दूर होना ही चाहिए और इधर जिनेश्वर जैसे दुर्धर्ष विद्वान् शिष्य का संयोग मिल जाने से इन्होंने इस प्रथा का उन्मूलन करने का दृढ़ निश्चय करके १८ शिष्यों के साथ चैत्यवासियों के गढ़ अणहिलपुर पत्तन की ओर प्रयाण किया। दिल्ली से विहार करते हुए पाटण पहुँचे। क्रियाशील साधु होने के कारण इन्हें निवास के लिए स्थान भी प्राप्त नहीं हुआ, आचार्य जिनेश्वर के वाग्वैदग्ध्य से प्रभावित होकर राज-पुरोहित सोमेश्वर ने अपनी चतुःशाल में रहने का आग्रह किया। जैनेतर समाज में आचार्य की यशःकीर्त्ति को बढ़ते देखकर चैत्यवासियों ने इन्हें निकालने के लिए अनेक प्रकार के षड्यन्त्र रचे, असफल होने पर पाटण के तत्कालीन महा-

---

१. धारानगरी में इस समय महाराजा भोज का राज्य था। सं० १०६७ का मोडासा का अभिलेख मिलने से यह निश्चित है कि १०६७ से ११११ तक भोज का राज्यकाल था। राजा भोज के समय में धारानगरी विद्वानों की क्रीड़ास्थली रही है। संभवतः श्रीधर और श्रीपति विद्योपार्जन के पश्चात् अपने पाण्डित्य प्रदर्शन या सम्मान प्राप्त करने हेतु यहाँ आये हों।—डा० दशरथ शर्मा : राजा भोज निबन्ध (पंवार वंश दर्पण)।

राजा दुर्लभराज के सन्मुख पहुँचे और उन्हें स्मरण दिलाया कि "आपके पूर्वज चायोत्कट वंशीय महाराज वनराज ने 'वनराज विहार' नाम से पार्श्वनाथ मन्दिर की स्थापना करके यह व्यवस्था दे दी थी कि यहाँ केवल चैत्यवासी यतिजन ही ठहर सकते हैं।" अतः इन क्रियाधारियों को नगर से बाहर निकालने का आदेश प्रदान करें। महाराज दुर्लभराज केवल अन्धानुकरण करनेवाले व्यक्ति नहीं थे, वे गुणी थे, गुणिजनों के प्रति उनके हृदय में आदरभाव था अतः चैत्यवासियों के दुराग्रह को उन्होंने उपेक्षा की दृष्टि से देखा। यहाँ भी अपने प्रयत्नों को असफल होते देखकर उन्होंने शास्त्रार्थ का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव को महाराजा ने उपयुक्त समझा और पुरोहित सोमेश्वर के द्वारा आचार्य वर्धमान से इसकी स्वीकृति चाही। वर्धमान और जिनेश्वर तो यह चाहते ही थे, भला वे ऐसे स्वर्णावसर को कैसे छोड़ सकते थे। उन्होंने स्वीकृति दे दी और महाराजा दुर्लभराज की अध्यक्षता में पंचासरा पार्श्वनाथ मन्दिर में शास्त्रार्थ होने का निश्चय हुआ।

निश्चित समय पर सूराचार्य के नेतृत्व में ८४ चैत्यवासी आचार्य खूब सज-धज कर वहाँ उपस्थित हुए। ठीक समय पर दुर्लभराज भी वहाँ पधारे। इनकी अध्यक्षता में शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ। एक ओर से जिनेश्वराचार्य और दूसरी ओर से सूराचार्य थे। शास्त्रार्थ सूराचार्य ने प्रारंभ किया। उनका कहना था कि 'जिन गृहवास ही मुनियों के लिए समुचित है और वहीं पर निरपवाद ब्रह्मव्रत का पालन संभव हो सकता है।' 'वसतिवास अपवाद से रहित नहीं है इसीलिए त्याज्य है।' सूराचार्य ने अनेक युक्तियों के द्वारा अपने पक्ष का समर्थन किया परन्तु जिनेश्वर ने उन सभी युक्तियों का खण्डन बड़ी योग्यता के साथ करते हुए वसतिमार्ग का प्रतिपादन किया। उन्होंने अत्यन्त स्पष्ट और कटु आलोचना करते हुए चैत्यवास के तत्कालीन अनुचित और अपवादपूर्ण वातावरण को मुनि-जीवन के लिए सर्वथा अनुपयुक्त तथा असंगत बतलाया। जिनेश्वर की वाक्पटुता, अकाटच तर्क-शैली तथा प्रकाण्ड पांडित्य से न केवल उनके प्रतिपक्षी ही पराभूत और पराजित हुए अपितु

वहाँ पर बैठे हुए निष्पक्ष विद्वान् तथा गणमान्य लोग भी प्रभावित हुए।[1] इसी के फलस्वरूप राजा दुर्लभराज ने (सं० १०६६-१०७८ के मध्यकाल में) करडी हट्टी में वसतिमार्गियों के लिये एक स्थान प्रदान किया और इस प्रकार गुजरात में वसतिमार्ग का सर्व प्रथम आविर्भाव हुआ।

खरतरगच्छीय परम्परा एवं पट्टावलियों के अनुसार जिनेश्वरसूरि की शास्त्रार्थ में विजय और उनकी उग्र एवं प्रखर चारित्रिक क्रियाशीलता देखकर राजा दुर्लभराज ने इन्हें खरतर-विरुद से संबोधित किया। यहीं से इस पक्ष का नाम खरतरगच्छ पड़ा और यह विरुद व्यवहार में भी प्रयुक्त होने लगा।

वर्धमानसूरिजी रचित निम्नलिखित कृतियाँ प्राप्त होती हैं:—

१. उपदेशपद टीका र० सं० १०५५,
२. उपदेशमाला बृहद्वृत्ति
३. उपमितिभवप्रपञ्च कथासमुच्चय
४. वीरपारणकस्तोत्र गाथा ४६,
५. वर्धमानजिनस्तुति गाथा ४ (पापाघाधानि)।

जिनेश्वरसूरि न केवल वाक्चातुरी और शास्त्र-चर्चा के ही आचार्य थे अपितु लेखिनी के भी प्रौढ़ आचार्य थे। इनकी प्रणीत निम्न रचनाएँ प्राप्त होती हैं:—

१. प्रमालक्ष्म स्वोपज्ञटीकासहित
२. अष्टकप्रकरणटीका र० सं० १०८०
३. चैत्यवन्दनकप्रकरण र० सं० १०९६
४. कथाकोषप्रकरण स्वोपज्ञटीकासह र० सं० ११०८,

---

१. चौलुक्यनृपति दुर्लभराज की सभा में चैत्यवासी पक्ष के समर्थक अग्रणी सूराचार्य जैसे महाविद्वान् और प्रबल सत्ताशील आचार्य के साथ शास्त्रार्थ कर उसमें विजय प्राप्त किया।—मुनि जिन विजय : कथा कोष प्रस्तावना, पृ० ४

५. पञ्चलिङ्गीप्रकरण
६. निर्वाणलीलावतीकथा
७. षट्स्थानप्रकरण
८. सर्वतीर्थमहर्षिकुलक
९. वीरचरित्र ।

इनके अनुज एवं गुरुभ्राता बुद्धिसागरसूरि भी प्रतिभाशाली विद्वान् थे । इनकी एक ही कृति प्राप्त होती है; 'बुद्धिसागर व्याकरण ।'

जिनेश्वरसूरि का शिष्य-समुदाय भी विशाल था । आपने अपने स्व-हस्त से जिनचन्द्रसूरि, अभयदेवसूरि, धनेश्वरसूरि अपरनाम जिनभद्र-सूरि और हरिभद्रसूरि को आचार्यपद तथा धर्मदेवगणि, सुमतिगणि, सहदेवगणि और विमलगणि को उपाध्यायपद प्रदान किया था । ख्याति-प्राप्त ४ आचार्य और तीन उपाध्याय जहाँ शिष्य हों वहाँ मुनिमण्डल का और पौत्रशिष्यों का अत्यधिक संख्या में होना स्वाभाविक ही है ।

जिनचन्द्रसूरि—जिनेश्वरसूरि के पट्ट पर जिनचन्द्रसूरि हुए । इनके सम्बन्ध में कोई इतिवृत्त प्राप्त नहीं है । ये बहुश्रुत गीतार्थ थे । इनकी एक मात्र कृति 'संवेग रंगशाला' नामक प्राकृत भाषा में गुंफित कथाग्रंथ प्राप्त है जिसकी रचना ११२५ में हुई है ।

अभयदेवसूरि—जिनचन्द्रसूरि के पट्ट पर अभयदेवसूरि हुए । इनका पूर्व नाम अभयकुमार था । ये धारानगरी के निवासी श्रेष्ठी महीधर के पुत्र थे । इनकी माता का नाम धनदेवी था । जिनेश्वरसूरि के कर-कमलों से ही इन्होंने दीक्षा एवं आचार्यपद प्राप्त किया था ।

अभयदेवसूरि समग्र जैन-समाज में नवांगी टीकाकार के रूप में सिद्धान्तशास्त्रों के प्रामाणिक आप्त आचार्य माने जाते है । इन्होंने स्थानांग आदि नव अंगों पर टीकाओं की रचना की । इन टीकाओं का संशोधन तत्कालीन चैत्यवासी समाज के प्रमुख एवं प्रसिद्ध आचार्य द्रोणाचार्य ने किया है । इनकी सर्जित साहित्य-सम्पत्ति आज भी ६२०० श्लोक परिमाण में प्राप्त होती है । सर्जित साहित्य इस प्रकार है—

१. स्थानांगसूत्र-वृत्ति र० सं० ११२०
२. समवायांगसूत्र-वृत्ति र० सं० ११२०
३. भगवतीसूत्र-वृत्ति र० सं० ११२८
४. ज्ञातासूत्र-वृत्ति र० सं० ११२०
५. उपासकदशासूत्र-वृत्ति
६. अन्तकृद्दशासूत्र-वृत्ति
७. अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र-वृत्ति
८. प्रश्नव्याकरणसूत्र-वृत्ति
९. विपाकसूत्र-वृत्ति
१०. औपपातिकसूत्र-वृत्ति
११. प्रज्ञापनातृतीयपदसंग्रहणी
१२. पंचाशकप्रकरणटीका र० सं ११२४
१३. सप्ततिकाभाष्य
१४. बृहद्वन्दनकभाष्य
१५. नवपदप्रकरणभाष्य
१६. पंचनिर्ग्रन्थीप्रकरण
१७. आगम-अष्टोत्तरी
१८. निगोदषट्त्रिंशिका
१९. पुद्गलषट्त्रिंशिका
२०. आराधनाकुलक
२१. आलोचनाविधिप्रकरण
२२. स्वधर्मीवात्सल्यकुलक
२३. जयतिहुअण-स्तोत्र
२४. वस्तुपार्श्वस्तव
२५. स्तम्भनपार्श्वस्तव
२६. पार्श्वविज्ञप्तिका
२७. विज्ञप्तिका।

नवांग टीका रचना के अतिरिक्त इनके जीवन की एक और महत्त्वपूर्ण घटना है, वह है सेठी नदी के किनारे खंखरापलाशवन में जयतिहुअण-स्तोत्र की रचना करते हुए स्तम्भनपार्श्वनाथ की मूर्त्ति का प्रकटीकरण।

जिनवल्लभसूरि[1]—नवांगी टीकाकार अभयदेवसूरि के पट्टधर जिनवल्लभसूरि हुए। जिनवल्लभ संभवतः आशिका निवासी थे और कूर्चपुरीय चैत्यवासी आचार्य जिनेश्वर के शिष्य थे। संभवतः जिनवल्लभ ने गुरु जिनेश्वराचार्य के पास ही पाणिनीयादि आठों व्याकरण, काव्य, लक्षण-ग्रन्थ, नाटक, छन्दःशास्त्र, नाटच-शास्त्र, काम-सूत्र, न्याय तथा दर्शन-शास्त्रों का अध्ययन किया था। जिनेश्वराचार्य ने ही सिद्धान्तों का पारंगत बनाने हेतु वाचनार्थ जिनवल्लभ को वाचनाचार्य बनाकर जिनशेखर के साथ आचार्य अभयदेवसूरि के समीप भेजा। अभयदेवसूरि ने भी जिन-

१. देखें, वल्लभभारती।

वल्लभ की विनयशीलता, ज्ञान-पिपासा और योग्यता का अंकनकर बड़े आत्मीयभाव से जिनवल्लभ को समस्त आगामों की वाचना प्रदान की। अभयदेवसूरि के भक्त एक दैवज्ञ से समस्त ज्योतिष्शास्त्र का भी जिनवल्लभ ने अध्ययन किया।

वाचनानन्तर जब जिनवल्लभ अपने गुरु के पास वापस जाने लगे तो अभयदेवसूरि ने पीठ थपथपाकर बड़े प्रेम से कहा कि 'वत्स ! सिद्धान्त के अनुसार जिस प्रकार साधुओं का आचार-व्रत है उसी प्रकार पालन करने का प्रयत्न करना।' अभयदेवाचार्य के वचनों का इन्होंने मार्ग में ही पालन किया और मरुकोट्ट के देवगृह में विधिवाक्य के श्लोक उत्कीर्ण करवाये। अपने गुरु जिनेश्वर से मिलकर, चैत्यवास त्याग की आज्ञा प्राप्त कर पुनः पत्तन लौटे और आचार्य अभयदेव के कर-कमलों से उपसम्पदा ग्रहण कर अभयदेवसूरि के शिष्य बने।

उपसम्पदा ग्रहण करने के पश्चात् जिनवल्लभगणि चित्तौड़ आये और वहाँ चैत्यवासियों को निरस्तकर पार्श्वनाथ और महावीरविधि-चैत्यों की स्थापना की। नागपुर तथा नरवरपुर में भी विधिचैत्यों की स्थापना की। आचार्य जिनेश्वर ने जिस क्रान्ति की चिनगारी पाटन में लगायी थी उसको मेवाड़ और मारवाड़ आदि देशों में ज्वालारूप में फैलाकर चैत्यवास-परम्परा को भस्मीभूत करनेवाले क्रान्तिकारी जिनवल्लभगणि ही हैं। इनकी समस्यापूर्त्ति-संबंधी पाण्डित्य से धारानगरी के नृपति नरवर्मा भी प्रभावित हुए थे और इनके भक्त हो गये।

आचार्य देवभद्रसूरि ने जिनवल्लभगणि को सं० ११६७ आषाढ़ शुक्ल ६ को चित्तौड़ नगरी में वीरविधिचैत्य में विधि-विधान महोत्सव के साथ आचार्यपद प्रदानकर अभयदेवसूरिका पट्टधर घोषित किया। आचार्यपदानन्तर कुछ मास के ही पश्चात् अर्थात् ११६७ कार्त्तिक कृष्णा १२ के दिन जिनवल्लभसूरि का स्वर्गवास हो गया।

जिनवल्लभसूरि जहाँ क्रान्तिकारी और प्रबल सुधारक थे वहाँ समग्र

शास्त्रों के निष्णात आचार्य भी थे। इनकी अनेक रचनाओं पर तत्कालीन अन्य गच्छों के प्रमुख एवं प्रभावशाली आचार्यों ने टीकाएँ रचकर इन्हें आप्तपुरुष स्वीकार किया है। इनकी रचित निम्नलिखित कृतियाँ आज भी उपलब्ध हैं:—

१. सूक्ष्मार्थविचारसारोद्धारप्रकरण
२. आगमिकवस्तुविचारसारप्रकरण
३. पिण्डविशुद्धिप्रकरण
४. सर्वजीवशरीरावगाहनास्तव
५. श्रावकव्रतकुलकम्
६. पौषधविधिप्रकरण
७. प्रतिक्रमणसमाचारी
८. द्वादशकुलक
९. धर्मशिक्षाप्रकरण
१०. संघपट्टक
११. प्रश्नोत्तरैकषष्टिशतकाव्य
१२. श्रृंगारशतक
 ★चित्रकूटीयवीरचैत्यप्रशास्त
१३. आदिनाथचरित
१४. शान्तिनाथचरित
१५. नेमिनाथचरित
१६. पार्श्वनाथचरित
१७. महावीरचरित
१८. वीरचरित्र
१९. चतुर्विंशतिजिनस्तोत्राणि
 ★स्वप्नसवृत्तिका
२०. पञ्चकल्याणकस्तव
२१. सर्वजिनपञ्चकल्याणकस्तव
२२. प्रथमजिनस्तव
२३. ऋषभजिनस्तुति
२४. लघु अजितशान्तिस्तव
२५. स्तम्भनपार्श्वजिनस्तव
२६. क्षुद्रोपद्रवहरपार्श्वस्तोत्र
२७. पार्श्वस्तोत्र (चित्रकाव्य)
२८. पार्श्वनाथाष्टक
२९. महावीरविज्ञप्तिका
३०. सर्वज्ञविप्तितिका
३१. नन्दीश्वरचैत्यस्तव
३२. भवारिवारणस्तोत्र
३३. पञ्चकल्याणकस्तोत्र
३४. कल्याणकस्तव
३५. सर्वजिनस्तोत्र
३६-४०. पार्श्वस्तोत्र
४१. सरस्वतीस्तोत्र
४२. नवकारस्तव।

जिनपालोपाध्याय द्वारा चर्चरी टीका में उल्लिखित आगमोद्धार तथा प्रचुरप्रशस्ति आदि ग्रन्थ आज अनुपलब्ध हैं।

युगप्रधान जिनदत्तसूरि[1]—जिनवल्लभसूरि के पट्टधर जिनदत्तसूरि हुए। ये धवलका (धोलका) निवासी हुम्ब ज्ञातीय श्रेष्ठि वाछिग के पुत्र हैं। इनकी माता का नाम बाहड़ देवी था। इनका जन्म ११३२ में हुआ। सं० ११४१ में नव वर्ष की अवस्था में धर्मदेवोपाध्याय के पास दीक्षा ग्रहण की। इनका दीक्षा-समय का नाम सोमचन्द्र था। इनका प्रारम्भिक अध्ययन सर्वदेवगणि के पास हुआ। न्याय-दर्शन का अध्ययन पाटन में तथा सिद्धान्तों की वाचना हरिसिंहाचार्य के पास में हुई। सं० ११६९ वैशाख शुक्ला १ के दिन चित्तौड़ के महावीर-विधिचैत्य में बड़े महोत्सव के साथ देवभद्राचार्य ने इनको आचार्यपद प्रदान कर जिनवल्लभसूरि का यह पट्टधर घोषित किया। आचार्यपद के समय आपका सोमचन्द्र नाम परिवर्तित कर जिनदत्तसूरि रखा गया।

आचार्य होने के पश्चात् आपने मरुधरदेश की ओर विहार किया। नागोर होकर अजमेर आये। अजमेर के चौहान नृपति अर्णोराज ने आपके समागम का लाभ उठाया और श्रद्धापूर्वक विधिचैत्य-निर्माण के लिये भूमि भेंट रूप में प्रदान की। यहाँ से बागड देश की ओर गये। क्रमशः रुद्रपल्ली, विक्रमपुरा, उच्चानगरी; नवहर, चित्रकूट आदि मरुधर के प्रसिद्ध नगरों में विहार करते हुए जिनेश्वराचार्य एवं जिनवल्लभसूरि प्रतिपादित विधिपक्ष का प्रबलवेग एवं प्रखरता से प्रचार किया तथा अनेकों विधिचैत्यों का निर्माण करवा कर स्व करकमलों से प्रतिष्ठाएँ करवाईं। यही कारण है कि इनकी शास्त्रसम्मत विशुद्ध चारित्रसम्पदा देखकर अनेकों चैत्यवासी आचार्यों ने आपके पास उपसम्पदा ग्रहण की। जिनमें से कतिपय के नाम इस प्रकार हैं :—जयदेवाचार्य, जिनप्रभाचार्य; विमलचन्द्र, जयदत्तमन्त्रवादी, गुणचन्द्रगणि, ब्रह्मचन्द्रगणि, रामचन्द्रगणि, जीवानन्द,। जहाँ चैत्यवासी

---

१. विशेष परिचय के लिये देखें, मुनि जिनविजयजी संपादित 'खरतर-गच्छबृहद्गुर्वावली' (सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रथांक ४२), तथा अगरचन्द भंवरलाल नाहटा लिखित 'युगप्रधान जिनदत्तसूरि'।

आचार्य भी चैत्यवास-परम्परा का त्याग कर उपसम्पदा ग्रहण करते हों, वहाँ श्रावक समुदाय का लक्षाधिक मात्रा में सुविहित पक्ष का स्वीकार करना स्वाभाविक ही है।

इसके बाद त्रिभुवनगिरि के नृपति कुमारपाल को प्रतिबोध देकर जैन मुनियों के सम्बन्ध में जो प्रतिबन्ध लगाये गए थे, उन्हें निरस्त करवाये।

आपने स्वहस्त से जिनचन्द्र, जीवदेव, जयसिंह, जयचन्द्र को आचार्य पद, जिनशेखर, जीवानन्द को उपाध्याय पद, जिनरक्षित, शीलभद्र, स्थिरचन्द्र, ब्रह्मचन्द्र, विमलचन्द्र, वरदत्त, भुवनचन्द्र, वरनाग, रामचन्द्र, मणिभद्र को वाचनाचार्यपद तथा श्रीमती, जिनमती, पूर्णश्री, जिनश्री, ज्ञानश्री नामक पाँच साध्वियों को महत्तरापद प्रदान किया। इससे स्पष्ट है कि आपका शिष्य-प्रशिष्य समुदाय सहस्राधिक हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

पट्टावलियों के अनुसार अम्बिका देवी द्वारा नागदेव के हथेली में अंकित पद्य पढ़ने से ये 'युगप्रधान' कहलाये।

सं० १२११ आषाढ शुक्ला ११ को इनका अजमेर में स्वर्गवास हुआ। जैसे आप धर्म प्रचार तथा उपदेश देने में सिद्धहस्त थे वैसे ही साहित्य-सर्जन करने में भी सिद्धहस्त थे। इनका प्राकृत, संस्कृत तथा अपभ्रंश भाषा पर पूर्ण आधिपत्य था। रचित साहित्य इस प्रकार है :—

१. गणधरसार्द्धशतक
२. गणधरसप्ततिका
३. सर्वाधिष्ठात्रीस्तोत्र
४. गुरुपारतन्त्र्य-स्तोत्र
५. सिग्घमवहरउ स्तोत्र
६. श्रुतस्तव
७. अजितशान्ति-स्तोत्रं
८. पार्श्वनाथमन्त्रगर्भित-स्तोत्र
९. महाप्रभावक-स्तोत्र
१०. चक्रेश्वरीस्तोत्र
११. योगिनीस्तोत्र
१२. सर्वजिनस्तुति
१३. वीरस्तुति
१४. संदेहदोलावलीप्रकरण
१५. उत्सूत्रपदोद्घाटनकुलक
१६. चैत्यवन्दनकुलक

१७. उपदेशकुलक
१८. उपदेशधर्मरसायन
१९. कालस्वरूपकुलक
२०. चर्चरी
२१. अवस्थाकुलक
२२. विंशिका
२३. पदव्यवस्था
२४. शान्तिपर्वविधि
२५. वाड़ीकुलक
२६. आरात्रिकवृत्तानि
२७. आध्यात्मगीतानि ।

परम्परागत जनश्रुतियों एवं पट्टावलियों के अनुसार आपके सम्बन्ध में अनेकों चमत्कारी घटनाओं तथा ओसवाल जाति के ५२ गोत्रों की स्थापना के उल्लेख प्राप्त होते हैं ।

मणिधारी जिनचन्द्रसूरि[१]—युगप्रधान जिनदत्तसूरि के पट्टधर मणिधारी जिनचन्द्रसूरि हुए । इनका जन्म सं० ११९७ भादो शुक्ला अष्टमी को हुआ था । विक्रमपुर निवासी साह रासल के पुत्र हैं । इनकी माता का नाम देल्हणदेवी है । सं० १२०३ फाल्गुन शुक्ला ९ को इन्होंने दीक्षाग्रहण की । सं० १२०५ वैशाख शुक्ला ६ को विक्रमपुर में जिनदत्तसूरि ने अपने करकमलों से इनको आचार्यपद प्रदान कर जिनचन्द्रसूरि नाम रखा । नव वर्ष जैसी लघु अवस्था में युगप्रधान जिनदत्तसूरि जैसे आचार्य की दृष्टि में परीक्षोत्तीर्ण होकर आचार्य बनना इनके विशिष्ट व्यक्तित्व का द्योतक है । सं० १२११ आषाढ शुक्ला ११ को जिनदत्तसूरि का स्वर्गवास होनेपर इन्होंने गच्छनामक पद प्राप्त किया ।

सं० १२२२ में रुद्रपल्ली नगर में पद्मचन्द्राचार्य के साथ आपका 'न्यायकन्दली' पठन के प्रसंग को लेकर 'तम' द्रव्य है या नहीं है' इस पर चर्चा हुई । इस चर्चा ने शास्त्रार्थ का रूप ले लिया । अन्त में रुद्रपल्ली की

---

१. विशेष परिचय के लिए देखें, मुनि जिनविजय-संपादित 'खरतर-गच्छबृहद्गुर्वावली' तथा अगरचंद भवरलाल नाहटा द्वारा लिखित 'मणिधारी जिनचन्द्रसूरि' ।

राजसभा में शास्त्रार्थ हुआ और पद्मचन्द्राचार्य पराजित हुए। आपको राजकीय सम्मान के साथ विजयपत्र मिला।

तत्कालीन दिल्ली के महाराजा मदनपाल के अत्याग्रह से अनिच्छा होते हुए भी सं० १२२३ में आपने दिल्ली पधार कर चातुर्मास किया। इसी चातुर्मास में भादों कृष्णा १४ को आप स्वर्गवासी हुए।

आपके मालप्रदेश में मणि होने से आप मणिधारी के नाम से प्रख्यात हुए। मन्त्रीदलीय (महत्तियाण, महता) जाति को प्रतिबोध देकर जैन बनाने वाले आप ही थे।

आपकी प्रणीत केवल 'व्यवस्थाशिक्षाकुलक नामक' एक ही कृति प्राप्त है।

जिनपतिसूरि—मणिधारी जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर षट्त्रिंशद्वाद-विजेता जिनपतिसूरि का जन्म वि० सं० १२१० विक्रमपुर में माल्हू गोत्रीय यशोवर्धन की धर्मपत्नी सूहबदेवी की रत्नकुक्षि से हुआ था। सं० १२१७ फाल्गुन शुक्ला १० को जिनचन्द्रसूरि के कर-कमलों से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षानाम नरपति था। सं० १२२३ कार्तिक शुक्ला १३ को बड़े महोत्सव के साथ युगप्रधान जिनदत्तसूरि के पादोपजीवी जयदेवाचार्य ने इनको आचार्यपद प्रदानकर जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर गणनायक घोषित कर, आचार्य अवस्था में जिनपतिसूरि नाम प्रदान किया। यह महोत्सव जिनपति-सूरि के चाचा मानदेव ने किया था।

सं० १२२८ में विहार करके आशिका पधारे। आशिका के नृपति भीमसिंह भी प्रवेश महोत्सव में सम्मिलित हुए। आशिका स्थित महा-प्रामाणिक दिगम्बर विद्वान् को इन्होंने शास्त्रचर्चा में पराजित किया था।

सं० १२३९ कार्त्तिक शुक्ला सप्तमी के दिन अजमेर में अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की अध्यक्षता में फलवर्द्धिका नगरीनिवासी उपकेशगच्छीय पद्मप्रभ के साथ आपका शास्त्रार्थ हुआ। इस समय राज्य-सभा में महामंत्रि मण्डलेश्वर कैमास तथा वागीश्वर, जनार्दन गौड़, विद्यापति

आदि प्रमुख विद्वान् उपस्थित थे। प्रतिवादी पद्मप्रभ मूर्ख, अभिमानी एवं अनर्गल प्रलापी होने से शास्त्रार्थ में शीघ्र ही पराजित हो गया। जिनपतिसूरि की प्रतिमा एवं सर्वशास्त्रों में असाधारण पाण्डित्य को देखकर पृथ्वीराज चौहान बहुत प्रसन्न हुए और विजयपत्र हाथी के ओहदे पर रखकर बड़े आडम्बर के साथ स्वयं उपाश्रय में आकर आचार्यश्री को प्रदान किया।[1]

सं० १२४४ में उज्जयन्त-शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रार्थ संघ सहित प्रयाण करते हुए आचार्यश्री चन्द्रावती पधारे। यहाँ पर पूर्णिमापक्षीय प्रामाणिक आचार्यश्री अकलङ्कदेवसूरि पाँच आचार्य एवं १५ साधुओं के साथ संघ दर्शनार्थ आये। आचार्यश्री के साथ अकलंकदेवसूरि की 'जिनपति' नाम एवं 'संघ के साथ साधु-साध्वियों को जाना चाहिये या नहीं' इन प्रश्नों पर शास्त्र-चर्चा हुई और आचार्य अकलंक इस चर्चा में निरुत्तर हुए।

इसी प्रकार कासहृद में पौर्णमासिक तिलकप्रभसूरि के साथ 'संघपति' तथा 'वाक्यशुद्धि' पर चर्चा हुई जिसमें जिनपतिसूरि ने विजय प्राप्त की।

उज्जयन्त-शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रा करके वापस लौटते हुए आशापल्ली पधारे। यहाँ वादिदेवाचार्य परम्परीय प्रद्युम्नाचार्य के साथ 'आयतन-अनायतन' पर शास्त्रार्थ हुआ जिसमें प्रद्युम्नाचार्य पराजय को प्राप्त हुए। इस शास्त्रार्थ का अध्ययन करने के लिये प्रद्युम्नाचार्य का 'वादस्थल' तथा जिनपतिसूरि का 'प्रबोधोदयवादस्थल' द्रष्टव्य है।

आशापल्ली से आचार्यश्री अणहिलपुर पाटन पधारे। यहाँ पर स्वगोत्रीय ४० आचार्यों को स्वमण्डली में समुद्देश करवाकर वस्त्रदानपूर्वक सम्मानित किया।

---

१. इस शास्त्रार्थ का प्रामाणिक सजीव वर्णन के लिये देखें, जिनपालोपाध्याय-रचित खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली, पृ० २५।३४ तक।

सं० १२५१ में लवणखेटक में राणक केल्हण के आग्रह से दक्षिणावर्त आरात्रिकावतरणोत्सव' बड़ी धूमधाम से मनाया।

सं० १२७३ में बृहद्वार नगरकोटीय राजाधिराज पृथ्वीचन्द्र की सभा में काश्मीरी पं० मनोदानन्द के साथ आचार्यश्री की आज्ञा से जिनपालोपाध्याय ने किया। शास्त्रार्थ का विषय था, 'जैन षड् दर्शनबाह्य हैं।' इस शास्त्रार्थ में पं० मनोदानन्द बुरी तरह पराजय को प्राप्त हुए। राजा पृथ्वीचन्द्र ने जयपत्र जिनपालोपाध्याय को प्रदान किया।

सं० १२७७ आषाढ़ शुक्ला १० को आचार्यश्री ने गच्छ सुरक्षा की व्यवस्था कर वीरप्रभगणि को गणनायक बनाने का संकेत कर अनशन पूर्वक स्वर्ग की ओर प्रयाण किया।

आचार्य जिनपतिसूरिकृत प्रतिष्ठाएँ, ध्वजदण्डस्थापन, पदस्थापन महोत्सव, शताधिक दीक्षा महोत्सव आदि धर्मकृत्यों का तथा आचार्यश्री के व्यक्तित्व का अध्ययन एवं शिष्य-प्रशिष्यों की विशिष्ट प्रतिमा का अंकन करने के लिये द्रष्टव्य है जिनपालोपाध्याय कृत 'खरतरगच्छबृहद् गुर्वावली पृ० २३ से ४८।

जिनपतिसूरि-प्रणीत निम्न कृतियाँ प्राप्त हैं :—

१. संघपट्टकबृहद्वृत्ति
२. पञ्चलिङ्गीप्रकरणटीका
३. प्रबोधोदयवादस्थल
४. खरतरगच्छसमाचारी
५. तीर्थमाला
६. पंचकल्याणक-स्तोत्र
७. चतुर्विंशतिजिनस्तुति
८. विरोधालङ्कारऋषभ-स्तुति
९. अजितशान्तिस्तोत्र
१०. अजितशान्तिस्तुति
११. नेमिस्तोत्र
१२. चिन्तामणिपार्श्वनाथ-स्तोत्र
१३. ,, ,,
१४. पार्श्वस्तव
१५. स्तम्भतीर्थ-अजितस्तव
१६. महावीरस्तव
१७. महावीर-स्तोत्र
१८. महावीरस्तुति।

जिनेश्वरसूरि—जिनपतिसूरि के पट्टधर जिनेश्वरसूरि हुए। इनके जन्म-संवत् का पट्टावलियों में उल्लेख प्राप्त नहीं है। इनके पिता का नाम नेमिचन्द्र भाण्डागारिक[1] था। इनकी दीक्षा सं० १२५८ चैत्रवदी दो को जिनपतिसूरि के करकमलों से हुई, दीक्षा नाम वीरप्रभा रखा गया और १२६० आषाढ कृष्णा ६ को उपस्थापना (बृहद्दीक्षा) हुई। सं० १२७३ में बृहद्द्वारा में नगरकोटीय राजाधिराज पृथ्वीचन्द्र की राजसभा में काश्मीरी पंडित मनोदानन्द के साथ जिनपालोपाध्याय का जो शास्त्रार्थ हुआ था उसमें आप भी सम्मिलित थे। इस प्रसंग में वीरप्रभगणि का उल्लेख होने से यह निश्चित है कि सं० १२७३ के पूर्व ही इनको गणिपद प्राप्त हो गया था। सं० १२७७ माघ शुक्ला ६ को जावालिपुर (जालोर) के महावीरचैत्य में बड़े महोत्सव के साथ सर्वदेवसूरि नामकरण किया गया।

सं० १२८९ में स्तम्भतीर्थ (खंभात) में यमदण्ड नामक दिगम्बर के साथ पण्डितगोष्ठी हुई। यहीं पर महामात्य श्री वस्तुपाल ने सपरिवार आकर आचार्यश्री की अर्चना की। सं० १३१९ में आपके राज्यकाल में उज्जैन में अभयतिलकोपाध्याय ने तपागच्छीय पं० विद्यानन्द को शास्त्रार्थ में पराजित कर जयपत्र प्राप्त किया। शास्त्रार्थ का विषय था 'प्रासुक शीतल जल यति को ग्राह्य है या नहीं।'

सं० १३२६ में संघपति अभयचन्द्र ने पालनपुर से आपकी अध्यक्षता में शत्रुंजय-उज्जयन्त आदि तीर्थों की यात्रार्थ संघ निकाला। आपके शासन में प्रतिष्ठाओं एवं दीक्षाओं की धूम लगी हुई थी। अनेक प्रकार से शासन-प्रभावना करते हुए सं० १३३१ आश्विन कृष्णा ५ को आप स्वर्ग की ओर प्रयाण कर गये।

इनके द्वारा निर्मित-साहित्य निम्नलिखित प्राप्त हैं :—

१. श्रावकधर्मविधिप्रकरण
२. आत्मानुशासन
३. द्वादशभावनाकुलक
४. सर्वतीर्थमहर्षिकुलक
५. चन्द्रप्रभचरित्र
६. यात्रास्तव

७. रुचितरुचिदण्डकस्तुति
८. चतुर्विंशतिजिनस्तोत्र
९. ,, ,,
१०. वासुपूज्यस्तोत्र-यमकमय
११. पार्श्वनाथस्तोत्र
१२. ,, ,,
१३. बावरी
१४. वीरजन्माभिषेक
१५. पालनपुरवासुपूज्यबोली
१६. वीसलपुरवासुपूज्यबोली
१७. शान्तिनाथबोली ।

आचार्य जिनेश्वरसूरि के राज्यकाल में गच्छ में शाखाभेद हुआ जो लघु खरतरशाखा के नाम से प्रसिद्ध है। इस शाखा के प्रथम आचार्य जिनसिंहसूरि हुए जिनका परिचय एवं शाखाभेद का कारण आगे के परिच्छेदों में लिखा गया है।

●

जन्म-दीक्षा और आचार्यपद

जन्म

प्राकृत भाषा में रचित वृद्धाचार्य प्रबन्धावलि[1] के अनुसार मोहिलवाडी[2] नगरी में श्रीमालवंशीय ताम्बी गोत्रीय महर्धिक श्रावक महाधर[3]

१. मुनि जिनविजयजी द्वारा सम्पादित खरतरगच्छालंकार युगप्रधानाचार्य गुर्वावली में प्र० ।

२. नाहटाजी लिखित सं० चरित में सोहिलवाड़ी, शुभशीलगणि-रचित पंचशतीकथाप्रबन्ध २९५ में गलितकोटकपुर खरतरपट्टावली नं० ३ के अनुसार झूंझणू और उ० जयचन्द्रजी भंडारस्थ पट्टावली में बागड़ देश के बड़ौदा ग्राम ।

३. पंचशती, जिनदत्त, विजयधर्मसूरि ज्ञानभण्डार आगरा की एक पत्रात्मक अपूर्णपट्टावली के अनुसार दस भाई (दशभ्रातरः) थे ।

रहते थे। उनके पुत्र का नाम रत्नपाल था। श्रेष्ठि रत्नपाल की धर्मपत्नी क नाम सेतलदेवी था[१]। इनके कई[२] पुत्र थे जिनमें आप सबसे छोटे थे और आपका नाम सुभटपाल था। एक[3] पट्टावली के आधार पर चरणों की एक अंगुलि कम थी इसलिये चलते समय ऐसा आभास होता था कि किंचित् लंगड़े हों। सात[४]-आठ वर्ष की अवस्था तक आप माता-पिता के सानिध्य में रहे। पश्चात् आचार्य जिनसिंहसूरि के संपर्क में आये जिसका कारण निम्न था :—

आचार्य जिनसिंहसूरि

खरतरगच्छ[५] अपरनाम सुविहित गण के अधिनायक षट्त्रिंशद् वाद-विजेता युगप्रवरागम श्रीजिनपतिसूरि[६] के पट्टधर द्वितीय आचार्य जिनेश्वर-सूरि थे जिनका शासनकाल सं० १२७८ से १३३१ तक था। एक समय आचार्य जिनेश्वर पल्हूपुर की एक औषधशाला में विराजमान थे। उस समय अचानक ही आचार्यश्री का दण्ड तड़-तड़ शब्द करता हुआ टूट गया। आचार्यश्री ने तड़-तड़ शब्द सुनकर शिष्यों से पूछा कि यह शब्द कहाँ हुआ? शिष्यों ने कहा—भगवन्! आपके हस्त दण्ड के दो टुकड़े हो गए। उसी समय आचार्यश्री ने इस आकस्मिक प्रसंग के फल का चिन्तन-विचार किया

---

१. एक प्राचीन पद्य में भी :—

> **रमणपाल** णिम्मल विसाल कुलकमलदिवायर।
> **खेतलएवि** वरकुक्खिसर रायहंस सुंदर चरिय।

२. पंच० सातपुत्र, स० पट्टावली ३० पांचपुत्र में तृतीय नंबर वि० धर्म० दश भाइयों में से एक भाई के पुत्र (तत्र एकस्य लघुः)।

३. विजयधर्म० पट्टावली।

४. पंच. भूमिगृह में आपका लालन-पालन हुआ था (भूमिगृहे वर्धमानः)।

५. खरतरगच्छ की उत्पत्ति के सम्बन्ध में देखें लेखककृत 'बल्लभभारती'।

६. आचार्य जिनपतिसूरि और जिनेश्वरसूरि का जीवन चरित देखें, लेखककृत 'खरतरगच्छ का इतिहास', प्रथम भाग।

और हृदय में निश्चित किया कि 'मेरे पश्चात् इस विशाल खरतरसंघ में विभेद पड़ जायगा' तो क्यों नहीं मैं अपने हाथों से ही शाखाभेद कर दूँ।

इसी अवसर पर (संभवतः दिल्ली प्रदेशीय) श्रीमालसंघ ने मिलकर विचार किया कि अपने देश में कोई गुरु-धर्माचार्य नहीं आते हैं तो क्यों नहीं गच्छनायक से निवेदन कर अपने धर्माचार्य को इस प्रदेश में लावें। ऐसा विचार कर श्रीसंघ के प्रमुख-प्रमुख श्रेष्ठि आचार्य जिनेश्वर के पास आये और विधिपूर्वक वन्दन कर प्रार्थना की कि भगवन् ! हमारे देश में कोई भी गुरु नहीं आते हैं तो आपही श्रीमुख से फरमाइये कि हम क्या करें। गुरु के बिना धर्म साधन नहीं हो सकता। स्वामिन् ! आप जानते हैं कि सुयोग्य चालक (सारथी) के बिना बैल कभी भी सीधे मार्ग पर नहीं चलते हैं। अतः हमें धर्मसारथी शीघ्र ही प्रदान कीजिये।

श्रीमालसंघ की प्रार्थना को हृदयंगम और पूर्वनिमित्त फल का विचार करके आचार्य जिनेश्वर ने लाडनू निवासी[1] श्रीमालवंशोत्पन्न जिनसिंह गणि[2] को सं० १२८० पल्हूपुर[3] में आचार्य बनाकर जिनसिंहसूरि नामकरण किया और सूरिमन्त्र सहित पद्मावती मन्त्र साधना सहित प्रदान किया

१. प्राकृतप्रबन्ध में "लाडणुवाउत्तो" प्रयोग किया है। इस पद का क्या अर्थ है ? विद्वद्गण विचार करें।
२. जिनसिंहगणि का जन्म कब हुआ ? उनके माता-पिता का क्या नाम था ? उन्होंने कब दीक्षा ग्रहण की ? कब गणि बने ? आदि इतिवृत्त प्राप्त नहीं है।
३. जिनपालोपाध्याय लि. गुर्वावली के अनुसार सं. १२८० में आचार्य जिनेश्वर श्रीमालनगर में विराजते थे। और इस शाखाभेद तथा जिनसिंहगणि आचार्यपदप्राप्ति आदि का कोई उल्लेख नहीं है। अतः यह स्थल विचारणीय है। क्योंकि जिनपालोपाध्याय ने गणनायक के जीवन में घटित प्रत्येक घटना का आलेखन किया है, तो क्या यह घटना आलेख्य नहीं थी।

और आदेश दिया कि 'यह श्रीमालसंघ तुम्हें सौपता हूँ। संघ सहित उस प्रदेश में जाओ और धर्मपताका फहराओ।' इस आदेश को प्राप्त कर जिनसिंहसूरि श्रीमालसंघ सहित उस प्रदेश में आये।

इस प्रकार यह जिनसिंहसूरि से 'लघु खरतरशाखा' का उद्भव हुआ। आचार्य जिनेश्वरसूरि ने सं० १३३१ में ओशवंशीय जिनप्रबोधसूरि को अपने पद पर स्थापित किया, जो कि मूलगच्छा परम्परा में सर्वमान्य थे।

पद्मावती आराधना

एक समय आचार्य जिनचन्द्रसूरि ढिल्ली (दिल्ली) आये। धर्मोपदेश के समय आचार्य ने कहा कि 'मोक्ष का साधन होने के कारण नवीन जिन-प्रासादों का निर्माण करना चाहिये।' उपदेश श्रवण कर उपासक वर्ग ने विवेचन किया कि—नूतन प्रासादों के निर्माण का फल क्या? क्योंकि मुसलमान लोग न केवल जैनों के अपितु हिन्दुओं के भी प्राचीनतम तीर्थों, मंदिरों, प्रतिमाओं का नाश करते हैं और नष्ट करके उत्सव भी मनाते हैं। उनके इस अधार्मिक कार्य को रोकने की किसी में शक्ति नहीं है। अब हम प्राचीन-ऐतिहासिक स्थलों का भी रक्षण नहीं कर सकते तो नूतन निर्माण का क्या फल है? यदि आप में रक्षण की शक्ति है तो पहिले प्राचीनों का रक्षण कीजिये?

उपासक वर्ग के इस आह्वान को सुनकर आचार्य जिनसिंह ने देवाराधन का निश्चय किया और कहा कि—मैं छः मास पर्यन्त पद्मावती का आराधन कर उसे प्रत्यक्ष करूँगा और श्रीसंघ के कष्ट का निवारण करूँगा। किन्तु आराधनविधि के अनुसार यह अपेक्षित है कि पद्मिनी स्त्री द्वारा परोसा हुआ भोजन किया जाय और पद्मिनी दिन-रात मेरे समीप रहे। अर्थात् पद्मिनी लक्षणायुक्त नारी के निकटवर्ती रहने पर कठोर मानसिक ब्रह्मचर्य का पालन और एकनिष्ठ ध्यान से पद्मावती प्रत्यक्ष होती है।' उपासक वर्ग ने साधना-विधि के अनुसार समग्र साधन उपलब्ध कर दिये।

आचार्य जिनसिंह ने छः मास पर्यन्त एकनिष्ठ होकर प्रभावती देवी की उपासना की। आचार्य की [illegible] से पद्मावती प्रत्यक्ष हुई। देवी को प्रत्यक्ष देखकर भी आचार्य बोले नहीं। ऐसी अवस्था में पद्मावती ने कहा—

भगवन्! आप बोलते क्यों नहीं? विलंब से आने का कारण है। आपकी आराधना का मूलभूत कारण समझकर मैं प्रभु के पास गई थी और उनसे पूछकर आई हूँ किन्तु प्रभु द्वारा प्रदत्त प्रत्युत्तर कहने में असमर्थ हूँ। मुझे क्षमा करिये।

आचार्य : प्रभु द्वारा प्रदत्त क्या उत्तर है? कहो :

देवी : (पराधीन होकर) आपकी आयु थोड़ी है।

आचार्य : अब मेरी आयु कितनी अवशेष है।

देवी : (निश्वासपूर्वक) केवल छः मास।

आचार्य : देवि! यह ठीक है कि मेरी आयु बढ़ नहीं सकती। किन्तु जिस प्रसंग को लेकर मैंने यह आराधना की है, सफल होनी चाहिये, निष्फल नहीं।

देवी : अवश्य, आपकी आराधना अवश्य सफल होगी।

आचार्य : कैसे?

देवी : आपके शिष्य को मैं प्रत्यक्ष रहूँगी और उसके द्वारा महती शासनसेवा कराऊँगी।

आचार्य : ऐसा कौन-सा भाग्यशाली है जिसको तुम प्रत्यक्ष सहायता करोगी।

देवी : आपके गच्छ में कोई योग्य शिष्य नजर में नहीं आ रहा है।

आचार्य : जब गच्छ में कोई योग्य नहीं है तो मेरे पट्ट योग्य कोई शिष्य दीजिये।

देवी : मोहिलवाणी निवासी रत्नपाल का पुत्र सुभटपाल आपके पट्ट के योग्य है, जिसकी अवस्था अभी सात-आठ वर्ष की है।

आचार्य : देवि ! वह तो अभी निरा-बालक है उसके द्वारा सेवा तो अनागत की कल्पना है—आवश्यकता है तात्कालिक सेवा की।

देवि : अनागत की कल्पना होने पर भी निकट भविष्य में ही वह शासन की महती सेवा करेगा। अतः आप उसे प्रतिबोधित कर शीघ्र ही पट्ट शिष्य बनाइये। इतना कहकर पद्मावती देवी अन्तर्धान हो गईं।[1]

सुभटपाल की दीक्षा और आचार्यपद

पद्मावती देवी के कथनानुसार आचार्य जिनसिंहसूरि शीघ्र ही विहार कर मोहिलवाड़ी आये। उपासक वर्ग ने बड़े उत्सव के साथ नगर-प्रवेश करवाया। एक समय आचार्यश्री महाधर के निवास-स्थान पर गये। हर्षोल्लासित हृदय से श्रेष्ठि महाधर ने विधिपूर्वक वन्दन कर कहा—

भगवन्! मेरे घर पर आकर आपने मुझ पर महा उपकार किया है, इससे मैं कृतकृत्य हुआ हूँ। अब कृपा करके पधारने का कारण कहिये ?

आचार्यश्री : महानुभाव ! तुम्हारे घर मैं शिष्य के निमित्त आया हूँ। आप अपना एक पुत्र मुझे प्रदान करिये।

महाधर : जैसी आज्ञा, और सुभटपाल को छोड़कर अन्य पुत्रों को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर आचार्यश्री के सन्मुख लाया और कहा—पूज्यवर ! इन पुत्रों में से जो आपको प्रिय हो उसे ग्रहण कीजिये।

आचार्य : सात-आठ वर्षीय लघु पुत्र को न देखकर कहा—श्रेष्ठि ! दीर्घायुषी ये पुत्र तुम्हारे कुल की शोभा बढ़ावें। परन्तु मुझे सुभटपाल चाहिये।

श्रेष्ठि महाधर को अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि आचार्यश्री लघु सुभटपाल को ही क्यों चाहते हैं ? सुभट तो सबके हृदय का हार है, बच्चा है, उसे कैसे दूँ।

---

१. शुभशील पंच के आधार पर।

श्रेष्ठि महाधर की विचारशील मुद्रा को देखकर आचार्य जिनसिंह ने पद्मावती देवी का आदेश सुनाया और कहा कि आपके इसी पुत्र के द्वारा निकट भविष्य में शासन की महाप्रभावना होगी, यह ज्योतिर्धर शासन-प्रभावक आचार्य होगा।

'शासनप्रभावक होगा' यह सुनकर महाधर ने हर्षाभिभूत हृदय से श्रद्धापूर्वक सुभटपाल को आचार्यश्री के सानिध्य में समर्पित किया।

सं० १३२६ में आचार्य जिनसिंह ने सुभटपाल को महामहोत्सव के साथ दीक्षा प्रदान की। शिक्षा-दीक्षा-शास्त्राभ्यास और पद्मावती की साधना करते हुए सुभटपाल को गीतार्थ होने पर सं० १३४१ में किढिवाणा नगर में स्वहस्त से आचार्यगणनायक पद प्रदान कर जिनप्रभसूरि नाम रखा।

जन्म-दीक्षा-आचार्यपद-सम्वत्

प्राकृत वृद्धाचार्यप्रबन्धावली के अनुसार सुभटपाल की दीक्षा सं० १३२६ में हुई है। उक्त प्रबन्धावली एवं अन्य पट्टावलियों के अनुसार सुभटपाल की दीक्षा के समय आयु बाल्यावस्था या ७-८ वर्ष की है। अतः सुभटपाल की उस समय आयु कम से कम ८ वर्ष की मानी जावे तो आ० जिनप्रभ का जन्म-समय वि. सं. १४१८ के आस-पास स्वीकार किया जा सकता है।

पद्मावती-आराधना के प्रसंग पर देवी ने आचार्य जिनसिंहसूरि की ६ मास आयु शेष कही है, व दीक्षा १३२६ और आचार्यपद १३४७ में स्वहस्त से प्रदान करने का कहा है, जो युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता। सन्दर्भ को देखते हुए 'छ मास आयु शेष' वाला वाक्य परम्परागत किम्वदन्तीमात्र प्रतीत होता है। सत्य नहीं। अतः आचार्य जिनप्रभ का दीक्षा-समय १३२६ और आचार्यपद सं० १३४१ ही उपयुक्त प्रतीत होता है। आ० जिनसिंह-सूरि का स्वर्गवास भी १३४१ के बाद ही सम्भव है।

सोमधर्मगणि ने सं० १५०३ में रचित 'उपदेशसप्ततिका', पृ० ४८ पर लिखा है—

दन्तविश्वमिते वर्षे (१३३२) श्री जिनप्रभसूरयः ।
अभूवन् भूभृतां मान्याः प्राप्तपद्मावतीवराः ॥

अर्थात् वि० सं० १३३२ में, पद्मावतीवरप्राप्त एवं राजाओं के मान्य श्री जिनप्रभसूरि हुए ।

इसमें सोमधर्मगणि ने १३३२ किस आधार से दिया है ? विचारणीय है । क्या यह सम्वत् जन्म का सूचक है अथवा दीक्षा सम्वत् का सूचक है या आचार्यपद प्राप्ति का विचार करने पर दीक्षा एवं आचार्यपद-सम्वत् 'प्राकृतवृद्धाचार्यप्रबन्धावली' में प्रदत्त सम्वत् ही उपयुक्त प्रतीत होते हैं । सं० १३३२ की कोई संगति नहीं बैठती ।

दीक्षा-नाम

अष्टभाषाम आदिजिनस्तोत्र 'निरवधिरुचिर ज्ञानमय' पद्य ४० श्री जिनप्रभसूरि की कृति मानी जाती है । इस स्तोत्र के पद्य ४० वें में चक्र-बन्धकाव्य में कर्त्ता ने अपना नाम 'शुभतिलक' दिया है—

नन्दासोरुविशुद्धयोग[1]रसभोन्मीलत्[4]प्रतोषान्वितम्,
शास्तं सौष्ठवभ[2]ङ्गमोहरचनं त्वं क[5] जहस्तच्छविः ।
रुच्या भास्करति[3]ग्मसिद्धिरमणो संक्लृप्तभावः परम्,
दन्ताज्ञानरमां शमास्तरुष मे तन्याः सुविद्यां चिरम् ॥ ४० ॥

वि० सं० १५८३ की लिखित प्रति की अवचूरि में अवचूरिकार ने लिखा है—

'शुभतिलक' इति प्राक्तन नाम । श्री जिनप्रभसूरि-विरचितभाषाष्टक-संयुतस्तवावचूरिः ।'

अर्थात् 'शुभतिलक' यह नाम जिनप्रभ की दीक्षावस्था का है ।

श्री अगरचन्दजी नाहटा के संग्रह की प्रतिलिपि में, 'गायत्रीविवरण' की प्रान्त-प्रशस्ति में लिखा है—

'चक्रे श्रीशुभतिलकोपाध्यायैः स्वमतिशिल्पकल्पात् ।
व्याख्यानं गायत्र्याः क्रीडामात्रोपयोगसिद्धम् ॥
इति श्रीजिनप्रभसूरिविरचितं गायत्रीविवरणं समाप्तम् ।"

इन दो आधारों से यह माना जा सकता है कि जिनप्रभसूरि का दीक्षा-नाम शुभतिलक ही था । जिनप्रभ उपाध्याय पदधारी भी बने और सं० १३४१ में आचार्य बने फिर नाम परिवर्तन होने पर श्रीजिनप्रभसूरि कहलाये।

अध्ययन और अध्यापन

प्राप्त सामग्री के आधार पर जिनप्रभ के सम्बन्ध में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं है कि जिनप्रभ ने किन-किन के पास अध्ययन किया और किन-किन ग्रन्थों का निर्माण किया । हाँ, आचार्य जिनसिंह का जिनप्रभ की दीक्षा के ६ मास पश्चात् स्वर्गारोहण सत्य है और जिनसिंह से लघु खरतरशाखा का विहार-स्थल दिल्ली का निकटवर्ती प्रदेश होने से एवं वृद्ध-खरतर-शाखा के आचार्यों के साथ इस शाखा के सम्पर्क का उल्लेख न होने से दो तथ्य सामने आते हैं । प्रथम-पद्मावतीप्रत्यक्ष और दूसरा लघु शाखीय गीतार्थों द्वारा शिक्षा-ग्रहण । इसमें तो तनिक भी सन्देह का अवकाश नहीं है कि पद्मावती देवी आपको प्रत्यक्ष थी । गुरु जिनसिंह की आराधना का पूर्ण फल जिनप्रभ को प्राप्त हुआ जो आगे के परिच्छेदों से स्पष्ट है । किन्तु क्या विद्वत्प्रतिभा का सारा श्रेय भी पद्मावती को ही है ? 'अनक्षर भी असाधारण विद्वान् हो सकता है ?' इसमें सन्देह ही है, परन्तु यह समीचीन हो सकता है कि स्वशाखीय गीतार्थ-विद्वानों से शिक्षा-अध्ययन विधिवत् किया हो और उसके विकास में पद्मावती का सान्निध्य हो । यदि ६ मास आयु का वर्णन कल्पना मात्र है तो, स्पष्ट है कि इनका सारा अध्ययन अपने गुरु श्री जिनसिंहसूरि के सान्निध्य में ही हुआ है ।

यह निश्चित है कि व्याकरण, कोश, साहित्य, लक्षण, छन्द, न्याय, षड्दर्शन, मंत्र-तंत्र साहित्य, कथा और स्वदर्शन-शास्त्रों के वे पूर्ण पारंगत थे। जैसा कि आगे के परिच्छेदों में स्पष्ट है। यदि विधिवत् अध्ययन न किया होता तो यह सम्भव नहीं था कि दूसरे साधुओं को पढ़ाते और उनके रचित ग्रन्थों का संशोधन करते ? क्योंकि अध्ययन करने और कराने में महदंतर है। जब तक स्वयं का किसी भी विषय पर पूर्णाधिपत्य न हो तो अध्ययन कराना सहज नहीं है। अतः इन्होंने विधिवत् अध्ययन अवश्य किया है।

आचार्य जिनप्रभ शिक्षा-प्रसार के प्रेमी थे। शिक्षा-प्रसार के सन्मुख उनके लिये गच्छ या सम्प्रदाय, हिन्दू या अहिन्दू का भेद नहीं था। यही कारण है कि स्वयं खरतर-गच्छ के अग्रणी होते हुये भी अन्य गच्छों के कई आचार्यों-साधुओं को आपने विद्यादान दिया था और उनके रचित-ग्रन्थों के संशोधक और सहायक भी थे, तो कइयों को आचार्य-पद भी प्रदान किया था, जैसा कि तत्तद् आचार्य रचित ग्रन्थों से स्पष्ट है—

१. राजशेखरसूरि—हर्षपुरगच्छीय मलधारी आचार्य राजशेखर[1] ने न्याय का प्रसिद्ध और उत्कृष्ट ग्रंथ श्रीधरकृत न्यायकंदली का अध्ययन आचार्य जिनप्रभ से किया और न्यायकंदली पर पंजिका नाम की टीका रची :—

---

१. हर्षपुरगच्छीय मलधारी विरुदधारी अभयदेवसूरि संतानीय नरेन्द्रप्रभसूरि, पद्मदेवसूरि श्रीतिलकसूरि के शिष्य राजशेखरसूरि उस समय के नामांकित विद्वानों में से थे। आपके रचित निम्नग्रन्थ प्राप्त हैं—

१. प्रबन्धकोष (चतुर्विंशतिप्रबन्ध) र० सं० १४०५ ज्ये० शु० ७ मुहम्मदतुगलक से सम्मानित जगत्सिंह के पुत्र महणसिंह द्वारा निर्मापित वसति, दिल्ली।

२. प्राकृतद्वयाश्रयवृत्ति सं० १३८७, ३. स्याद्वादकलिका,
४. रत्नावतारिका पंजिका, ५. न्यायकंदली पंजिका।

श्रीमज्जिनप्रभविभोः [illegible] न्यायकन्दलीं किञ्चित्
तस्यां विवृतिलवमहं, करवै स्वपरोपकाराय ॥ ३ ॥

२. सङ्घतिलकसूरि—रुद्रपल्लीयगच्छीय श्रीगुणशेखरसूरि के शिष्य आचार्य संघतिलक[2] ने आचार्य जिनप्रभ के निकट रहकर विद्याभ्यास किया था और आपको योग्य समझ कर आचार्य जिनप्रभ ने आचार्यपद पर अभिषिक्त किया था—

ढिल्ल्यां साहिमहम्मदं शककुलक्ष्मापालचूडामणिं
ये न ज्ञान कलाकलापमुदितं निर्माय षड्दर्शनी ।
प्राकाश्यं गमिता निजेन यशसा साकं च सर्वागम-
ग्रन्थज्ञो जयतात् जिनप्रभगुरुर्विद्यागुरुर्नः मुदा ॥ ८ ॥

(सम्यक्त्वसप्ततिवृत्तिप्रशस्तिः)

---

६. षड्दर्शनसमुच्चय, ७. नेमिनाथ फागु ।

आचार्य राजशेखर के निर्देश से साधुपूर्णिमागच्छीय गुणचन्द्रसूरि के शिष्य पं० ज्ञानचंन्द्र ने रत्नकरावतारिका टिप्पण बनाया और संशोधन राजशेखर ने किया । तथा मुनिभद्रसूरिरचित शान्तिनाथ महाकाव्य (र० १४१०) का संशोधन भी राजशेखर ने ही किया ।

२. संघतिलकसूरिरचित निम्नग्रन्थ प्राप्त हैं—

१. सम्यक्त्वसप्ततिवृत्ति—र० १४२२ का० कृ० १४ सारस्वतपत्तन (सरसा) देवेन्द्रसूरि की प्रेरणा से, प्रथमादर्शलेखन, यशकुशल, सोमकुशल सहाय से, श्लो० ७७११,

२. ऋषिमंडलस्तव श्लो० ३७,
३. वर्द्धमान विद्याकल्प,
४. धूर्ताख्यान,

आचार्यपदप्रदान का उल्लेख संघतिलकसूरि के शिष्य सोमतिलकसूरि[१] अपरनाम विद्यातिलकसूरि ने शीलोपदेशमालावृत्ति में किया है—

तदीयचरणद्वयी सरसिजैकपुष्पन्धयः
स सङ्घतिलकप्रभुर्जयति साम्प्रतं गच्छराट् ।
शकक्षितिपबोधकृत् प्रभुजिनप्रभानुग्रहा,
न्ववाप्तगणभृत्पदप्रमुखतत्त्वविद्यागमः ।। ९ ।।

३. मल्लिषेणसूरि—नागेन्द्रगच्छीय महेन्द्रसूरि, आनन्दसूरि,[२] हरिभद्रसूरि,[३] विजयसेनसूरि,[४] उदयप्रभसूरि[५] के शिष्य आचार्य मल्लिषेणसूरि ने

---

१. विद्यातिलक आपका दीक्षावस्था का नाम है और आचार्य बनने पर सोमतिलकसूरि के नाम से आप प्रसिद्ध हुए। आपके रचित निम्नलिखित ग्रन्थ प्राप्त हैं—

१. कन्यानयनतीर्थकल्प	१३८९.	(प्र० विविधतीर्थकल्प)
२. लघुस्तवटीका	१०९७.	घृतघटीपुरी कांबोजकुलीयढ स्थाणु अभ्यर्थतया, (प्र० मुनि जिनविजयजी संपादित)
३. षड्दर्शनटीका	१३९२.	आदित्यवर्द्धनपुर,
४. शीलोपदेशमालाटीका	१३९३.	लालाधाजूप्रेरणया,
५. कुमारपालप्रबन्ध	१४२४.	(प्र० सिंघी जैन ग्रन्थमाला),

२. सिद्धराज जयसिंह द्वारा प्रदत्त व्याघ्रशिशुकविरुदधारी,

३. तत्त्वप्रबोधादिकग्रंथकार और कलिकालगौतमविरुदधारी,

४. मंत्रीश्वर वस्तुपाल तेजपाल के पितृपक्ष के गुरु और तन्निर्मित आबू + लूणिगवसही के प्रतिष्ठापक।

५. मंत्रीश्वर वस्तुपाल ने आपको आचार्यपद प्रदान किया था। आपके रचित धर्मशर्माभ्युदयमहाकाव्य, आरंभसिद्धि, नेमिनाथ चरित्र, उपदेशमालाकर्णिका, सुकृतकल्लोलिनी, षड्शीति टिप्पणक आदि प्राप्त हैं।

कुमारपालप्रतिबोधक आचार्य हेमचन्द्ररचित 'अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका' पर सं० १३४९ में विस्तृत टीका रची जो 'स्याद्वादमञ्जरी' के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्याद्वादमंजरी की रचना में आचार्य जिनप्रभ ने सहयोग दिया था—

श्रीजिनप्रभसूरीणां सहाय्योद्भिन्नसौरभ ।
श्रुतावुत्तंसतु सतां वृत्तिः **स्याद्वादमञ्जरी** ॥ ३ ॥
(स्याद्वादमंजरी टीका-प्रशस्तिः)

४. मुनि चतुरविजयजी ने जैनस्तोत्रसंदोह की प्रस्तावना[1] (पृ० ६९) में लिखा है कि आचार्य जिनसेन के शिष्य उभयभाषाकविशेखर आचार्य मल्लिषेणसूरि-रचित भैरवपद्मावती कल्प की रचना में आचार्य जिनप्रभ सहायक थे।

तीर्थयात्रा और विहार

स्वयं रचित कन्यानयनीय महावीरप्रतिभाकल्प और विद्यातिलक रचित कन्यानयनीयमहावीरकल्पपरिशेष के अनुसार सम्राट् के साथ शत्रुञ्जय, गिरनार तीर्थ, मथुरा, आगरा की यात्रा, दिल्ली से देवगिरि प्रतिष्ठानपुर, और देवगिरि से अल्लावपुर, सिरोह होकर दिल्ली, हस्तिनापुर की यात्राओं का उल्लेख है। शुभशीलगणि के कथाकोषानुसार जंघरालपुर, मरुस्थल-प्रवास का वर्णन है।

स्वयं रचित विविधतीर्थकल्प के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इतिहास और स्थल भ्रमण से इनको बड़ा प्रेम था। इन्होंने अपने जीवन में भारत के बहुत से भागों में परिभ्रमण किया था। गुजरात, राजपूताना, मालवा, मध्यप्रदेश, वराड़, दक्षिण, कर्णाटक, तेलंग, विहार, कोशल,

---

१. 'श्रीजिनसेनशिष्योभयभाषाकविशेखरश्रीमल्लिषेणसूरिविरचिते भैरवपद्मावतीकल्पेऽप्यस्यैव सहाय्यम् ।'

अवध, युक्तप्रान्त और पंजाब आदि के कई पुरातन और प्रसिद्ध स्थानों की उन्होंने यात्रा की थी।[१] × × × × × × यदि इन सब स्थानों को प्रांत या प्रदेश की दृष्टि से विभक्त किये जायँ तो इनका पृथक्करण कुछ इस प्रकार होगा :—

गुजरात और काठियावाड़	युक्तप्रान्त और पंजाब
शत्रुञ्जयमहातीर्थ	अहिच्छत्रपुर
गिरनारमहातीर्थ	हस्तिनापुर
अश्वावबोधतीर्थ	दिल्ली
स्तम्भनकपुर	मथुरा
अणहिलपुर	वाराणसी
शंखपुर	कौशाम्बी
हरिकंखीनगर	(आगरा)
(जंघरालपुर)	कन्यानयन
(जीरापल्लीपार्श्वनाथ)	
अवध और विहार	राजस्थान और मालवा
वैभारगिरि	अर्बुदाचलतीर्थ
पावापुरी	सत्यपुरतीर्थ
पाटलीपुत्र	शुद्धदन्दनगरी
चम्पापुरी	फलवर्द्धितीर्थ
कोटिशिला	ढिपुरीतीर्थ
कलिकुंडकुर्कुटेश्वर	कुडुंगेश्वरतीर्थ
मिथिला	अभिनंदनदेवतीर्थ
रत्नपुर	दक्षिण और वराड
काम्पिल्यपुर	नासिकपुर

१. विविधतीर्थकल्प, सं० मुनि जिनविजय प्रास्ताविक निवेदन, पृ० १-२।

अयोध्यापुरी	प्रतिष्ठानपत्तन
श्रावस्तीनगरी	(देवगिरि)
कर्णाटक और तैलंग	अंतरीक्षपार्श्वतीर्थ
कुल्यपाक माणिक्यदेव	
अमरकुण्ड पद्मावती	

सं० १३७६ में दिल्ली के संघपति सा० देवराज ने शत्रुञ्जय, गिरनार आदि तीर्थों का संघ निकाला था। उस संघ में सूरिजी भी साथ थे। ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी को शत्रुंजय तीर्थ की और ज्येष्ठ शुक्ला १५ को गिरनार तीर्थ की यात्रा की थी।[1] इस प्रसंग पर रचित तीर्थयात्रास्तोत्र से संघ ने निम्नलिखित तीर्थों की यात्रा की थी—

शत्रुंजय, गिरिनार, शेरोषक, फलवर्द्धि-शंखेश्वर-स्तंभनकपार्श्वनाथ, पाडलनगर, नारंगा, भृगुकच्छ, वायडनगर जीवितस्वामी, हरपट्टण, अहिपुर, जालोर, पाल्हणपुर, भीमपल्ली, श्रीमाल, अणहिलपुर, सिसिखिज्ज, आशापल्ली धोलका और धंधुका।

सं० १३६९ फलवर्द्धिपार्श्वनाथ की यात्रा[2] की थी और सं० १३८६ में ढिपुरीतीर्थ की यात्रा। सं० १३९१ उपकेशगच्छीय कक्कसूरि रचित नाभिनंदनजिनोद्धारप्रबन्ध के अनुसार सं० १३७७ के पश्चात् शत्रुञ्जयतीर्थ के उद्धारक संघपति समरसिंह के संघ के साथ सूरिजी ने मथुरा, हस्तिनापुर आदि तीर्थों की यात्रा की थी और समरसिंह को संघपति पद प्रदान किया था—

'पातसाहिस्फुरन्मानाद्धर्मवीरः स्मरस्तथा।
मथुरायां हस्तिनागपुरे जिनजनिक्षितौ।। ३२८ ।।

---

१. देखें, तीर्थयात्रास्तोत्र और स्तुतित्रोटक।

२. देखें, फलवर्द्धिमण्डनपार्श्वस्तोत्र।

बहुभिः सङ्घपुरुषैः श्रीजिनप्रभसूरिभिः ।
समन्वितस्तीर्थयात्रां चक्रे सङ्घपतिर्भवन् ।। ३२९ ।।
(प्रस्ताव ५, श्लो० ३१८-३२९)

उपदेश से प्रबुद्ध—जैन पुस्तकप्रशस्ति-संग्रह, प्रथम भाग, प्रशस्ति १७ गूर्जरवंशीय साधु महणसिंह लिखित (भावदेवसूरिकृत) पार्श्वनाथचरित्र पुस्तक प्रशस्ति के अनुसार गुर्जरवंशीय सौम्य ने आचार्य जिनप्रभ से सुधर्म ग्रहण किया था—

सौम्योऽजनि प्रवरधीर्विपुलेऽत्रवंशे
य: सोमकान्त इव सज्जनदर्शनीयः ।
श्रीमज्जिनप्रभविभोर्भवभित्प्रसाद
मासाद्यसद्गुणनिधिर्विदधे सुधर्मम् ।। ३ ।।[1]

× × × ×

जैन पुस्तक प्रशस्तिसंग्रह प्रथम भाग, प्रशस्ति ६०, पल्लिवालवंशीय श्राविका कुमरदेवी लिखित औपपातिक-राजप्रश्नीय सूत्रद्वयपुस्तक प्रशस्ति के अनुसार पल्लिवालवंशीय अरिसिंह की पत्नी कुमरदेवी ने आचार्य जिनप्रभ के पास विधिवत् श्राविका धर्म स्वीकार किया—

श्रीमत्सूरिजिनप्रभांङ्किमले धर्म प्रपद्यानघं,
या तुर्यां प्रतिमामुवाह विधिवत्सुश्रावकाणां मुदा ।
श्रद्धावृद्धित एव वित्तपवनं क्षेत्रेपु सप्तस्वधो,
तन्वन्ती तनुजानसूत मनुजानीशः समाजस्तु ताध ।।४।।

× × × ×

अश्रावि सुश्राविकया, कुमरदेव्याऽन्यदा मुदा ।
श्रीजिनप्रभसूरीणां, गुरूणां धर्मदेशना ।। १५ ।।

---

१. इसका लेखन-काल १३७९ आश्विन सुदि १४ बुधवार है ।

विचारणीय प्रश्न

जिनप्रभसूरि रचित सिद्धान्तागमस्तव के अवचूरिकार आदिगुप्त ने अवतरणिका में लिखा है :

"पुरा**श्रीजिनप्रभसूरिभिः** प्रतिदिनं नवस्तवनिर्माणपुरस्सरं निरवद्याहार ग्रहणाभिग्रहवद्भिः प्रत्यक्षपद्मावतीदेवीवचसामभ्युदयिनं श्रीतपागच्छं विभाव्य भगवतां श्रीसोमतिलकसूरीणां स्वशैक्षशिष्यादिपठनविलोकनाद्यर्थं यमकश्लेष-चित्रछान्दोविशेषादिनवनवभङ्गीसुभगाः सप्तशतीमिताः स्तवा उपदीकृता निजनामाङ्किताः।"

अभिप्राय यह कि पद्मावतीदेवी के वचनों से तपागच्छ का उदय देखकर ७०० स्तोत्र सोमतिलकसूरि को अर्पित किये।

विचारणीय प्रश्न इतना ही है कि आचार्य जिनप्रभ ने तपागच्छ का भविष्य में उदय देखकर सहज सौहार्द से स्तोत्र-साहित्य अर्पित किया था? क्योंकि जहाँ स्वयं ने तपोरमतकुट्टनशतं में तपागच्छ को शाकिनीमत तुल्य मानकर भर्त्सना की है, त्याज्य बतलाया है, वहाँ 'उदय' देखकर अर्पण करना युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होता।

इतिहास एवं परंपरा से भी यह सिद्ध है कि खरतरगच्छ और तपागच्छ आचार्य जिनप्रभ से लेकर २९वीं शती पूर्वार्ध तक दोनों गच्छों का विपुल समुदाय, साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका समुदाय समान रूप से ही रहा; न कि खरतरगच्छ का ह्रास और तपागच्छ का उदय। यह विपुल समुदाय पिष्ट से ही नहीं अपितु साहित्य-सर्जना शासन-प्रभावना आदि प्रत्येक दृष्टियों से आँका जा सकता है। हाँ, वर्तमान समय में खरतरगणीय समुदाय का प्रत्येक दृष्टि से ह्रास और तपागच्छ का अभ्युदय अवश्य हुआ है।

दूसरी बात, जहाँ तपागच्छीय शुभशीलगणि ने अपने कथाकोष में जिनप्रभसूरि के अनेक चमत्कारों के वर्णन में कई प्रबन्ध लिखे हैं, वहाँ

इस प्रसंग की गंध भी नहीं है। अन्यथा ऐसी महत्त्वपूर्ण वार्ता का अवश्य उल्लेख करते।

अवचूरिकार के अतिरिक्त इस प्रसंग का किसी भी लेखक ने उल्लेख नहीं किया है। अतः 'तपागच्छ का अभ्युदय' देखकर लिखना गुच्छाग्रह मात्र प्रतीत होता है।

हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि आचार्य जिनप्रभ के हृदय में गुच्छाग्रह या गच्छवाद नाम की कोई वस्तु नहीं थी। यही कारण है कि हर्षपुरगच्छीय राजशेखरसूरि, रुद्रपल्लगच्छीय संघतिलकसूरि, विद्यातिलकसूरि, नागेन्द्र-गच्छीय मल्लिषेणसूरि आदि विविधगच्छीय आचार्यों और साधुओं को मुक्तहृदय से अध्ययन कराया था। और शुभशील गणिकृत कथाकोषानुसार तपागच्छीय सोमप्रभसूरि के साध्वाचार की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी। अतः संभव है कि "सोमतिलकसूरीणां स्वशैक्षशिष्यादिपठनविलोकनार्थं" कहने पर स्वरचित ७०० संख्यात्मक स्तोत्र-साहित्य की प्रतिलिपि उन्हें सहज सौहार्द से उदारमना होकर प्रदान किये हों।

सोमप्रभसूरि से मुलाकात या सोमसुन्दरसूरि से ?

शुभशीलगणि के लेखानुसार सम्राट् के साथ प्रवास करते हुए जंघराल नगर में सोमप्रभसूरि से मुलाकात हुई और दोनों ने दोनों का हार्दिक अभिनन्दन ही नहीं किया अपितु मुक्तकण्ठों से प्रशंसा भी की; जो वस्तुतः आज के साधु-समाज के लिये मननीय और अनुकरणीय है।

इतिहास से सिद्ध है कि जिनप्रभसूरि का सम्राट् से मिलन सं० १३८५ में हुआ था जब कि सोमप्रभसूरि का स्वर्गवास सं० १३७३ में हो गया था। अतः सोमतिलकसूरि से जिनप्रभ की भेंट हुई होगी। भ्रम से सोमतिलक के स्थान पर सोमप्रभ का उल्लेख हो गया प्रतीत होता है।[1]

---

१. देखें, जिनप्रभसूरि अने सुलतानमुहम्मद, पृ० ६६-६७ की टिप्पणी।

मुहम्मद तुगलक-प्रतिरोध और तीर्थरक्षा[1]

वैक्रमीय चौदहवीं शती के अन्तिम चरण में दिल्ली के सिंहासन पर तुगलकवंशीय सुलतान मुहम्मद[2] आसीन था; जो कि अपनी न्यायप्रियता, उग्र प्रकृति और अस्थिर स्वभाव के लिये प्रसिद्ध था। एक समय राजसभा में विद्वानों के साथ विद्वद्गोष्ठी करते हुए मुहम्मद तुगलक ने पण्डितों से पूछा कि 'इस समय विशिष्ट प्रतिभाशाली विद्वान् कौन है ?'

सभासदस्थ ज्योतिषी धाराधर ने कहा कि 'सम्राट्! इस समय दिल्ली में ही क्या अपितु भारतवर्ष में अपने विद्या, चमत्कार और अतिशय के कारण आचार्य जिनप्रभसूरि प्रसिद्ध हैं। आचार्य के गुणों की क्या प्रशंसा की जाय, वे तो साक्षात् सरस्वतीपुत्र हैं।'

सम्राट्—अच्छा ! ऐसे समर्थ विद्वान् हैं !! तो धाराधर यह बतलाओ कि वे आज कल कहाँ रहते हैं ?

धाराधर—दिल्ली का परम सौभाग्य है कि वे आज कल दिल्ली के शाहपुरा में विराजमान हैं।

---

१. यह अध्याय स्वयं आचार्य जिनप्रभसूरि रचित कन्यानयनमहावीर-तीर्थकल्प और विद्यातिलक प्रणीत कन्यानयनमहावीरकल्प परिशिष्ट के आधार पर लिखा गया है।

२. मुहम्मद तुगलक (राज्यकाल १३२५-५१ ई०) के लिये देखें, डा० ईश्वरीप्रसाद लिखित भारत का इतिहास पृ० २२३, से २३२, मुहम्मद तुगलक का पूर्वनाम फखरुद्दीन जूना खां था। इसी के सहयोग से, इसके पिता गाजी मलिक दिल्ली पर अधिकार कर सके। जूना खां ने वारंगल विजय कर सुलतानपुर नाम रखा था। यह वही तुगलक है जो दौलताबाद को भारत की राजधानी बना रहा था। इसी के समय में तांबे के सिक्के का प्रचार हुआ था।

सम्राट्—धाराधर ! तो क्या ऐसे प्रभावशाली आचार्य के दर्शन हमें नहीं कराओगे ?

धारा—राजन् । वे तो परम निस्पृही मुनि हैं । फिर भी आप की विनती है तो वे आप को अवश्य दर्शन देंगे ।

सम्राट्—तो धाराधर, यह कार्य तुम्हें सौंपा जाता है । तुम बड़े सन्मान के साथ आचार्य को यहाँ अवश्य लाना ।

बादशाह से मिलन व सत्कार

धाराधर के द्वारा सम्राट् का आमंत्रण पाकर सं० १३८५ पौष शुक्ला द्वितीया की सन्ध्या को आचार्य सम्राट् से मिले । सम्राट् ने अपने समीप ही आचार्य को बैठाकर प्रेमपूर्वक कुशल-प्रश्न किया । प्रत्युत्तर में आचार्य ही ने नवीन पद्य रखकर आशीर्वाद प्रदान किया । आशीर्वादात्मक पद्यों का लालित्य और छटा देखकर सम्राट् बहुत प्रसन्न हुआ । लगभग अर्द्ध रात्रि तक आचार्यश्री के साथ सम्राट् की एकान्तगोष्ठी होती रही । रात्रि अधिक व्यतीत हो जाने के कारण सूरिजी ने अवशेष रात्रि वहीं महलों में ही पूर्ण की । प्रातःकाल सुलतान ने पुनः आचार्यश्री को अपने पास बुलाया और सन्तुष्ट होकर १००० गाय, द्रव्य समूह, मनोहर एवं रमणीय उद्यान, १०० वस्त्र, १०० कम्बल एवं अगर, चंदन, कर्पूरादि सुगन्धि द्रव्य आचार्यश्री को अर्पण करने लगा । परन्तु 'जैन-साधुओं को यह सब ग्रहण करना आचार विरुद्ध है' आदि वाक्यों से सुलतान को समझाते हुये उन सब वस्तुओं को ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया । फिर भी सम्राट् का विशेष आग्रह देखकर, सम्राट् को अप्रीति न हो इसलिये राजाभियोग वश उनमें से कुछ कम्बल, वस्त्र आदि ग्रहण किये ।

सम्राट् ने विविधदेशीय विद्वानों के साथ आचार्यश्री की वाद-गोष्ठी करवाकर दो श्रेष्ठ हाथी मँगवाये । उनमें से एक पर आचार्य जिनप्रभसूरि को और दूसरे पर आचार्यश्री के शिष्य आचार्य जिनदेवसूरि को बिठा-

---

१. देखें, 'शिष्य परिवार-परंपरा और साहित्यसर्जन' परिच्छेद ।

कर[1], मदनभेरी, शंख, मृदग, मर्दल, कंसाल और दोल आदि अनेक प्रकार के शाही वादित्रों के समारोहपूर्वक, आचार्यश्री को शाहपुरा की पौषधशाला में पहुँचाया। उस समय भट्ट-चारण आदि विरुदावली गा रहे थे, राज्याधिकारी प्रधानवर्ग और चारों वर्णों की प्रजा भी प्रवेशोत्सव में सम्मिलित थी। जैन संघ में आनन्द का पार नहीं था। आचार्यश्री के जय-जयकार से दशों दिशाएँ मुखरित हो रही थीं। उपासक वर्ग ने इस सुअवसर में आडम्बर के साथ प्रवेश महोत्सव किया और याचकों को प्रचुर दान देकर सन्तुष्ट किया।

संघरक्षा और तीर्थरक्षा की फरमान

सुलतान का आचार्यश्री से सम्पर्क बढ़ता गया और आचार्यश्री की साधुता, गम्भीरता, विद्वत्ता आदि की छाप सम्राट् के हृदय पर पड़ी। उस समय जैन-समाज पर आये दिन अनेक प्रकार के उपद्रव हुआ करते थे। उनका निवारण करने के लिये आचार्यश्री ने सम्राट से एक फरमान-पत्र प्राप्त किया और उसकी नकलें प्रत्येक प्रान्तों में भिजवा दी। इससे श्वे० जैन-संघ उपद्रवरहित हुआ और शासन की विशेष उन्नति हुई। इसी प्रकार एक समय सम्राट् आचार्यश्री पर अत्यन्त प्रसन्न[2] हुआ और आचार्य के कथनानुसार सम्राट् ने तत्काल ही शत्रुंजय, गिरनार,

---

१. हाथी पर चढ़ना जैन मुनि के आचार के प्रतिकूल है किन्तु सम्राट् का आग्रह और शासन की प्रभावना को ही लक्ष्य में रखकर यह अपवाद्-मार्ग ग्रहण किया प्रतीत होता है। इसी प्रकार का एक और उल्लेख प्रभावक चरित में भी सूराचार्य के लिये प्राप्त होता है।

२. स्वयं कवि रजित 'शत्रंजयतीर्थकल्प', जिसका कि कवि ने स्वयं 'राजप्रसादकल्प' अमरनाम रखा है; जिसका कारण यही प्रतीत होता है कि सम्राट् ने प्रसन्न होकर जब तीर्थरक्षा के फरमान दिये तो आचार्य ने सम्राट् का नाम चिरकाल तक रहे—इस दृष्टि से राजप्रसाद यह नाम रखा:—

फलवर्द्धि आदि तीर्थों की रक्षा के लिये फरमान-पत्र लिखवाकर आचार्य को दिये। उन फरमान-पत्रों की नकलें भी तीर्थस्थानों में भेज दी गई। इसी प्रकार एक समय आचार्यश्री के उपदेश से सम्राट् ने बहुत से बंदियों को मुक्त किया।

कन्यानयनीय[1] महावीर प्रतिमा का इतिहास और उद्धार।

विक्रमपुर[2] निवासी (युगप्रवरागम जिनपतिसूरिजी[3] के चाचा[4])

प्रारम्भेप्यस्य राजाधिराजः सङ्घेप प्रसन्नवान्।
अतो राजप्रसादाख्यः कल्पोऽयं जयताच्चिरम्॥
श्रीविक्रमाब्दे बाणष्टविश्वदेवमिते शितौ।
सप्तम्यां तपसः काव्यदिवसेऽयं समर्थितः॥

(शत्रुञ्जयकल्प)

१-२. कन्यानयन और विक्रमपुर के स्थान निर्णय में काफी मतभेद है। पं० लालचन्द भगवान् गाँधी दक्षिणदेश में कानानूर और उसी के निकट विक्रमपुर को स्वीकार करते हैं किन्तु श्री अगरचन्दजी भंवरलालजी नाहटा कन्यानयन को कन्याणा (जिंदरियासत और विक्रमपुर जैसलमेर के निकट स्वीकार करते हैं, जो युक्तियुक्त प्रतीत होता है। यह देखिये नाहटाजी के प्रमाण—

पं० लालचन्द भगवानदास का मत है कि उपरयुक्त कन्नाणय या कन्यानयनवर्त मान कालानूर है। पर हमारे विचार से यह ठीक नहीं है। क्योंकि उपर्युक्त वर्णन में, सं० १२४८ में उधर तुर्कों का राज्य होना लिखा है; किन्तु समय दक्षिण देश के कानानूर में तुर्कों का राज्य होना अप्रमाणित है। 'युगप्रधानाचार्य गुर्वावली' में (जो कि श्री जिनविजयजी द्वारा सम्पादित होकर 'सिंघि जैन ग्रन्थमाला' में प्रकाशित होनेवाली है) कन्यानयन का कई स्थलों में उल्लेख आता है। उससे भी कन्नाणय, आसीनगर (हाँसी के निकट, बागुड़ देश में होना सिद्ध है। जिस कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा के सम्बन्ध में ऊपर उल्लेख आया है उसकी प्रतिष्ठा के विषय में भी

गुर्वावली में लिखा है कि—सं० १२३३ के ज्येष्ठ सुदी ३ को* आशिकामें बहुत से उत्सव समारोह होने के पश्चात्, आसाढ महीने में कन्यानयन के जिनालय में श्री जिनपति सूरिजी ने अपने पितृव्य सा० मानदेव कारित महावीर बिंब की प्रतिष्ठा की और व्याघ्रपुर में पार्श्वदेवगणि को दीक्षा दी। कन्यानयन के सम्बन्ध में गुर्वावली के अन्य उल्लेख इस प्रकार है—

संवत् १३३४ में श्रीजिनचन्द्र सूरिजी की अध्यक्षता में कन्यानयन निवासी श्रीमालज्ञातीय सा० कालाने नागोर से श्रीफलोधी पार्श्वनाथजी का संघ निकाला, जिसमें कन्यानयनादि सकल वागड़ देश व सपादलक्ष देश का संघ सम्मिलित हुआ था।

संवत् १३७५ माघ सुदी १२ के दिन नागोर में अनेक उत्सवों के साथ श्रीजिनकुशल सूरिजी के वाचनाचार्य-पद के अवसर पर संघ के एकत्र होने का जहाँ वर्णन आता है वहाँ 'श्रीकन्यानयन, श्रीआशिका, श्रीनरभट प्रमुख नाना नगर-ग्राम वास्तव्य सकल वागड़ देश समुदाय' लिखा है।

संवत् १३७५ वैशाख वदी ८ को मन्त्रिदलीय ठक्कुर अचलसिंह ने सुलतान कुतुबुद्दीन के फरमान से हस्तिनापुर और मथुरा के लिये नागौर से संघ निकाला। उस समय, श्रीनागपुर, रुणा, कोसवाणा, मेड़ता, कडुयारी नवाहा, झुंझुणु, नरभट, कन्यानयन, आसिकाउर, रोहद, योगिनीपुर, धामइना, जमुनापार आदि स्थानों का संघ सम्मिलित हुआ लिखा है। संघने क्रमशः चलते हुए नरभट में श्रीजिनदत्तसूरि प्रतिष्ठित श्रीपार्श्वनाथ महातीर्थ की वन्दना की। फिर समस्त वागड़ देश के मनोरथ पूर्ण करते हुए कन्यानयन में श्रीमहावीर भगवान् की यात्रा की।

श्रीजिनचन्द्र सूरिजी ने खण्डासराय (दिल्ली) में चातुर्मास करके मेडता के राणा मालदेव की विनती से विहार कर मार्ग में धामइना, रोहद आदि नाना स्थानों से होकर कन्यानयन पधार कर महावीर प्रभु को नमस्कार किया।

---

*गुर्वावली, पृ० २४ के अनुसार आषाढ मास है।

संवत् १३८० में सुलतान गयासुद्दीन के फरमान लेकर दिल्ली से शत्रुंजय का संघ निकाला। वह सर्वप्रथम कन्यानयन आया, वहाँ वीर प्रभु की यात्रा कर फिर आशिका, नरभट, खाटू, नवहा, झुंझणू आदि स्थानों में होते हुए, फलौधी पार्श्वनाथजी की यात्राकर, शत्रुंजय पहुँचा उपर्युक्त इन सारे अवतरणों से कन्यायन का, आशिका के निकट वागड़ देश में होना सिद्ध होता है। श्रीजिनप्रभ सूरिजी ने कन्यानयन के पास 'कयंवासस्थल' का जो कि मंडलेश्वर कैमास के नाम से प्रसिद्ध था, उल्लेख किया है। मंडलेश्वर कैमास का सम्बन्ध भी कानानूर से न होकर हाँसी के आस-पास के प्रदेश से ही हो सकता है। गुर्वावली के अवतरणों से नागौर से दिल्ली के रास्ते में नरभट और आशिका के बीच में कन्यानयन होना प्रमाणित है। अनुसन्धान करने पर इन स्थानों का इस प्रकार पता लगा है—

नरभट—पिलानी से ३ मील।

कन्यानयन—वर्तमान कन्नाणा दादरी से ४ मील जिंद रिसायत में है।

आशिका—सुप्रसिद्ध हाँसी।

पं० भगवानदासजी जैन ने ठ० फेरु विरचित 'वस्तुसार' ग्रन्थ की प्रस्तावना में कन्यानयन को वर्तमान करनाल बतलाया है, परन्तु हमें वह ठीक नहीं प्रतीत होता है। गुर्वावली के उल्लेखानुसार करनाल कन्यानयन नहीं हो सकता।

इसमें अब एक यह आपत्ति रह जाती है कि श्रीजिनप्रभ सूरिजी ने स्वयं 'कन्यानयनीय-महावीरकल्प' में कन्यानयन को चोल देश में लिखा है। हमारे विचार से यह चोल देश, जिस स्थान को हम बतला रहे हैं; पूर्वकाल में उसे भी चोल देश कहते हों। इस विषय में विशेष प्रमाण न मिलने से विशेष रूप से नहीं कह सकते परन्तु गुर्वावली में महावीर प्रतिमा की प्रतिष्ठा के सम्बन्ध में जब यह उल्लेख है कि—सं० १२३३ के ज्येष्ठ सुदी ३ को, आशिका में धार्मिक उत्सव होने के पश्चात् आषाढ में ही

कन्यानयन में महावीर विंब की प्रतिष्ठा श्रीजिनपति सूरिजी द्वारा हुई; और वहाँ से फिर व्याघ्रपुर आकर पार्श्वदेव को दीक्षित किया। श्रीजिनप्रभसूरिजी ने भी प्रतिमा को 'सा० मानदेव कारित, सं० १२३३ आषाढ सुदी १० को प्रतिष्ठित, मानदेव को श्रीजिनपति सूरिजी का चाचा होना, और प्रतिष्ठा भी श्रीजिनपति सूरिजी द्वारा होना' लिखा है। उसी प्रकार ये सारी बातें प्राचीन गुर्वावली से भी सिद्ध और समर्थित हैं। पिछले उल्लेखों में भी जो कि कन्यानयन के महावीर भगवान् की यात्रा के प्रसङ्ग में है. कन्यानयन को वागड़ देश में आशिका के पास ही बतलाया है। इन सब बातों पर विचार करते हुए हमारी तो निश्चित राय है कि कन्यानयन कानानूर न होकर वर्त्तमान कन्नाणा ही है। जिस प्रकार वागड़ देश ४ हैं, इसी प्रकार चोल देश भी दो हो सकते हैं।

विक्रमपुर स्थल-निर्णय

सा० मानदेव के निवास स्थान विक्रमपुर को पं० लालचंद भगवान दास ने दक्षिण के कानानूर के पास का बतलाया है; पर यह विक्रमपुर तो निश्चितया जेसलमेर के निकटवर्ती वर्तमान विक्रमपुर है। श्रीजिनपति सूरिजी के रासमें 'अत्थिमरुमंडले नयरविक्कमपुरे' शब्दों से विक्रमपुर को मरुस्थल में सूचित किया है। संभव है सा० मानदेव व्यापारादि के प्रसङ्ग सेवागड़ देश के कन्यानयन में रहते हों और वहीं श्रीजिनपति सूरिजी के जाने पर महावीर भगवान् की प्रतिष्ठा कराई हो। 'जैन स्तोत्र संदोह' भा० २ की प्रस्तावना, पृ० ४० में इस विक्रमपुर को बीकानेर बतलाया है, पर वह भूल है। बीकानेर तो उस समय बसा भी नहीं था, उसे तो राव बीकाने, सं० १५४५ में बसाया है। पूर्वका विक्रमपुर जेसलमेर निकटवर्ती वर्तमान विक्रमपुर ही है।

३. युगप्रभ सगम जिनपतिसूरि के लिए देखें, लेखककृत खरतरगच्छ का इतिहास, प्रथम खंड।

शाह मानदेव ने २३ अंगुल प्रमाण मम्माण प्रस्तर की महावीर स्वामी की प्रतिमा का निर्माण करवाकर सं० १२३३ आषाढ शुक्ला १० गुरुवार को आचार्य जिनपतिसूरिजी के वरदहस्तों से, प्रतिष्ठा करवाकर चोल-देशस्थ कन्यानयन में स्थापित की।

सं० १२४८ में पृथ्वीराज चौहान के सुरत्राण शहाबुद्दीन गोरी द्वारा मारे जाने पर, सम्राट पृथ्वीराज चौहान के अंतरंगसखा, राज्यप्रधान सेठ रामदेव ने कन्यानयनीय श्रावक संघ को लिखा—'तुर्कों का राज्य हो गया है अतः श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा को प्रच्छन्न रूप से रखना आवश्यक है।' इस संदेश को पाकर कन्यानयनीय उपासकों ने दाहिमकुलमंडण

---

४. मुनि जिनविजय संपादित जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह, प्रशस्ति नं० ५४ के अनुसार शाह मानदेव जिनपतिसूरि के बाबा (पिता के बड़े भाई) थे—

प्रगुणगुणमयोऽत्र **पार्श्वनामा** ध्वजकमलां कलयांचकार साधुः।
स्म जयति मृगं मृगांकगं, यो मधुरयशः कलकिंकिणीप्रगानैः ॥ २ ॥

चत्वारो **मानदेवः कुलधर-बहुदेवौ यशोवर्द्धनोऽस्य**,
श्रीभर्तुर्बाहुभूता अजनिषत सुता धर्मकर्मप्रवीणाः।
सत्पुत्रा मानदेवाद् य इह धनदेवस्तथा राजदेवो,
निम्बार्काश्चाविरासन् हिमगिरित इव स्वर्गसिन्धुप्रवाहाः ॥ ३ ॥

देवधर–लोहदेवौ जातौ कुलधरांगजौ।
शब्दाभ्यां कुंडलाभाभ्यां पुण्यश्रीः समभूष्यत ॥ ४ ॥

बिभ्रेजे मुनिचन्द्रमा **जिनपतिः** पुत्रो **यशोवर्धन**–
क्षीराब्धेर्जिनचन्द्रविष्णुपदमाक्रान्तं नितान्तं महत्।
बालेनाऽपि हि येन साधुषु बहुज्योतिष्षु राज्यं दधेः
शेषानां शिरसि स्थितं पितृकुलं विश्वं च संप्रीणितं ॥ ५ ॥

मंडलेश्वर कैमास के नाम से बसे हुये 'कयंवासस्थल' में विपुलबालू के नीचे प्रतिमा को गाड़ दी।

सं० १३११ के अतिदारुण दुर्भिक्ष में जीविकोपार्जन के लिये जोजओ नामक सूत्रधार सकुटुम्ब कन्यानयन से सुभिक्ष देश की ओर चला। 'प्रथम प्रयाण थोड़ा ही करना चाहिये' यह विचार कर सूत्रधार ने कयवांस स्थल में ही रात्रिनिवास किया। अर्धरात्रि में स्वप्न में अधिष्ठापक ने उससे कहा—'जहाँ तुम शयन कर रहे हो उससे कुछ हाथ नीचे भगवान् महावीर स्वामी की प्रतिमा है। तुम इसे प्रकट करो। तुम्हें भी देशान्तर जाने की जरूरत नहीं है। तुम्हारा निर्वाह यहीं हो जायगा।' सूत्रधार जोजक स्वप्न देखकर ससंभ्रम उठा और उस स्थान को अपने पुत्रादि से खुदवाने पर महावीर प्रभु की प्रतिमा प्रकट हुई। अत्यंत प्रमुदित होकर सूत्रधार ने नगर में जाकर समाज को सूचित किया। उपासकवर्ग ने भी महोत्सव के साथ चैत्य में प्रतिमा को स्थापित की और सूत्रधार की आजीविका वाँध दी।

उस स्थान पर प्रतिमा के परिकर की खूब शोध की, किन्तु परिकर प्राप्त न हुआ। किसी स्थल में दबा हुआ होगा। उसी परिकर पर प्रशस्ति लेखादि संभव है।

एक समय न्हवण (स्नान) कराने के पश्चात् प्रभु-प्रतिमा पर प्रस्वेद झरने लगा। वारंबार पोंछने पर भी पसीना बंद नहीं हुआ। इससे उपासकवर्ग ने यह निश्चय किया कि यहाँ निश्चय रूप से उपद्रव होनेवाला है। इतने में ही प्रभात के समय जठ्ठुअ लोगों की धाड़ आई और उसने चारों तरफ से नगर को नष्टकर दिया। इस प्रकार प्रकट प्रभावी भगवान् महावीर कयंवास स्थल में सं० १३८५ तक उपासक वर्ग द्वारा पूजित रहे।

सं० १३८५ में आसीनगर (हाँसी) के अल्लवियवंश के क्रूर-पुरुषों ने तत्रस्थ उपासक वर्ग और साधुओं को बंदी बनाकर उनकी विडंबना की। इन्हीं क्रूरों ने पार्श्वनाथप्रभु की पाषाण-प्रतिमा खंडित कर दी और महावीरप्रभु की चमत्कारी प्रतिमा को अखंडित रूप से ही बैलगाड़ी में

रखकर दिल्ली ले आए । उस समय सम्राट मुहम्मद तुगलक देवगिरि में था । अतः उसके आने पर उसके आदेशानुसार व्यवस्था करने के विचार से उस प्रतिमा को तुगलकावाद के शाही भंडार में रखवा दी । इस प्रकार यह प्रतिमा १५ महीनों तक तुर्कों के अधिकार में रही ।

महावीर स्वामी की इस प्रतिमा का यह वृत्तान्त होने पर आचार्य जिनप्रभ सोमवार के दिन राजसभा में आये । उस समय वृष्टि हो रही थी जिससे आचार्य के चरण-कमल कीचड़ से भर गये थे । सम्राट मुहम्मद तुगलक ने यह देखकर मल्लिक काफूर द्वारा अच्छे वस्त्र-खंड से आचार्य के चरण पुछवाये । आचार्य ने भावगर्भित काव्य द्वारा आर्शीर्वाद प्रदान किया । उस आशीर्वादात्मक काव्य की व्याख्या सुनकर सम्राट अत्यन्त प्रसन्न हुआ । अवसर देखकर आचार्यश्री ने उपर्युक्त महावीर-प्रतिमा का समस्त वृत्तान्त बतलाकर सम्राट से, उसे जैन-संघ को अर्पित कर देने के लिये कहा । सम्राट ने आचार्य की अभिलाषा सहर्ष स्वीकार की और उसी समय तुगुलकाबाद के खजाने से असूअग मल्लिकों के कन्धे पर विराजमान करवाकर प्रभु-प्रतिमा को राजसभा में मँगवाया और दर्शन करके महावीर प्रतिमा आचार्य को समर्पित की । उस चमत्कारी प्रतिमा की प्राप्ति से जैन-संघ को अपार हर्ष हुआ । समस्त संघ ने सम्मिलित होकर बड़े समारोह के साथ शिविका (पालकी) में विराजमान कर 'मलिकताजदीन सराय' के जिन-मन्दिर में उसे स्थापित की । सूरिजी ने वासक्षेप किया और उपासक-गण प्रतिदिन पूजन करने लगे ।

देवगिरि की ओर विहार और प्रतिष्ठानपुर यात्रा

आचार्य जिनप्रभ ने दिल्ली में इस प्रकार धर्म-प्रभावना करके महाराष्ट्र (दक्षिण) प्रान्त की ओर प्रस्थान किया । सम्राट ने आचार्य श्री के प्रवास में सब प्रकार की सुविधाएँ प्रस्तुत कर दीं । सूरिजी ने सम्राट् एवं स्थानीय संघ के संतोष के निमित्त स्वशिष्य श्रीजिनदेवसूरि को १४ साधुओं

के साथ दिल्ली में ठहरने की आज्ञा दी। सूरिजी विहार-मार्ग के अनेक नगरों में धर्म एवं शासन-प्रभावना करते हुये देवगिरि (दौलताबाद) पहुँचे। स्थानीय संघ ने प्रवेशोत्सव किया। वहाँ से संघपति जगसिंह[1], साहण, मल्लदेव आदि संघ-मुख्यों के साथ प्रतिष्ठानपुर पधारे और जीवंत मुनिसुव्रतस्वामी की प्रतिमा के दर्शन किये। यात्रा करके संघ सहित आचार्य श्री पुनः देवगिरि पधारे।

देवगिरि के जैन मन्दिरों की रक्षा

एक समय शाह पेथड़[2], सहजा[3] और ठ० अचल के निर्मापित जिन-मन्दिरों का तुर्क लोग नाश करने लगे, उस समय आचार्य जिनप्रभ शाही फरमान दिखलाकर उन मन्दिरों की रक्षा की। इस प्रकार और भी अनेक तरह से शासन एवं धर्म-प्रभावना करते हुये, शिष्यों को सिद्धात-वाचना और तपोद्वहन कराते हुये तीन वर्ष (सं० १३८५-८७) देवगिरि

---

१. जिनप्रभसूरिजी सर्वत्र चैत्य परिपाटी करते हुए पीरोज सुरत्राण (सुलतान महमद) के साथ देवगिरि पहुँचे। उस समय संघपति जगसिंह ने बहुत द्रव्य व्यय कर प्रवेशोत्सव किया। स्थानीय चैत्यों की वन्दना करते हुये सूरिजी जगसिंह के गृह-मन्दिर पर आये। वहाँ वैडूर्यरत्न, स्फटिकरत्न, स्वर्ण, रूप्यमय जिन-प्रतिमाओं को देखकर सूरिजी भाव-विह्वल होकर सिर घुमाने लगे। सं० जगसिंह के कारण पूछने पर कहा—'मैंने बहुत स्थानों में जिन-मन्दिरों और गुरुवों का वन्दन किया, किन्तु एक तो आज तुम्हारे गृह-मन्दिर को स्थावर तीर्थरूप और दूसरे जंगम तीर्थरूप जंघरालपुर में तपागच्छीय सोमतिलकसूरि को देखा है।

—शुभशीलगणि कृत कथाकोप.

२-३. देखें, पं० लालचन्द्र भगवान् गांधी लिखित जिनप्रभसूरि अने सुलतान मुहम्मद, पृ० ७८ से १०२.

(दौलताबाद) में ही व्यतीत किये। इसी बीच सूरिजी ने बहुत से उद्भट वादियों को शास्त्रार्थ में पराजित किया।

सम्राट् का पुनः स्मरण और आमन्त्रण

एक समय सम्राट् मुहम्मद तुगलक दिल्ली की राज्यसभा में अनेक देशीय विद्वानों के साथ विद्वच्चर्चा कर रहे थे। सम्राट को किसी शास्त्रीय विचार में सन्देह उत्पन्न हो जाने पर एवं उपस्थित पण्डित-मंडली से संतोषजनक समाधान प्राप्त न होने से एकाएक आचार्य जिनप्रभ का स्मरण आया और सम्राट् ने कहा—'यदि इस समय राजसभा में वे आचार्य विद्यमान होते तो अवश्य ही हमारे संदेह का निराकरण हो जाता। सचमुच में उनके जैसा पाण्डित विश्व में अलभ्य है।' इस प्रकार सम्राट् के मुख से आचार्य जिनप्रभ की प्रशंसा सुनकर दौलताबाद से आये हुये ताजुलमल्लिक ने सिर झुकाकर निवेदन किया—'स्वामिन्! वे महात्मा अभी दौलताबाद में हैं, परन्तु वहाँ का जल-वायु अनुकूल न होने से वे बहुत कृश हो गये हैं।' यह सुनकर प्रसन्नतापूर्वक सूरिजी के गुणों का स्मरण करते हुये उस मल्लिक को आज्ञा दी कि तुम शीघ्र ही दुबीरखाने जाकर फरमान लिखाकर सामग्री सहित भेजो, जिससे वे आचार्य देवगिरि से यहाँ शीघ्र पहुँच सकें। सम्राट की आज्ञा से ताजुलमल्लिक ने वैसा ही किया। शाही फरमान यथासमय दौलताबाद के दीवान के पास पहुँचा। सूबेदार कुतुहलखान[1] ने सूरिजी को दिल्ली पधारने के लिये सविनय प्रार्थना करते हुये शाही फरमान बतलाया।

देवगिरि से प्रयाण और अल्लावपुर में उपद्रव-निवारण

सम्राट् के आमंत्रण को महत्त्व देकर आचार्य जी ने सप्ताह भर में

१. इतिहास में जिसे क्युत्यलखान मलिक क्यनामुद्दीन कहा जाता है, वह शायद यही है—देखें केम्ब्रीज हिस्ट्री ऑफ इन्डिया, वॉ. ३, पृ० १३० १५४, १५६, १६५.

(१० दिन बाद) तैयार हो[illegible] सुदी १२ को [illegible] में संघ के साथ वहाँ से प्रस्थान किया। स्थान-स्थान पर धर्म-प्रभावना करते हुये आचार्य श्री अल्लावदुर्ग पधारे। असहिष्णु म्लेच्छों को एक जैनाचार्य की इस प्रकार की महिमा सह्य नहीं हुई। उन लोगों ने संघ की बहुत-सी वस्तुएँ छीनली और इसी प्रकार अनेक उपद्रव करने प्रारंभ किये। जब इस उपद्रव के संवाद दिल्ली में स्थित आचार्य जिनदेव सूरि को मिले तो वे उसी समय सम्राट् से मिले और सारी विपत्ति की स्थिति बतलाई। सम्राट् ने उसी समय बहुमानपूर्वक फरमान भेजकर वहाँ के मल्लिक द्वारा संघ की सारी वस्तुएँ वापिस दिला दीं। इससे उन लोगों पर सूरिजी का अद्भुत प्रभाव पड़ा। सूरिजी ने डेढ़ मास की अल्लावपुर में स्थिरता की। वहाँ से प्रस्थान कर क्रमशः प्रवास करते हुए जब सूरिजी सिरोह पहुँचे तो सम्राट् ने उन्हें देवदूष्य सदृश सुकोमल १० वस्त्र भेज कर सत्कृत किया। वहाँ से विहार करके सूरिजी दिल्ली पहुँचे।

दिल्ली में सम्राट् से पुनर्मिलन

जैन संघ और सम्राट् उनके दर्शनों के लिये चिरकाल से उत्कण्ठित था ही, पूज्यश्री के शुभागमन से उनका हृदय अत्यन्त प्रफुल्लित हो गया। भाद्रपद शुक्ला २ के दिन मुनिमण्डल एवं श्रावकसंघ के साथ आचार्यश्री राजसभा में पधारे। सम्राट् ने मृदुवचनों से वन्दन पूर्वक कुशल प्रश्न पूछा और अत्यन्त स्नेहवश सूरिजी के करकमल का चुम्बन कर अपने हृदय पर रखा। आचार्यश्री ने तत्काल ही नूतन पद्यों द्वारा आशीर्वाद दिया, जिसे सुनकर सम्राट् का चित्त अत्यन्त चमत्कृत हुआ। सूरिजी के साथ वार्तालाप होने के अनन्तर विशाल महोत्सवपूर्वक अपने हिन्दुराजाओं, दीनार आदि मल्लिकों और प्रधान पुरुषों के साथ अनेक प्रकार के वादित्रादि बजवाते हुये सन्मानपूर्वक सम्राट् ने सुलतान सराय की पौषधशाला में आचार्यश्री को पहुँचाया। यह प्रवेशोत्सव अपूर्व आनन्ददायक और दर्शनीय था।

पर्युषण में धर्म-प्रभावना

भाद्रपद शुक्ला ४ के दिन संघ ने महोत्सवपूर्वक पर्युषणाकल्प (कल्पसूत्र) सूरिजी से भक्तिपूर्वक श्रवण किया। सूरिजी के आगमन और शासनप्रभावना के पत्र पाकर देशान्तरीय संघ हर्षित हुआ। सूरिजी ने राजबन्दी श्रावकों को लाखों रुपयों के दण्ड से मुक्त कराया एवं अन्य लोगों को भी करुणावान् आचार्यश्री ने कैद से छुड़ाया। जो लोग अवकृपा प्राप्त हो गए थे वे भी सूरिजी के प्रभाव से पुनः प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके। सूरिजी प्रतिदिन राजसभा में जाते थे, उन्होंने अनेक वादियों पर विजय प्राप्त कर शासन की शोभा बढ़ाई थी।

फाल्गुन मास में, दौलताबाद से सम्राट् की जननी मगदूमईजहाँ के आने पर चतुरंग सेना के साथ बादशाह उसकी अभ्यर्थना में सन्मुख गया। उस समय आचार्यश्री भी सम्राट् के साथ थे। वडथूण स्थान में माता से मिलकर सम्राट् ने सबको प्रचुर दान दिया। प्रधानादि अधिकारियों को वस्त्रादि देकर सत्कृत किया। वहाँ से दिल्ली आकर सूरिजी को वस्त्रादि देकर सन्मानित किया।

दीक्षा और बिम्ब प्रतिष्ठादि उत्सव

चैत्र शुक्ला १२ को राजयोग में सम्राट् की अनुमति से उसके दिये हुए साईबाण की छाया में नन्दी स्थापना की। सूरिजी ने वहाँ ५ शिष्यों को दीक्षित किया। मालारोपण, सम्यक्त्व ग्रहण आदि धर्मकृत्य हुये। स्थिरदेव के पुत्र ठ० मदन (बंभदत्त) ने इस प्रसंग पर बहुत-सा द्रव्य व्यय किया।

आषाढ़ शुक्ला १० को नवीन निर्मित १३ जिन-प्रतिमाओं की सूरिजी ने महोत्सवपूर्वक प्रतिष्ठा की। बिम्बनिर्माता एवं सा० पहराज के पुत्र अजयदेव ने प्रतिष्ठा महोत्सव में पुष्कल द्रव्य व्यय किया।

सम्राट् समर्पित भट्टारकसराय में प्रवेश

सुलतानसराय राजसभा से काफी दूर था; अतः सूरिजी को हमेशा

आने में कष्ट होता है ऐसा विचार कर सम्राट् ने अपने महल के निकटवर्ती सुन्दर भवनों से सुशोभित नवीन सराय समर्पण किया। श्रावकसंघ को वहाँ पर रहने की आज्ञा देकर सम्राट् ने उसका नाम भट्टारकसराय प्रसिद्ध किया। सम्राट् ने वहाँ महावीर स्वामी का मन्दिर तथा पौषधशाला बनवाई। सं० १३८९ आषाढ़ कृष्णा सप्तमी ७ को उत्सवपूर्वक सूरिजी ने नवीन पौषधशाला में प्रवेश किया। इस प्रसंग पर विद्वानों एवं दीन-अनाथों को यथेष्ट दान दिया गया।

मथुरातीर्थ का उद्धार

सं० १३९३ मार्गशीर्ष महीने में सम्राट् ने पूर्व देश की ओर विजय प्राप्त करने के हेतु ससैन्य प्रस्थान[1] किया। उस समय उन्होंने सूरिजी को भी विज्ञप्ति करके अपने साथ में लिये। स्थान-स्थान पर शासन भावना करते हुये सूरिजी ने मथुरा तीर्थ का उद्धार करवाया।

हस्तिनापुर की यात्रा और प्रतिष्ठा

शाही सेना के साथ पैदल विहार करते हुए वृद्धावस्था के कारण सूरिजी को कष्ट होता है, यह विचार कर सम्राट् ने खोजेजहाँ[2] मल्लिक के साथ उन्हें आगरे से दिल्ली लौटा दिया। हस्तिनापुर की यात्रा का फरमान लेकर आचार्यश्री दिल्ली पहुँचे। चतुर्विधसंघ हस्तिनापुर की यात्रा के निमित एकत्र हुआ। शुभ मुहूर्त में बोहित्थ (चाहडपुत्र) को संघपति का

---

१. ईस्वी सन् १३३३ (वि० सं० १३९०) में मुहम्मद तुगलक ने पूर्व देश विजय यात्रा के लिये प्रस्थान किया। देखें, केम्ब्रीज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वॉ० ३, पृ० १४७-१४८.

२. ख्वाजाजहाँन् मुहम्मद तुगलक का प्रधान व्यक्ति था। देखें केम्ब्रीज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, वॉ० ३, पृ० १३४, १४०, १४३, १४८, १५२, १५८, १७२.

तिलक कर वहाँ से प्रस्थान किया।[1] संघपति बोहित्थ ने स्थान-स्थान पर महोत्सव किये।

तीर्थभूमि में पहुँच कर तीर्थ को बधाया। नवनिर्मित शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ आदि तीर्थंकर प्रतिमाओं की सूरिजी ने प्रतिष्ठा की। अम्बिकादेवी की प्रतिमा स्थापित की। संघपति बोहित्थ ने संघवात्सलादि महोत्सव किये। संघ ने वस्त्र, भोजनादि द्वारा याचकों को सन्तुष्ट किया।

तीर्थयात्रा से लौटकर सूरिजी ने वैशाख शुक्ला १० के दिन संपूर्ण कल्मष और विघ्नों को दूर करनेवाले श्रीकन्यानयनीय महावीर-प्रतिमा को सम्राट् द्वारा बनाये हुए जैन मन्दिर में महोत्सवपूर्वक स्थापित किया।

इधर सम्राट् भी दिग्विजय करके दिल्ली लौटा। जैन-मन्दिर और उपाश्रयों में उत्सव होने लगे। सम्राट् एवं सूरिजी का सम्बन्ध उत्तरोत्तर घनिष्ठता को प्राप्त करने लगा, अतः सूरिजी और सम्राट् दोनों के द्वारा जिनशासन की बड़ी प्रभावना होने लगी। सूरिजी के प्रभाव से दिगम्बर एवं श्वेताम्बर समस्त जैन-संघ व तीर्थों के उपद्रव शाही फरमानों के द्वारा सर्वथा दूर हो गए।

स्वर्गवास

जिस प्रकार आचार्यश्री के जन्म-संवत् का उल्लेख प्राप्त नहीं है। उसी प्रकार स्वर्गवास के समय का भी कोई ऐतिह्य उल्लेख प्राप्त नहीं है।

---

१. शक सं० १२५५ सं० १३९० वैशाख शुक्ला ६ को संघ के साथ यात्रा करने का उल्लेख स्वयं सूरिजी ने 'जयपुरस्तोत्र' में इस प्रकार किया है—

"इत्थं पृषत्कविषयार्कमिते[12] शकाब्दे,
वैशाखमासिशितिपक्षगषष्ठतिथ्याम् ।
यात्रोत्सवोपततः संघयुतो मुनीन्द्रः,
स्तोत्रं व्यधाद् गजपुरस्य जिनप्रभाख्यः ।।"

आचार्य के प्रणीत ग्रन्थों के आधार पर ही अनुमान किया जा सकता है। आचार्य जी के अनेक ग्रन्थों में तो रचना-समय का निर्देश भी नहीं है। कतिपय ग्रन्थों में सम्वत् का उल्लेख अवश्य प्राप्त है।

संवत् उल्लेख की दृष्टि से 'कातन्त्रविभ्रम टीका' की रचना सं० १३५२ में हुई। अतः आचार्यपद-प्राप्ति के पश्चात् यह इनकी सर्वप्रथम रचना मानी जा सकती है और अन्तिम रचना 'महावीरगणधरकल्प' सं० १३८९ की है। इसके पश्चात् की कोई सम्वत् उल्लेख वाली रचना अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। इसलिए जिनप्रभसूरि का स्वर्गवास का समय वि० सं० १३९० के आसपास ७२-७५ वर्ष की अवस्था में अनुमान से निर्धारित किया जा सकता है।

चमत्कारी घटनाएँ

"नमस्कार है चमत्कारको" की उक्ति को आचार्यजी ने चरितार्थ कर दिखाई है। चमत्कारों का प्रयोग या घटनाओं की ख्यातियाँ जितनी श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में दादा जिनदत्त सूरि, दादा जिनकुशल सूरि और जिनप्रभसूरि की प्राप्त है उतनी संभवतः किसी अन्य आचार्य की नहीं। वैसे जैन-साधु को स्वार्थ से चमत्कार दिखाना साधु-मर्यादा के विपरीत है किन्तु शासनसेवा या प्रभावना या उन्नति के निमित्त प्रयोग करना वर्जित नहीं है। आचार्य जिनप्रभ ने परिस्थितियों के अनुसार धर्म-प्रसार और शासनोन्नति के लिये ही इस शक्ति का आश्रय लिया था। पहले कहा जा चुका है कि प्रभावती देवी आपको प्रत्यक्ष थी और उसके सानिध्य से ही आपने करामात दिखाए। आपके और दादाओं के चमत्कारों में अन्तर इतना ही है कि आपके चमत्कार जीवन तक ही सीमित रहे और दादाओं के चमत्कार आज भी स्थान-स्थान पर देखे जा सकते हैं।

जिनप्रभ के करामातों का कोई मौलिक विवरण तो प्राप्त है नहीं, किन्तु परवर्ती ग्रन्थकारों—शुभशीलगणि (पंचशतीकथाप्रबन्ध) सोमधर्म

गणि (उपदेशसप्ततिका) और वृद्धाचार्यप्रबन्धावलिकार ने कुछ-कुछ घटनाओं का उल्लेख किया है; उन्हीं के आधार पर घटनाओं का उल्लेख यहाँ पर किया जा रहा है।

मुहम्मद शाह से मुलाकात

एक समय आचार्य शौच के लिए योगिनीपुर के बाहर गए हुए थे। उस समय मिथ्यादृष्टि अनार्यों (मुसलमानों) ने आचार्य पर पत्थरों की वर्षा करने लगे। आचार्य ने अंतःकरण में ही पद्मावती से कहा—देवि, तुमने मेरा स्वागत तो सुन्दर करवाया? देवी ने उसी समय उन मुसलमानों की पूजा और ताडना की। वे भय से भागकर महम्मदशाह के पास गये और सारी घटना कही। घटना से चमत्कृत होकर शाह ने पूछा कि वह पुरुष कहाँ है? उन्होंने कहा कि हमने नगर के बहिर्प्रदेश में उसे देखा था। शाह ने उसी समय प्रधान पुरुषों को बुलाकर आदेश दिया—जाओ, तुम उस पुरुष को यहाँ लेकर आवो, जिससे मैं उसको देख सकूँ। आदेश के अनुसार प्रधान पुरुषों ने आचार्य के पास आकर निवेदन किया—स्वामिन्! आप हमारे शाह के पास पधारें और उसके बाद आप अपनी इच्छानुसार कहीं भी पधारें। आचार्य उन पुरुषों के साथ राजमहल के द्वार तक आकर ठहर गये। प्रधान पुरुषों ने जाकर शाह से निवेदन किया कि वह पुरुष द्वार पर उपस्थित है। जिस समय पुरुष शाह से कह रहे थे उस समय आचार्य ने अपने शिष्यों से कहा—'मैं कुम्भकासन करता हूँ।' जब शाह आवे तब कहना कि—'ये हमारे गुरू हैं।' जब शाह कहे कि 'जिस अवस्था में थे उसी स्वरूप में करो।' तो उस समय तुम जल से सिंचित भीना वस्त्र मेरे स्कंध पर रखकर उठा देना। इस प्रकार कह कर आचार्य ध्यान में बैठे—कुम्भ समान हो गये। उसके बाद महम्मद शाह ने आकर पूछा—'तुम्हारा गुरु कहाँ है?' शिष्यों ने कहा—'आपके सन्मुख ही तो बैठे हैं!' शाह ने कहा—'जिस स्वरूप में थे वैसा करो।' तब शिष्यों ने भीना वस्त्र कर स्वस्थ अवस्था में किया। आचार्य ने उठ

कर शाह को धर्मलाभ आशीष दी और वार्ता में संलग्न हो गये।

महम्मदशाह को राणी बालादे का व्यंतरोपद्रव दूर करना

महम्मदशाह ने आचार्यश्री से कहा—'भगवन्! मेरी प्राणप्रिया राणी बालादे है। उस पर व्यंतर का प्रकोप होने के कारण वह वस्त्र धारण नहीं करती है और न शरीर स्वस्थता का ही ख्याल रखती है। मैंने उपचार के लिये अनेको मन्त्र-तन्त्रवादियों को बुलाये किन्तु वह जिस किसी भी उपचारक को देखती है तो पत्थर और लकड़ियों से उसे मारती है। अतः कृपा करके उसे स्वस्थ कीजिए और उसे चल कर देखिये।' आचार्य ने कहा—'तुम उसके पास जाकर विनम्र शब्दों में कहो कि "जिनप्रभसूरि तुम्हारे पास आ रहे हैं।" शाह ने उसी प्रकार जाकर कहा। रानी जिनप्रभसूरि का नाम सुनते ही सहसा उठ खड़ी हुई और दासी को कहा—'मेरे वस्त्र लावो।' दासियों ने तत्काल ही वस्त्र लाकर उसे पहनाये। इस कथन के प्रभाव को देखकर शाह चमत्कृत हुआ और आचार्य के पास आकर कहा—'आप उसके पास जाकर उसे देखिये।' आचार्य बालादे के समीप गये और उसे देखकर आचार्य ने कहा—'रे दुष्ट! तू यहाँ कैसे आया? यहाँ से चला जा।'

व्यंतर—मुझे अच्छा घर मिला है, छोड़कर कैसे जाऊँ?

आचार्य०—तेरे लिये दूसरा स्थान नहीं है?

व्यं—ऐसा सुन्दर घर नहीं है।

उसी समय आचार्य ने मेघनाद क्षेत्रपाल को बुलाकर आदेश दिया कि इस व्यंतर को दूर करो। मेघनाद ने उसे अत्यधिक पीडित किया। उस समय व्यंतर ने कहा—'मैं भूख से पीडित हूँ। मुझे कुछ खाने के लिये दो?"

आ०—तुझे खाने के लिये क्या दें?

व्यं०—भैंसे का मांस आदि दीजिये।

आ०—'मेरे सन्मुख ऐसे मत बोल। मैं तुझे गांठ-बंधनों से बांधता हूँ' कहकर सूरिमंत्र का जाप करने लगे।

व्यं०—स्वामी, तुम सब जीवों को अभयदान देने वाले हो-तो अभय-दानी होकर मुझे क्यों दुःख देते हो ?

आ०—तुम इस स्थान से चले जाओ।

व्यं०—मुझे कुछ भी खाने के लिये दीजिये।

आ०—क्या दें ?

व्यं०—घी-गुड़ के साथ रोटी दीजिये।

शाह०—घी, गुड़ के साथ रोटी मैं देता हूँ।

आ०—मुझे कैसे प्रतीति हो कि तू यहाँ से चला गया ?

व्य०—मेरे जाने के साथ ही अमुक-पीपल के वृक्ष की डाली टूट जायगी—यही निशानी है। रात्रि को यही हुआ।

प्रभात में बालादे राणी को स्वस्थ और सुसंस्कृत देखकर शाह अत्य-धिक प्रसन्न हुआ और बोला—प्रिये ! जो ये महान् प्रभावक आचार्य न आये होते तो तुम कहाँ होती ? यह सुनकर बालादे ने कहा–स्वामिन् ! यह पूज्य पुरुष मेरे माता-पिता के समान हैं। इन पूज्य का आप अच्छी तरह से स्वागत-सत्कार करें और राजसिंहासन के अर्धासन पर बिठावें। शाह ने स्वीकार किया। शाह समय-समय पर गुरु के स्थान पर जाते थे और गुरु को अपने राजमहलों में लाते थे और अर्धासन पर बिठाते थे।

राघव चैतन्य का अपमान

एक समय बनारस से चौदह विद्याओं का पारगामी मंत्र-तंत्रों का जान-कार राघवचैतन्य[1] नाम का महाविद्वान् योगिनीपुर आया और शाह से

---

१. राघव चैतन्य के संबंधों में पं० लालचन्द भगवान् गांधी ने यह जिनप्रभसूरि अने सुलतान मुहम्मद, पृ० १४१ की टिप्पणी में लिखा है—

"एपिग्राफिका इण्डिका (पृ० १९३–१९४) मां तथा निर्णयसागर प्रेसनी प्राचीन लेखमाला (भार० ले० १००) मां प्रकट थयेल यमक

मिला। मुहम्मदशाह ने उसे सत्कार किया। वह शाह की सभा में प्रतिदिन आता था। एक समय सभा में आचार्य राघवचैतन्य आदि विद्वान् वार्ता-विनोद कर रहे थे उस समय आचार्य के प्रभाव से असहिष्णु होकर राघव-चैतन्य ने ईर्ष्या और दुष्टता से विचार किया कि जैसै-तैसे इस पर कोई लांछन लगाकर, अपमानित करवाकर यहाँ से निकलवा दूँ, तब भी मेरे प्रभाव में वृद्धि होगी। ऐसा विचार कर विद्याबल से शाह के हाथ से मुद्रिका हरण कर आचार्य न जाने इस प्रकार आचार्य के रजोहरण में नांख दी। प्रभावती ने तत्काल ही आचार्य को कहा—'राघव चैतन्य ने शाह की मुद्रिका हरण कर तुम्हारे रजोहरण में नांख दी है, सावधान रहो। उसी समय आचार्य ने वह मुद्रारत्न लेकर राघव चैतन्य न जाने इस प्रकार उसके मस्तकोपरिवस्त्र पर रख दी। इसी समय मुहम्मदशाह अपनी अंगुली

छटावाला ज्वालामुखी देवी स्तोत्रना रचनार राघव चैतन्य मुनि आ जणाय छे। ते स्तोत्र (शिलालेख) मां तेना नामनुं सूचन छे, कांगडा (पंजाब) ना राजा संसारचन्द्रनी प्रशस्ति पछी त्यां प्रस्तुत साहि महम्मदनी कीर्ति-रूप ते परमयोगिनी (ज्वालामुखी) ने सूचवामां आवी छे—

श्रीमद्राघवचैतन्यमुनिनाब्रह्मवादिना।
[स्तव] रत्नावली सेयं ज्वालामुख्यै समर्पिता।
श्रीमत्साहिमहम्मदस्य जयतात् कीर्तिः परायोगिनी।

नि. सा. नी काव्यमालाना प्रथम गुच्छकना प्रारंभमां मूकायेल मंत्र-मालागर्भित महागणपतिस्तोत्रना कर्तापण आ कवि जणाय छे। तेनी व्याख्या-टिप्पणीमां तेने 'परमहंस परिव्राजका चार्य' विशेषण थी परिचय कराव्या छे। शार्ङ्गधरे शार्ङ्गधरपद्धति (सुभाषितावली) मां केटलांक पद्यो 'श्रीराघवचैतन्यश्रीचरणानां' उल्लेख साथे सूचवेलां छे, तथा शाकंभरीश्वर हम्मीर चाहुवाण (चौहाण) नी राजसभाने शोभावनार द्विजागुणी राघवदेवना पौत्रतरीके पोतानो परिचय कराव्यो छे। एथी ए राघवदेव ज सन्यासी थया पछी राघवचैतन्य नामे प्रसिद्ध थया हशे-एम जणाय छे।"

में मुद्रा न देखकर ढूंढने लगा—नहीं मिली। शाह ने कहा कि—अभी तो मुद्रिका मेरे पास थी, कहाँ गई ? किसने चुराई है ? यह सुनते ही राघव चैतन्य शीघ्र बोला—शाह ! आपकी मुद्रिका तो जिनप्रभ के पास है। शाह ने आचार्य से मुद्रिका मांगी तो आचार्य ने कहा—'राघव के पास है, राघव ने अपने सारे वस्त्र दिखाये किन्तु मुद्रिका नहीं मिली। आचार्य ने कहा—'इसके शिर पर है।' मस्तक पर देखने से मुद्रिका प्राप्त हुई। शाह ने मुद्रिका लेकर राघव चैतन्य को कहा—"तुम्हे धन्य है ! तुम सत्य-वादी हो ! जो स्वयं तस्करवृत्ति करके आचार्य पर दोषारोपण करते हो ! इससे राघवचैतन्य श्यामीभूत होकर अपने स्वस्थान को गया।

कलंदर का गर्वहरण

एक समय आचार्य सभा में बैठे हुए थे। उसी समय खुरासाण से विद्यावान एक कलंदर (मुस्लिम फकीर) राजसभा में आया। उसने शाह पर अपना प्रभाव जमाने की दृष्टि से स्वयं की कुल्लह (टोपी) उतार कर आकाश में फैंककर मुहम्मदशाह को कहा–'शाह ! तुम्हारी सभा में ऐसा कोई है ? जो इस टोपी को उतार सके ?' शाह ने सभा की तरफ दृष्टि डाली। दृष्टि संकेत को समझकर आचार्य ने शाह से कहा–'राजन् ! मैं जो कर्त्तव्य दिखाता हूँ, उसे देखो !' यह कहकर आचार्य ने रजोहरण (धर्मध्वज) को आकाश में फैंका और उस (रजोहरण) ने आकाश में जाकर उस टोपी को पीटता हुआ नीचे लाया।[1]

अन्य दिवस एक पनीहारिन को पानी के भरे हुये घड़े सिर पर रख कर जाते हुए देखकर मौलाना ने उन घड़ों को निराधार स्तंभित रखा—

---

१. पंचशतीकथाप्रबन्ध के अनुसार विशेषता यह है "आचार्य ने टोपी को आकाश में ही स्तंभित कर दी और मुल्ला आकर्षण प्रयोग से अपनी टोपी वापस नीचे न उतार सका तब शाह के निर्देश से आचार्य ने रजोहरण फेंककर टोपी नीचे उतारी।

पनीहारिन चली गई। घड़ों को आकाश में निराधार देखकर शाह चमत्कृत होकर मुल्ला की प्रशंसा करने लगा। तब आचार्य ने कहा—'घड़ा क्या, यदि पानी निराधार रहे तो चमत्कार माना जाय !' शाह ने कौतुक से मौलाना को कहा, किन्तु मौलाना न कर सका। आचार्य ने उसी समय कंकड़ फेंककर दोनों घड़ों को फोड़ दिया और पानी को निराधार स्तम्भित रखा।[1]

अद्भुत निमित्त कथन

एक समय सभा में बैठे हुये कौतुक-प्रिय शाह ने सभा में स्थित समस्त विद्वानों को लक्ष्य करके कहा—'विज्ञो ! आप लोग यह बतलाइये कि 'प्रातःकाल मैं किस मार्ग से रयवाड़ी (राजपाटी) जाऊँगा ? यह सुनकर सब विद्वानों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार विचार करके पत्र में लिखकर शाह को दिया। शाह के संकेत से आचार्य ने भी पत्र लिखकर दिया। उन सब पत्रों को शाह ने अपने दुपट्टे में बाँध लिया। शाह ने विचार किया कि यह समय है जब कि सबको असत्यवादी सिद्ध करूं'। ऐसा विचार कर प्रातःकाल बंदर बुर्ज[2] को तुड़वाकर बाहर निकला और क्रीड़ा कर एक स्थान पर बैठकर समस्त विद्वन्मंडली को वहाँ बुलवाया और कहा कि आप सब अपने-अपने पत्र बाँचें ? समस्त विद्वानों ने स्वयं लिखित पत्रों को पढ़ा—सब कल्पित (असत्य) थे। आचार्य ने भी अपना लिखा हुआ पत्र पढ़ा, उसमें लिखा था—'बंदर बुर्ज़ को तुड़वाकर, क्रीड़ा कर शाह वट वृक्ष के नीचे विश्राम करेगा।' यह सुनकर शाह चम-

---

१. वृ. प्र. के अनुसार—आचार्य ने घड़ा फोड़कर पानी को घड़े का आकार देकर निराधार रखा। यह देखकर शाह ने कहा—'पानी का कण फुसिया (अलग) करो।' तो आचार्य ने वैसा ही किया।

२. किसी स्थान पर 'किल्ले की २१ वें लंगक के पास की ३१ थरों की ईंटें दूर करवाकर शाह गया।

रक्त[१] हुआ और बोला कि 'यह आचार्य साक्षात् परमेश्वर तुल्य है और इसकी देवता भी सेवा करते हैं।'

वटवृक्ष को साथ चलाना

मुहम्मद शाह ने आचार्य जिनप्रभ से कहा—'भगवन् !, यह वड[२] सुन्दर और शीतल छाया वाला है तो आप ऐसा करें कि यह वृक्ष भी हमारे साथ चले; जिससे इसकी शीतल छाया का हम आनन्द उठा सकें।' आचार्य ने वैसा ही किया। वृक्ष पाँच कोस तक छाया प्रदान करता हुआ साथ चला। अन्त में शाह ने वापस लौटाने को कहा तब आचार्य ने उसे वापस जाने का आदेश दिया, वह अपने स्थान पर चला गया।

क्या भोजन करूँगा ?

एक समय सुलतान ने कहा कि आज मैं क्या भोजन करूँगा ? आचार्य ने पत्र में लिखकर शाह को दिया और कहा कि भोजन करने के पश्चात् पत्र पढें। तदनुसार शाह ने खल (खोल) ? का भोजन किया और पत्र खोलकर पढ़ा तो आश्चर्य चकित हो गया कि वही लिखा था कि 'खल' का भोजन करेंगे।

मीठी कहाँ

एक समय सुलतान ने विनोद से समस्त सभासदों से पूछा कि 'शक्कर किसमें डालने से मीठी लगती है ? सभासदस्य-प्रधानों और विद्वानों के उत्तर न देने पर आचार्य ने कहा—'शक्कर मुख में डालने से मीठी लगती है।'

---

१. इस प्रकार का वृत्तान्त महाराज भोज और महाकवि धनपाल का भी प्राप्त होता है।

२. आम्रवृक्ष का भी उल्लेख है।

सरोवर छोटा कैसे हो ?

एक समय सुलतान क्रीड़ा करते हुए बाहर के उद्यान में आये। वहाँ एक सरोवर पानी से लबालब भरा हुआ देखकर अपने समस्त साथियों (प्रधानों और विद्वानों) को कहा— मिट्टी डाले विना ही सरोवर छोटा कैसे हो ? किसी के भी उत्तर न देने पर आचार्य ने कहा—'शाह ! इस सरोवर के निकट ही यदि एक बड़ा सरोवर बना दिया जाय तो यह स्वतः ही छोटा हो जायगा।'

पृथ्वी पर मोटा फल कौन-सा ?

एक समय सुलतान ने आचार्य से पूछा कि 'कहो गुरुजी ? पृथ्वी पर सब से बड़ा फल कौन-सा होता है ?' आचार्य ने तत्काल ही प्रत्युत्तर दिया—राजन् ! समस्त जगत को ढाँकने वाला होने से वउणि (वण-कपास) का है।

विजययंत्र महिमा

एक समय सम्राट् ने आचार्य से विजययन्त्र का आम्नाय पूछा। आचार्य ने कहा—राजन्, यह आपका विषय नहीं है। सम्राट् ! यह यंत्र जिसके पास में होता है उसका आघात दैविक शस्त्र भी नहीं कर सकते ! और भयंकर से भयंकर शत्रु भी उसे पीड़ा नहीं पहुँचा सकते।' यह सुनकर शाह ने उसकी परीक्षा के लिये आचार्य से यंत्र बनवाकर एक बकरे के कंठ में बाँध बिया और उस पर तलवार आदि शस्त्रों का आघात किया, किन्तु उस पर तनिक भी आघात नहीं हुआ।

उस विजय-यंत्र को छत्रदंड पर बाँधकर उसके नीचे चूहे को छोड़ दिया और उसकी घात के लिये बिल्ली को छोड़ दिया। चूहे को देखते ही बिल्ली उस पर झपटी किन्तु छत्रदण्ड की सीमा में प्रवेश भी न कर सकी।

इस प्रकार यंत्र का चमत्कार देखकर चमत्कृत हुआ और ताम्रमय दो यंत्र बनवाकर एक सम्राट् ने स्वयं रखा और दूसरा आचार्य को प्रदान

किया। तब से सम्राट् स्थान, यान, घर, ग्राम, सभा, एकान्त, वन आदि किसी भी स्थान पर आचार्यजी को साथ ही रखता था।

मरुस्थल में दान

एक समय शाह मरुस्थल प्रदेश में आया। स्थान-स्थान पर मारवाड़ के नगरनिवासी हाथों में भेंट लेकर सामने आते थे। वहाँ के निवासियों को सामान्य वेश में देखकर शाह ने आचार्य से पूछा—गुरुजी ! यहाँ की नारियाँ आभरणरहित हैं, वेष-भूषा सामान्य है तो क्या इन लोगों को किसी ने लूट लिया है या किन्हीं अपराधों में दंडित हुये हैं ?' आचार्य ने कहा—सम्राट् ! यह मरुदेश रूक्ष और धनहीन है—इसी कारण से यहाँ के निवासी दरिद्र-प्राय गरीब हैं—और कोई कारण नहीं है।' यह सुनकर शाह ने प्रत्येक पुरुष को पाँच-पाँच वस्त्र और प्रत्येक नारी को साड़ी के साथ स्वर्ण के दो टंक प्रदान किये।[1]

ज्वर का जल में आरोप

एक समय आचार्य ज्वर आ जाने से सम्राट् के पास न जा सके। सम्राट् गुरुजी को ज्वरग्रस्त सुनकर आश्रम में आया और गुरुजी से कहा—ज्वर को भगाइये। आचार्य ने कहा वह अपना भोग लेकर जायेगा। फिर भी शाह के आग्रह से जल-पात्र मँगवाया और ज्वर का उसमें आरोप कर शाह से वार्ता करने लगे। जल-पात्र जलने लगा और कलकल शब्द करने लगा। शाह के जाने के पश्चात् आचार्य ने जलपात्र का पानी पी लिया। ज्वर पुनः चढ़ गया और अवधि पूर्ण होने पर चला गया।

तैलंग बन्दी मोचन

एक समय फीरोजशाह ने तैलंग देश पर विजय प्राप्त कर १ लाख ६९

---

१. किसी पट्टावली-में—प्रत्येक स्त्री को सौ-सौ दीनार देने का उल्लेख है तो किसी में 'प्रत्येक स्त्री को पाँच-पाँच स्वर्ण टंक मय पात्र' देने का उल्लेख है।

हजार बंदियों को मारने का आदेश दिया। यह जानकर आचार्य सम्राट् के पास आये और कहा कि इस प्रकार अन्याय हो रहा है, रोकिये। सम्राट् ने कहा—मुझे क्या मालूम कि तैलंग में क्या अन्याय हो रहा है, मुझे दिखाओ। आचार्य ने स्वप्नावस्था में समाट् को तैलंग ले जाकर सारी स्थिति दिखाई। दूसरे दिन सम्राट् ने उन १ लाख ६९ हजार बंदियों को मोचन का आदेश दिया।

अमावस्या की पूर्णिमा

कहा जाता है कि एक समय सभा में 'आज कौन-सी तिथि है' इस प्रश्न पर आचार्यश्री के मुख से या उनके शिष्य के मुख से सहसा निकल गया कि 'आज पूर्णिमा है।' वस्तुतः थी अमावस्या। सम्राट् ने मजाक किया कि आचार्य ! आज है तो अमावस्या किन्तु रात्रि तो चन्द्रिकाधौत रहेगी ही। आचार्य ने कहा—हाँ। तदन्तर उपासक से रजत का थाल मगवाकर मंत्रित कर आकाश में फेंका। आचार्य के प्रभाव से अमावस्या की अंधकारपूर्ण रात्रि भी चन्द्र की ज्योत्स्ना से धवलित हो रही थी। शाह ने परीक्षा के लिये १२-१२ कोस तक घुड़सवारों को भेजकर परीक्षा करवाई—सत्य रही।

महावीर प्रतिमा का बोलना

कन्यानयनीय महावीर-प्रतिमा जो म्लेच्छों द्वारा हरण की गई थी और जो राजमहल के पगोथियों पर पड़ी थी—जिस पर सब आते-जाते थे। आचार्य ने देखी और राजमहल में शाह के पास जाकर कहा—'आप यदि दें तो मैं एक प्रार्थना करूँ ?' शाह ने कहा—'माँगिये, मैं अवश्य दूँगा।' आचार्य ने कहा—'राजमहल के द्वार पर रखी हुई महावीर-प्रतिमा दीजिये।' शाह ने उसी समय उस प्रतिमा को अपने राजमहल में मंगवाई। उस प्रतिमा की मनोहारी प्रशान्त मुद्रा देखकर शाह का हृदय खिल उठा और उसने कहा–'यह प्रतिमा तो मैं नहीं दूँगा।' सुनकर आचार्य ने कहा– 'तो मेरा आगमन निरर्थक हुआ ?' शाह ने कहा—'यदि यह प्रतिमा मुख से बोले तो मैं आपको प्रदान कर दूँगा।' आचार्य ने कहा—आप यदि पूजा-

सत्कार करें तो भगवान् अवश्य बोलेंगे।' शाह ने विधि के अनुसार पूजा-सत्कार किया और पूजक के वेष में ही प्रार्थना की—'भगवन् ! मेहरबानी करके बोलिये।' उसी समय महावीर प्रतिमा ने जीमणा (दाहिना) हाथ फैलाकर कहा—[1]

"विजयतां जिनशासनमुज्ज्वलं, विजयतां भूभुजाधिपवल्लभः।
विजयतां भुवि साहिमहम्मदो, विजयतां गुरुसूरिजिनप्रभः॥"

इस पद्य का अर्थ गुरु के मुख से श्रवण कर सम्राट् ने कहा—'इस देव को क्या दूँ ?' आचार्य ने कहा—'शाह ! ये देव सुगन्धित द्रव्यों से प्रसन्न होते हैं।' सूरिमुख से श्रवण कर मुहम्मदशाह ने खरट और मातंड नाम के दो गाँव पूजा-सत्कार के लिये प्रदान किये। श्रावक-गण धूप लाकर सदैव धूप-पूजा करने लगे और सम्राट् ने वहाँ नया प्रासाद निर्माण करवाया।

रायण वृक्ष से दूध बरसाना

कन्यानयन महावीर-प्रतिमा का चमत्कार देखकर सम्राट् ने कहा—'गुरुजी !, कान्हड महावीर के समान चमत्कारी और भी कोई तीर्थ है ?' आचार्य ने 'शत्रुञ्जयतीर्थ की प्रशंसा की।' कौतुक-प्रिय और दर्शनोत्सुकी सम्राट् ने गुरु की आज्ञा से संघ लेकर शत्रुञ्जय गया। तीर्थ के दर्शन कर शाह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उस समय आचार्य ने कहा—'यदि इस रायणवृक्ष को मोतियों से बधाया जाय तो यह वृक्ष दूध की वर्षा करता है।' सम्राट् ने रायण को मोतियों से बधाया, उसी समय रायण से दूध झरने लगा।

आचार्य ने सम्राट् को संघपति की क्रिया करवा कर संघ के समक्ष संघपति पद प्रदान किया। सम्राट् ने वहाँ अपनी आज्ञा अंकित करवाई कि 'जो इस तीर्थ की आशातना करेगा वह पातिसाह का अपमान करेगा।'

---

१. पंचशती के अनुसार प्रतिमा ने शाह के २१ प्रश्नों के उत्तर प्रदान किये।

तीर्थ से उतर कर सम्राट् ने सब लोगों से कहा कि 'अपने-अपने देवों की प्रतिमाओं को लाओ।' शाह के आदेश से सब अपने-अपने देवों की प्रतिमाओं को लाये। सब प्रतिमाओं को एकत्रित देखकर शाह ने कहा—'इन सब में बड़ा देव कौन है?' इस प्रश्न का किसी ने उत्तर नहीं दिया। तब शाह ने अर्हत्प्रतिमा को बीच में रखकर आजू-बाजू अन्य प्रतिमाएँ रखीं और इसी प्रकार स्वयं मध्य में बैठकर अपने दोनों तरफ सशस्त्र सैनिकों को खड़ा करके पूछा—'कौन बड़ा है?' सबने कहा—'आप बड़े हैं।' सुनकर सम्राट् ने कहा—'वैसे ही शस्त्र-रहित होने से जिनदेव बड़े हैं और शस्त्रधारी देव इनके रक्षक हैं।' जनता ने कहा—'आपके वचन प्रमाणीभूत हैं।'

वहाँ से सम्राट् संघ सहित गिरनार तीर्थ आया और तत्र स्थित भगवान् नेमिनाथ की प्रतिमा को अच्छेद्य और अभेद्य सुनकर परीक्षा के लिये प्रतिमा पर आघात किये। आघात से प्रतिमा अग्निकण उगलने लगी। यह देखकर, क्षमा याचना कर, नमस्कार कर १०० स्वर्णटंकों से प्रतिमा को बधाया।

चौसठ योगिनी प्रतिबोध

एक समय आचार्य व्याख्यान दे रहे थे। उस समय ६४ योगिनियाँ उनको छलने के लिये श्राविका (उपासिका) रूप में उपाश्रय में आकर सामायिक लेकर बैठ गईं। पद्मावती ने आचार्य को संकेत किया कि 'ये योगिनियाँ आपको छलने के लिये आई हैं।' आचार्य ने उनकी तरफ दृष्टि-क्षेप करके देखा तो प्रतीत हुआ कि वे अपलक निर्निमेष दृष्टि से मेरी तरफ देख रहीं हैं—और मानो वे व्याख्यान-सुधा से तृप्त हो रही हों। आचार्य ने मंत्र-शक्ति से उनको स्तंभित कर दी। उपदेश के पश्चात् समस्त उपासक वर्ग अपने स्थान को चला गया। वे योगिनियाँ भी उठने लगीं—किन्तु देखा कि आसन चिपक रहा है, पुनः बैठ गईं। यह देखकर आचार्य ने कहा—उपासिकाओं! साधुओं के गोचरी के लिये जाने का समय हो गया है

अतः आप लोग वंदन करके स्वस्थान जायें। योगिनियाँ बोलीं--भगवन्, अपराध क्षमा हो, हम तो आपको छलने के लिये यहाँ आईं थीं किन्तु हम स्वयं आप से छली गईं। कृपाकर हमें मुक्त करिये।' आचार्य ने कहा--यदि आप लोग मुझे 'वचन' दें तो मैं आप लोगों को मुक्त कर सकता हूँ।' योगिनियाँ बोलीं—आप क्या वचन चाहते हैं ? हम देने का बाधित हैं। आचार्य ने कहा--'हमारे गच्छ के आचार्य योगिनीपीठ (उज्जैन, दिल्ली, अजमेर और भरुच) की तरफ विहार करें तो उन्हें किसी भी प्रकार का उपद्रव-परीषह नहीं होना चाहिये।' योगिनियों ने स्वीकृति दी। आचार्य ने उन्हें मुक्त किया वे अपने स्वस्थान को चली गईं।[1]

संघ का उपद्रव निवारण

एक नगर के उपासक वर्ग दो देवियों के रोगादि उपद्रवों से अत्यन्त पीड़ित थे। नागरिकों के कई उपचार किये गए किन्तु सफल न हो सके। अंत में उन्होंने दो प्रतिनिधियों को आचार्य के समीप भेजा। वे दोनों उपासक आचार्य के समीप आये। उस समय आचार्य ध्यानावस्था में थे और उनके समीप दो सुन्दर युवतियाँ खड़ीं थीं। युवतियों को देखकर दोनों उपासक विचार करने लगे कि 'गुरुजी के पास तो युवतियों का परिग्रह (सान्निध्य) है। यहाँ निवेदन करने से हमें क्या सफलता मिलेगी' वापस लौटने लगे, किन्तु स्तंभित हो गये। इसी समय आचार्य ने ध्यान पूर्ण किया और उसी समय दोनों युवतियों ने प्रश्न किया—'भगवन् ! आपने हमें किसलिये बुलाया है।' आचार्य ने कहा—'तुम दोनों संघ में उपद्रव करती हो, इसलिये तुम्हें शिक्षा देने के लिये यहाँ बुलाया है। देवियों ने कहा—'भगवन् अब आज से उपद्रव नहीं करेंगी—हमें क्षमा कीजिये। आचार्य के क्षमा करने पर वे दोनों देवियाँ चली गईं और दोनों उपासक भी मुक्त हो गये। दोनों उपासकों ने नमन कर देवियों का कारण पूछा। गुरुदेव ने कहा—

---

१. इस प्रकार का प्रसंग दादा जिनदत्तसूरि के जीवन में भी आता है, तुलना करे।

'सुना था कि आपके नगर में ये दोनों देवियाँ उपद्रव कर रही हैं, इसीलिये इनको बुलाया था। अब आगे से संघ में किसी प्रकार का उपद्रव नहीं होगा। यह सुनकर दोनों प्रतिनिधि अत्यन्त प्रसन्न हुये और अपने नगर में आकर यह वार्ता सुनाई।

आचार्य सोमप्रभ से मिलाप और चूहों को शिक्षा

एक समय सुलतान के साथ प्रवास करते हुये आचार्य जिनप्रभ जंघराल नगर (पाटण के निकट) पहुँचे। वहाँ उस समय तपागच्छ के आचार्य सोमप्रभसूरि विराजमान थे। उनसे मिलने को आ० जिनप्रभ उनके उपाश्रय (स्थान पर) गये। आ० जिनप्रभ को आये देखकर आचार्य सोमप्रभ ने अभ्युत्थानादि द्वारा उनका बहुत स्वागत-सत्कार करते हुये कहा—'आचार्य देव ! आप आराध्य हैं। आपके प्रभाव से आज सर्वत्र जैन-शासन का जय-जयकार हो रहा है। आपकी शासन-सेवा अतुलनीय है।' आचार्य जिनप्रभ ने प्रत्युत्तर में कहा—आचार्यवर ! आप क्या कह रहे हैं ? सम्राट् के साथ रहने के कारण हम संयम क्रिया यथावत् पालन नहीं कर पाते हैं। आपकी शास्त्रीय साधु-दिनचर्या श्लाघनीय और अनुकरणीय है।' इस प्रकार दोनों आचार्य प्रेमालाप मग्न थे।

उसी समय एक मुनि ने प्रतिलेखन करते हुये अपनी सिक्किका (झोली) को चूहों द्वारा काटी हुई देखकर–सोमप्रभसूरि (अपने गुरु) को दिखाई। आ० जिनप्रभ पास में ही बैठे हुये थे; आकर्षण से समस्त चूहों को वहाँ बुलाया—वे आकर भयभीत होकर सामने खड़े हो गये। आचार्य ने उनसे कहा—'तुम में से जिस किसी ने वस्त्र काटने का अपराध किया हो, वह यहाँ रहे और सब चले जायँ। अपराधी चूहे को छोड़कर सब चले गये। उसे भयाक्रान्त देखकर आचार्य ने उस चूहे से कहा–भय न खाओ, आगे से ऐसा अपराध न करना, तुम उपाश्रय छोड़कर चले जाओ, वह उपाश्रय से बाहर चला गया। यह आश्चर्य देखकर सब साधु बहुत

चकित हुये।[1]

खंडेलपुर के निवासियों को जैन बनाना

जांगल देश (राजस्थान) के खंडेलवाल गोत्रीय शिवभक्त गुड़-खाँड का व्यापार करते थे। पश्चात् गुड़ के स्थान पर मदिरा का व्यापार करने लगे। उन मदिरा व्यवसायी शिवभक्तों को प्रतिबोध देकर आचार्य ने उन्हें सं० १३४४ (१७४) में जैन बनाया :

"खंडेलपुरे नयरे लेरस्सए चउत्ताले।
जंगलया सिवभत्ता ठविया जिणसासणे धम्मे ॥"

---

१. चूहों की शिक्षा के संबंध में पंचशतीकार ने पूर्ववृत्त इस प्रकार दिया है—किसी वेलाकुल में धर्ममूर्ति धनसेठ रहता था। एक दिन व्यापार के लिये चौराहे पर गया। उस समय मजीठ आदि वस्तुओं से भरे हुए कई जहाज आये हुए थे। वहाँ के व्यापारी सात-आठ जहाजों का माल खरीद कर चले गये, अवशिष्ट तीन जहाजों का माल किसी ने भी नहीं खरीदा। धनसेठ उन्हीं ३ जहाजों का माल खरीद कर ले गया। रात्रि को स्वप्नावस्था में किसी देव ने सूचित किया—'इन जहाजों का माल ध्यान से बेचना, तुम्हारे यहाँ कल्पवृक्ष आया है।' प्रातःकाल उठते ही उन जहाजों के माल को देखने पर पांच रत्न प्राप्त हुये। धनश्रेष्ठि उसी समय जहाज के व्यापारी के पास जाकर पूछा कि उक्त जहाजों का माल आप ने किससे खरीदा था? व्यापारी ने कहा—चोरों के पास से। व्यापारी के पास से लौटकर सेठ ने विचार किया कि इस धन को धर्म में ही व्यय करना चाहिए। ऐसा विचार कर उसने नया जिनमंदिर का निर्माण करवाया। इस प्रकार पापानुबन्धी को धर्मानुबन्धी किया। एक समय आचार्य जिनप्रभ को बड़े आग्रह से बुलाकर अपने स्थान पर रखा और आहारादि दान से सत्कृत किया। प्रतिलेखना के समय एक साधु ने आचार्य से शिकायत की कि सिक्किका को चूहों ने काट दी इत्यादि।

कंवला तथा विवाद निवारण

एक समय मेदपाट (मेवाड़) देशीय पाल्हाक नाम का वैद्य सुलतान की चिकित्सा करने के लिये आया हुआ था। एक दिन पाल्हाक कोमल्लसूरि शाखा (कंवला-उपकेशगच्छ) के उपाश्रय में गया। कोमलशाखीय यतियों ने तपागच्छ के आचार्यों की निंदा की। पाल्हाक वैद्य सहन न कर सका। कलह का रूप वार्ता तक न रहकर दण्डा-दण्डी का हो गया, किसी का हाथ टूटा तो किसी का मुख। सब कलह करते हुये सुलतान के पास आये। सुलतान ने सारा वृत्तान्त सुनकर, आचार्य जिनप्रभ के संकेतानुसार आदेश दिया कि तुम सब न्यायी भी हो और अन्यायी भी हो, दण्ड किसे दिया जाय ! जाओ, आगे से कभी कलह मत करना।

शिष्य-परम्परा

आचार्य जिनप्रभसूरि का शिष्य-परिवार विशाल था। कितना था यह तो ज्ञात नहीं किंतु देवगिरि जाते हुये जिनदेवसूरि के पास १४ साधुओं को छोड़कर गये थे, साईबाण बाग में ५ दीक्षाए प्रदान की थी; आदि उल्लेखों से विशाल-समुदाय होना प्रतीत होता है। वैसे आपकी परम्परा में प्रतिभाशाली और धुरन्धर आचार्य एवं अनेकों साधु हुये हैं और ऐतिहासिक प्रमाणों से १८वीं शती तक आपकी परम्परा चलती रही है; जिसका सामान्य परिचय इस प्रकार है।

आचार्य जिनदेवसूरि

आपके पिता का नाम कुलधर[1] और माता का नाम वीरीणि था। जिनप्रभसूरि के आप प्रमुख शिष्यों में से थे। जिनप्रभसूरि ने स्वहस्त से ही आचार्यपद प्रदान किया था। आचार्य जिनप्रभसूरि जिस समय सम्राट् मुहम्मद तुगलक से मिले थे उस समय आप भी साथ थे और प्रवेश महोत्सव के समय हाथी पर आप भी बैठे थे। जिस समय आचार्य जिनप्रभ ने

---

१. जिनदेवसूरि गीत (ऐति. जै.का.सं.)

देवगिरि की ओर प्रस्थान किया था उस समय आचार्य जिनप्रभ ने १४ साधुओं के साथ आपको सम्राट् के पास दिल्ली में ही रखा था। एक प्रसंग का आचार्य जिनप्रभ स्वयं स्वरचित कन्यानयनीय महावीर-कल्प में किया है[१] :

"इधर दिल्ली में विराजित जिनदेवसूरि विजयकटक (शाही छावणी) में सम्राट् से मिले। सम्राट् ने बहुत सम्मान के साथ एक सराय (मुहल्ला) जैन संघ के निवास के लिये दी। इस सराय का नाम 'सुलतान सराय' रखा गया। वहाँ सम्राट ने पौषधशाला और जैन-मन्दिर बनवा दिया एवं ४०० श्रावकों को सकुटुम्ब निवास करने का आदेश दिया। पूर्वोक्त कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा को इस सराय में सम्राट के बनवाये हुये मन्दिर में विराजमान किया गया। श्वेताम्बर-दिगम्बर एवं अन्य धर्मावलम्बी जन भी भक्ति-भाव से इस प्रतिमा की पूजा करने लगे।"

देवगिरि से दिल्ली आते हुये सूरिजी के साथियों को अल्लावपुर में मल्लिकों ने परेशान किया था; उस समय यह वृत्तान्त जानकर जिनदेवसूरि ने सम्राट से मिल कर इस उपद्रव का निराकरण करवाया था। इस से स्पष्ट है कि सम्राट के हृदय में इनके प्रति बहुत गौरवपूर्ण सम्मान था।[२]

आपके रचित कालिकाचार्य कथा और शिलोञ्छनाममाला[३] (सं. १४३३) प्राप्त हैं।

जिनमेरुसूरि—जिनदेवसूरि के पट्टधर थे। आपके गुरुभाई श्री जिनचन्द्रसूरि थे।

जिनहितसूरि—जिनमेरुसूरि के पट्टधर थे। आपके रचित वीरस्तव

---

१. विविधतीर्थकल्प, पृ.४६।

२. वही, पृ. ९५

३. शिलोञ्छानाममाला श्रीवल्लभोपाध्याय रचित टीका के साथ मेरे द्वारा सम्पादित होकर शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली है।

गा० ९ और तीर्थमालास्तव (चउवीसंपि जिणिंदे) गा० १२ एवं कर्म प्रतिष्ठित प्रतिमायें प्राप्त हैं।

जिनसर्वसूरि—जिनहितसूरि के पट्टधर थे।

जिनचन्द्रसूरि—जिनसर्वसूरि के पट्टधर थे। आपकी प्रतिष्ठित कई प्रतिमायें (सं. १४६९-१५०६) प्राप्त हैं।

जिनसमुद्रसूरि—जिनचन्द्रसूरि के पट्टधर थे। आपकी रचित रघुवंश एवं कुमारसंभव टीका प्राप्त हैं।

वाचनार्थ चारित्रवर्द्धन

पंच महाकाव्यों के प्रसिद्ध व्याख्याकार वाचनाचार्य चारित्रवर्द्धन भारतीय वाङ्मय के एक समर्थ प्रतिभाशाली एवं विश्रुत विद्वान् थे। व्याकरण, निरुक्त तथा अलंकार विषयक आपका ज्ञान इतना व्यापक था कि अन्य परवर्ती टीकाकारों को भी आपका 'मत' स्वीकार करना पड़ा। आपकी टीकाओं को देखने से न केवल हमें उनके व्याकरण तथा लक्षणशास्त्र के अगाध ज्ञान का पता चलता है अपितु उनके न्याय, दर्शन, जैन सिद्धान्त और साहित्य का भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। अत: यह कहा जा सकता है कि आप सर्वदेशीय विद्वान् थे; यही कारण है कि आप स्वयं अपनी टीकाओं की प्रशस्ति में अपनी योग्यता का गर्व भरे शब्दों में स्वयं का 'नरवेष सरस्वती' उपनाम ख्यापित करते हुये लिखते हैं :—

तच्छिष्य-प्रतिपक्षदुर्द्धरमहावादीभपञ्चाननो,
नानानाटकहाटकाभरगिरिः साहित्यरत्नाकरः।
न्यायाम्भोजविकाशवासरमणिर्बौद्धेति जाग्रत्प्रभो
वेदान्तोपनिषन्निषन्नधिषणोऽलङ्कारचूड़ामणिः॥
श्रीवीरशासनसरोरूहवासरेशः,
सद्धर्मकर्मकुमुदाकर पूर्णिमेन्दुः।
वाचस्पतिप्रतिभधीर्नरवेषवाणि—
चारित्रवर्धनमुनिर्विजयी जगत्याम्॥

× × ×

चारित्रवर्धन गणि श्री जिनप्रभसूरि की परम्परा के चौथे आचार्य श्री जिनहितसूरि के प्रशिष्य तथा उपाध्याय कल्याणराज के शिष्य थे :

वंशे श्री**जिनवल्लभस्य** सुगुरोः सिद्धान्तशास्त्रार्थवित्,
दर्पिष्ठ प्रतिवादिकुञ्जरघटाकण्ठीरवः सूरिराट् ।
नाना नव्यसुभव्यकाव्यरचनाकाव्यो विभाख्याऽमल-
प्रज्ञो विज्ञनतो **जिनेश्वर** इति प्रौढ़प्रतापोऽभवत् ॥१॥

शिष्यस्तदीयोऽजनि जन्तुजात-हितार्थसम्पादनकल्पवृक्षः ।
विपक्षवादिद्विपञ्चवक्त्रः, सूरीश्वरः श्रीजिनसिंहसूरिः ॥२॥

तत्पट्टपूर्वाद्रिसहस्ररश्मि-र्जिनःप्रभः सूरिपुरन्दरोऽभूत् ।
वाग्देवताया रसनां तदीयामास्थानपट्टं जगदु-र्बुधेन्द्राः ॥३॥

तदनु **जिनदेवसूरिः**, स्वशेमुषी तर्जितत्रिदशसूरिः ।
निरुपमसमरसभूरिः, सूरिवरः समजनिष्ट जयी ॥४॥

तदनु **जिनमेरुसूरि**-दूरीकृतपातको निरातङ्कः ।
समजनि रजनीवल्लभवदनो मदनोरगेतार्क्षः ॥५॥

गुणगणभणिसिन्धुर्भव्यलोकैकबन्धु—
विधुरितकुमतौघः प्रीणिताशेषसङ्घः ।
जिनमतकृतरक्षस्तर्जितारातिपक्षोऽ—
जनि **जिनहितसूरि**स्त्यक्तनिश्शेषभूरिः॥६॥

जिनसर्वसूरिरभवत्तत्पट्टेऽघट्टितप्रबलमोहः ।
सज्जनपङ्कजराजीविकाशभास्वान्महौजस्कः ॥७॥

तस्य **जिनचन्द्रसूरिः**, शिष्यो दक्षः कलावतां पक्षः ।
कक्षीकृताखिलजनोपकारसारः सदाचारः ॥८॥

सूरिर्जिनसमुद्राख्यस्तस्य जज्ञे महामतिः ।
अन्तिषत्सुकृतीसाधुवृन्दाम्भोजनभोमणिः ॥९॥

जिनतिलकसूरिरस्माद् विजयी जीयादशेषगुणकलितः ।
श्रीवीरनाथशासनसरंसीरुहभास्करः श्रीमान् ॥१०॥
तत्पट्टपूर्वाचलमौलिचन्द्रः, विपक्षवादिद्विपञ्चवक्त्रः ।
जीयात् सदाऽसौ जिनराजसौरिः, सत्पक्षयुक्तो जिनधर्मरक्षः।११।[1]
जिनहितसूरेः[2] शिष्यो, बभूव भूमीशवन्दिताङ्घ्रियुगः ।
कल्याणराजनामोपाध्यायस्तीर्णशास्त्राब्धिः ॥१२॥
तशिष्यो................ [रघुवंश टीका प्र०]

गणि चारित्रवर्धन की पूर्वावस्था का वर्णन तथा दीक्षा-शिक्षा इत्यादि वर्णन पूर्णतः अनुपलब्ध है। केवल टीकाओं की प्रशस्तियाँ देखने से यह ज्ञात होता है कि आपका साहित्य-सर्जन काल सं० १४९२ से १५२० तक का है। आचार्य जिनहितसूरि के प्रशिष्य चारित्रवर्धन थे और आचार्य-परम्परा के अनुसार प्रशस्ति निर्दिष्ट जिनराजसूरि ५वें पट्ट पर आते हैं। इस दृष्टि से चारित्रवर्धन का दीक्षा-काल अनुमानतः १४७० स्वीकार किया जा सकता है। चाहे कल्याणराज अतिवृद्ध हों या चारित्र-वर्धन; किन्तु यह निस्संदेह है कि इनकी दीक्षा-पर्याय बहुत बड़ी रही है। कुमारसंभव-टीका की रचना सं० १४९२ में हुई है। इस टीका का आद्योपान्त भाग अवलोकन करने से यह निश्चित ज्ञात होता है कि यह कृति प्रारंभिक अवस्था की नहीं, अपितु प्रौढ़ावस्था की है। तथा इसमें उल्लिखित स्वयं के लिये वाचनाचार्य पद को ध्यान में रखने से ऐसा अनुमान होता है कि लगभग २०–२२ वर्ष का समय उनकी दीक्षा को हो चुका होगा। इस दृष्टि से दीक्षा-समय १४७० के लगभग ही आता है। सं० १४९२ की रचना में जिनतिलकसूरि का उल्लेख होने से संभवतः वाचना-चार्यपद आपको इन्होंने ही प्रदान किया होगा।

---

१. यह पद्य नैषध, सिन्दूरप्रकर, कुमारसंभव की प्रशस्तियों में नहीं है। केवल रघुवंश वृत्ति की प्रशस्ति में है।

२. नैषधीय प्रशस्ति में 'जिनहितसूरेः' के स्थान पर 'जिनसिंहसूरेः' पाठ है जो गुरु परम्परा तथा छन्दो भंगदृष्टि से अयोग्य है।

इस प्रशस्ति के अनुसार आपका वंशक्रम इस प्रकार है :

- जिनवल्लभसूरि
  - जिनदत्तसूरि
    - जिनचन्द्रसूरि
      - जिनपतिसूरि
        - जिनेश्वरसूरि (द्वितीय)
          - जिनप्रबोधसूरि [बृहत्शाखा]
          - जिनसिंहसूरि [लघुखरतरशाखा]
            - जिनप्रभसूरि
              - जिनदेवसूरि
                - जिनमेरुसूरि
                  - जिनहितसूरि
                    - जिनसर्वसूरि
                      - जिनचन्द्रसूरि
                        - जिनसमुद्रसूरि (कुमारसंभववृत्ति ट०)
                          - जिनतिलकसूरि
                            - जिनराजसूरि
                    - उ० कल्याणराज
                      - चारित्रवर्धन
                - जिनचन्द्रसूरि

कवि की कोई भी मौलिक कृति प्राप्त नहीं है। व्याख्या-ग्रन्थ अवश्य प्राप्त हैं जो इनकी कीर्त्ति को अक्षुण्ण रखने में अवश्य समर्थ हैं। तालिका इस प्रकार है :

१. रघुवंश-शिष्यहितैषिणी वृत्ति[1]		अरउक्कमल्ल अभ्यर्थनया,
२. कुमारसंभव-शिशुहितैषिणी वृत्ति[2]	सं० १४९२,★	,, ,,
३. शिशुपालवध-वृत्ति		सहस्रमल्ल ,,
४. नैषधवृत्ति[3]	सं० १५११†	
५. मेघदूत वृत्ति[4]		
६. राघवपाण्डवीयवृत्ति		

---

१. मेरे संग्रह में।

२. गुजराती मुद्रणालय बंबई द्वारा सं० १९५४ में प्रकाशित।

३. नाहटाजी की सूचना के अनुसार गुजराती सभा कलकत्तादि में प्रतियाँ प्राप्त हैं।

★ वर्षे विक्रमभूपतेर्विरचिता दृ[२]ग्नन्द[९]मन्व[१४]ङ्किते,
माघे मासि सिताष्टमी सुरगुरावेषोऽञ्जलिर्वो बुधाः।
[कु० सं० वृ० प्र०]

† तेनामुख्यविपक्षवादिनिकराहङ्कारविश्वम्भरा-
भूल्लेखप्रभुणा [११]शिवेषु[५] [१]शशभृत् संख्या कृते वत्सरे।
टीका राघवलक्षमाघवतियो शक्रेण चक्रे महा-
काव्यस्यातिगरीयसो मतिमतां श्रीनैषधस्यार्थदाः ॥१४॥
[नैषधप्र०]

४. मेरे संग्रह में, व मुद्रित।

७. सिन्दूरप्रकरवृत्ति सं० १५०५† उ० भीषण अभ्यर्थनया
८. भावारिवारणस्तोत्र-वृत्ति[1]
९. कल्याणमन्दिरस्तोत्र-वृत्ति[2]

रघुवंश और नैषधटीका में तो कवि ने अपनी प्रतिभा एवं पाण्डित्य का पूर्ण उपयोग किया है। नैषध की टीका में तो कवि ने यह प्रयत्न किया है कि अन्य टीकाओं की भी यह 'जननी'—पथप्रदर्शिका बन सके :

यद्यपि बह्व्यस्टीकाः सन्ति मनोज्ञास्तथापि कुत्रापि ।
एषा विशेषजननी भविष्यतीत्यत्र मे यत्नः ॥

यही कारण है कि गुजराती मुद्रणालय बम्बई से प्रकाशित कुमारसंभव-वृत्ति की प्रस्तावना में सम्पादक आपके पाण्डित्य की प्रशंसा में इस प्रकार लिखता है :

"चारित्रवर्धनकृता शिशुहितैषिणी टीका.........., साच श्लोकाभिप्रायं स्पष्टतया विशदीकरोति पदार्थांश्चाभिर्वक्ति, अतो शिशुहितैषिणी व्युत्पित्सूनामतीवोपकारिणीति सम्प्रधार्य...."

सिन्दूर प्रकर जैसे १०० पद्यों के काव्य पर ४८०० श्लोक[3] प्रमाणोपेत टीका की रचना कर, गणिजी ने अपनी असाधारण योग्यता का परिचय दिया है। इस टीका में व्याख्याकार ने सुरुचिपूर्ण एवं मौलिक दृष्टान्तों की तो मानों माला ही खड़ी कर दी है।

---

† श्रीमद्विक्रमभूपतेरिषुवियद्वाणेन्दुसंख्यामिते
वर्षे राधसिताष्टमीगुरुदिने टीकामिमां निर्म्ममे ।
सिन्दूरप्रकरस्य चारुकरुणो निर्मापयामासिवान्,
दृष्टान्तैः कलितामनाथधिषणश्चारित्रनामा मुनिः ॥११॥
वत्सरे लिखिता तस्मिन् धर्मदासेन धीमता ॥१४॥
[सिन्दूर० प्र०]

१. प्र० पुण्यविजयजी संग्रह।

२. हीरालाल र० कापड़िया द्वारा उल्लेख ।

३. अनुष्टुभां सहस्राणि, चत्वार्यष्टौ शतानि च ।
ग्रन्थसंख्या मिता यत्र, विवृत्तौ वर्णसंख्यया ॥१३॥

आपकी टीकाओं की प्रशस्तियों को देखने से यह मालूम होता है कि न केवल आप ही नरवेषसरस्वती थे अपितु आपका भक्त श्रावकवृन्द भी नरवेषसरस्वती तो नहीं किन्तु सरस्वत्युपासक अवश्य था, और इन्हीं भक्तों की अभ्यर्थना से ही इन्होंने महाकाव्यों पर अपनी लेखनी चलाई। ऊपर सूचित नं० १, ३, ७ के ग्रन्थों में व्याख्याकार ने जो उपासकों का परिचय दिया है वह ऐतिह्य दृष्टि से बहुत ही महत्त्व रखता है। व्याख्याकार प्रत्येक का परिचय प्रशस्तियों में इस प्रकार देता है :

"इत्यखण्डपाण्डित्यमण्डितपाण्डुभूमण्डलाखण्डलस्थापनाचार्यकर्पूरचीर-धाराप्रवाहप्रभृतिविरदावलीचलितललितोत्कटवदान्यसुभट**देशलहरवंश**सर-सीरुहविकाशनमार्त्तण्डबिम्बप्रचण्डदोर्दण्डविकट**चेचटगोत्र**गोत्राभिदुन्नतसाधुश्री **देशलसन्तानीय**-साधु-श्री**भैरवात्मज**साधु**श्रीसहस्रमल्लसमभ्यर्थिता**...."

[शिशुपालवध प्र०]

× × ×

"**श्रीमालवंशहंसो**, **डौडागोत्रे** पवित्रगुणपात्रम्।
समजनि **जगलूश्रेष्ठी**, विशिष्टकर्मा वरिष्ठयशाः ॥१४॥
माल्लू श्रेष्ठी तस्य, प्रशस्यमूर्त्तिर्बभूव तनुजन्मा।
पुत्रोऽमुष्य स **भूधर**, इत्याख्यो दक्षजनमान्यः ॥१५॥
जगसीधर इति तस्माज्जातः स्मरविग्रहः कलानिलयः।
तस्यापि **लखमसिंह**स्तनयो विनयी नयाभिज्ञः ॥१६॥
तेजपालस्ततो जज्ञे, सुतो मुख्याद्यणोपि च।
पोप्पडो बाहड़ा न्यूनधर्मः शर्मनिधिः सुधीः ॥१७॥
अमुख्यमुख्यो दाक्षिण्यभाजनं तनुजो जयी।
देवसिंह इति स्वान्तःवासिताऽर्हन्पदाम्बुजः ॥१८॥
साधुः **सालिगनामा**ऽभूत्तत्पुत्रः स चरित्रभूः।
एतस्याङ्गसमुद्भूताश्चत्वारोऽपि जयन्त्यमी ॥१९॥

आढूः साधुर्धियां भूमिर्भ**ैरवो** रिपुभैरवः ।
ततः **सेहुण्डनामा** च, धर्मधामा मनोरमः ॥२०॥
अरउकमल्लस्तुर्यो, वर्यो धुर्यः सताममात्सर्यः ।
सत्कार्यो धर्मधनो, मनोहरः सकलललनानाम् ॥२१॥
यद्यप्येष कनिष्ठस्तदपि गुणैर्ज्येष्ठ एव विख्यातः ।
कान्तगुणोऽनणुबुद्धिः शुद्धाचारो विचारज्ञः ॥२२॥
तत्त्वादृगत्वरमन्त्राखिलमुख्यां वस्तुजातमवधार्य ।
यो धर्म एव बुद्धिं विदधाति नितान्तगुरुधिषणः ॥२३॥
एतेनाभ्यर्थितोऽप्यर्थं.........................

[कुमारसंभववृत्ति प्र०]

× × ×

इसी श्रीमालवंशीय डौडागोत्रीय अरउक्कमल्ल की अभ्यर्थना से रघुवंश काव्य[1] की व्याख्या का भी प्रणयन किया है ।

× × ×

श्रीमालवंशसरसीरुहतिग्मभानुः, **सड्ढोरगोत्र** कुमुदाकरशीतभानुः ।
धारू इति प्रथितचारुयशोविलासः, श्रीमानभूच्छुभमतिर्यतिपादसेवी ॥१॥
तस्याङ्गजोऽजनि जनव्रजनीरजाको, **बोजाभिधो** विधुत····विपक्षलक्षः ।
कक्षीकृताखिलमहोपकृतिर्कृतज्ञः, सर्वज्ञशासनसरोजमरालमौलिः ॥२॥
तत्पुत्रः कामदेवोऽभूत्, कामदेव-समद्युतिः ।
अर्थिनां कामदः कामं, सामजातगतिः (?) कृती ॥३॥
तस्याङ्गभूः समजनिष्ट विशिष्टकीर्त्तिर्**श्रीदेवसिंह** इति सिंहसमानशौर्यः ।
वर्यः सतां गुणवतां प्रथमः पृथुश्रीस्तीर्थङ्करक्रमसरोरुहचञ्चरीकः ॥४॥
पुत्रस्तदीयोऽजनि **वस्तुपालः**, शुभाशयोऽर्द्धेन्दुसनाभिभालः ।
जिनेन्द्रपादार्चननाकपालः, समस्तवैरिव्रजनाशकालः ॥५॥

---

१. इति श्रीमालान्वयसाधुश्रीसालिगतनुजश्रीअरउक्कमल्लसमभ्यर्थित......................... ×

अभूतामस्य पुत्रौ द्वौ, सच्चरित्रपवित्रितौ ।
ज्येष्ठ: **सहजपालाख्यो,** द्वितीयो **भीषणः** प्रभु: ।।६।।
निर्दूपणो योनिजवंशभूषणं, गुणानुरागेण वशीकृताशयः ।
अनन्यसामान्यवराण्यतां दधद्दधाति नि:केवलमेव धर्मताम् ।।७।।

य: कारुण्यपयोनिधिर्गुणवतां मुख्य: सतामग्रणी—
र्माघट्टे (?) रिकुलेभकेशरिशिशुर्विश्वोपकार-क्षमः ।
धर्मज्ञ: सुविचक्षण: कविकुलै: संस्तूयमानो वशी,
जीयाज्जैनमताम्बुजैकमधुप: **श्रीभीषण**: शुद्धधी : ।।८।।

देवगुरुचरणनिरतो विरतो पापात् प्रमादसंत्यक्तः ।
सोऽयं **भीषण**नामा कामा तनुर्भाति धर्ममति: ।। ९ ।।
सोहमभ्यर्थितोऽत्यर्थं टीकां ठक्कुरभीषणैः ।
सिन्दूरप्रकरस्यास्याकार्षं चारित्रवर्धनः ।। १० ।।

[सिन्दूरप्र० वृ०]

× × ×

उपासकों के लिये रघुवंश, कुमारसंभव तथा शिशुपालवध इत्यादि महाकाव्यों पर प्रौढ एवं परिष्कृत शैली में व्याख्या करना, उपासकों की योग्यता और बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन करता है ।

देशलहर सन्तानीय चेचटगोत्रीय भैरवसुत सहस्रमल्ल, श्रीमालवंशीय डौडागोत्रीय सालिगसुत अरउक्कमल तथा श्रीमालवंशीय ढोरगोत्रीय ठक्कुर भीषण प्रायः विहार और उत्तर प्रदेश के ही निवासी थे और यह निश्चित है कि लघुखरतरशाखा का फैलाव भी इसी प्रदेश में था । आगे भी हम देखते हैं कि १७ वीं शती के अन्तिम चरण में जब इस लघु शाखा-परम्परा का ह्रास हो जाता है तो बृहत्शाखीय जिनराजसूरि के शिष्य जिनरंगसूरि को इस शाखा के अनुयायी स्वीकार लेते हैं जो आज भी इसी रूप में अवस्थित हैं । अतः चारित्रवर्धन का विहार-भ्रमण प्रदेश भी यही प्रदेश रहा है । केवल २,४,७ नं० की कृतियों में संवत् का उल्लेख प्राप्त है, अन्यों में नहीं । नैषधटीका की रचना सं १५११ में

हुई है। यदि इस रचना को अन्तिम मान लें तो अनुमानतः १५२० तक आप विद्यमान रहे होंगे।

प्रस्तुत भावारिवारणस्तोत्र-टीका की भाषा-शैली तथा वैशिष्टय देखते हुए यह निश्चितरूप से कह सकते हैं कि यह प्रारम्भिक व्याख्या कृति है। इसमें स्वनाम के साथ वाचनाचार्यपद का उल्लेख होने से सं० १४९० के पूर्व ही इसकी रचना हुई होगी। यह प्रारंभिक कृति होने पर भी व्युत्पत्ति की दृष्टि से उत्तम और पठनीय है।

न केवल गणि चारित्रवर्धन ही देवी पद्मावती के उपासक थे अपितु 'जैनप्रभीय' सारी परम्परा ही पद्मावती को इष्ट मानकर उपासना करती रही है। यही कारण है कि नैषधीय व्याख्या के प्रारंभ में ही चारित्रवर्धन लिखते हैं :

पद्मावती भगवती जगती नमस्या, भूयाद्भयार्त्तिशमिनी जगतो वयस्या।
नागाधिराजरमणी रमणीयहास्या, देवैर्नुता मम विकाशिसरोरुहास्या ॥२॥

जिनतिलकसूरि—जिनसमुद्रसूरि के पट्टधर थे। आपकी प्रतिष्ठित प्रतिमाओं के लेख सं० १५०८ से १५२८ तक के उपलब्ध हैं।

जिनराजसूरि—जिनतिलकसूरि के आप पट्टधर थे। आपकी प्रतिष्ठित कई प्रतिमायें प्राप्त हैं।

जिनचन्द्रसूरि—जिनराजसूरि के आप पट्टधर थे। आपकी प्रतिष्ठित कई प्रतिमाएँ प्राप्त हैं।

जिनभद्रसूरि—आपकी भी प्रतिष्ठित कई प्रतिमायें प्राप्त हैं।

जिनमेरुसूरि—

जिनभानुसूरि—आप जिनभद्रसूरि के शिष्य थे।

विद्वद् परंपरा

अभयचन्द्र—जिनहितसूरि के पौत्र और उपाध्याय आणंदराज के शिष्य थे। आपकी रचित गुणदत्तकथा और 'रत्नकरण्डक' (सुभाषित) प्राप्त है।

विद्याकीर्ति--जिनतिलकसूरि के शिष्य थे। आपके रचित जीवप्रबोध प्रकरण (भाषा) (सं० १५०५ हिसार) प्राप्त है।

राजहंस—जिनतिलकसूरि के शिष्य थे। आपकी निम्नोक्त रचनाएँ प्राप्त हैं:—वाग्भट्टालंकारटीका (सं० १४), दसवैकालिकबालावबोध, प्रवचनसार, जिनवचनरत्नकोष, एवं वर्धमानसूरि आदि के प्राकृतप्रबन्ध।

महीचन्द्र--जिनराजसूरि के पौत्र उपाध्याय कमलचन्द्र गणि के शिष्य थे। आपकी रचित उत्तमकुमारचौपाई (सं० १५९१ वै० शु० ३) प्राप्त है।

लक्ष्मीलाभ--आपके प्रणीत भुवनभानुकेवलिचरित्र प्राप्त है।

चारित्रवर्धन--देखें पृष्ठ ७९ से ८८ तक।

भानुतिलक--वा० भारतीचन्द्र के शिष्य थे। आपकी प्रणीत गुणस्थान प्रकरण टीका प्राप्त है।

समयध्वज—आप सागरतिलक के शिष्य थे। आपकी रचित सीतामती चौ०(सं० १६११ मा० व० ३) और पार्श्वनाथ फागु प्राप्त हैं।

(१) वि० सं० १५८५ वैशाख शुक्ला ५ गुरुवार को जिनप्रभसूरि परम्परीय मुनिराज के उपदेश से श्रीमालवंशी श्राविका रूपाई ने सचित्र कल्पसूत्र एवं कालिकाचार्य कथा लिखवाई। जिनचन्द्रसूरि के समय में उपाध्याय सागरतिलक से शिष्य समयध्वजोपाध्याय को श्राविका पूरी ने समर्पित किया।[१]

(२) सं० १६३५ कार्तिक कृष्णा ७ गुरुवार को आगरा में मुमुक्षु देवतिलक ने जिनप्रभसूरि रचित पर्युषणकल्पपञ्जिका की प्रति लिखी थी।

(३) १६४१ को सिंघानकपुर में जिनहितसूरि के शिष्य आदिदेव मुनि ने जिनभानुसूरि के समय में समयसारनाटक-वृत्ति की प्रति लिखी थी।[२]

(४) १७२६ फाल्गुन शुक्ला १० को उपाध्याय लब्धिरंग के शिष्य पं० नारायणदास की प्रेरणा से कवि हेमराज ने नयचक्र वचनिका बनाई थी।[3]

१-२. जयचन्द्रजी भंडार बीकानेर। ३. दानसागर भंडार बीकानेर।

साहित्य-सर्जना

आचार्य जिनप्रभसूरि न केवल मुहम्मद तुगलक के प्रतिबोधक या तीर्थों की रक्षा करके शासन-धर्मप्रभावक ही थे, अपितु सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी भी थे। साथ ही न केवल आप जैनागमों के ही विद्वान् थे अपितु न्याय, दर्शन, व्याकरण, काव्य, अलंकार, छन्दशास्त्र के प्रौढ विद्वान् भी थे। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो अष्टभाषात्मक ज्ञान के आप भंडार थे। आपकी लेखिनी प्रत्येक विषय पर समान रूप से चली है। आपने अनेक विषयों पर अनेकों रचनाएँ की हैं किन्तु काल-कवल से बचने के पश्चात् जो वर्तमान में प्राप्त हैं, उनका विषयानुसार वर्गीकरण इस प्रकार है :

जैनागम—कल्पसूत्रसन्देहविषौषधिनाम्नी टीका[1]

जैन-साहित्य—साधुप्रतिक्रमणअर्थनिर्णयकौमुदी टीका[2], षडावश्यक

---

१. र० सं० १३६४ अयोध्या, ग्र० २२६९ प्र०।

२. आ०—नत्वा श्रीवीरजिनं, संक्षिप्तरुचीननुग्रहीतुमनाः।
सुगमीकरोमि किञ्चिद् यतिप्रतिक्रमणसूत्रमहंम् ॥१॥

अं०—यदभिनवं शुभमनया, यतिप्रतिक्रमणसूत्रगमनिकया।
जनतास्तु जगति तेनास्तवृजिनजिनवचनजनितरतिः ॥१॥
मुग्धानामुपयोगार्थमियं संक्षिप्तवृत्तिका।
बृद्धव्याख्यात उज्जहि, श्रीजिनप्रभसूरिभिः ॥२॥
ध्यानलेश्याक्रियास्थान (१३६४) संख्ये विक्रमवत्सरे।
इयमूर्जाधसप्तम्यामयोध्यायां समर्थिता ॥३॥
प्रतिक्रमणसूत्रस्य साधवो यस्य साध्वियम्।
सभ्यैरभ्यस्यतां वृत्तिरर्थनिर्णयकौमुदी ॥४॥
ग्रन्थाग्रं कृतमस्याः प्रत्यक्षरं गणनया स्वयं कविना।
साष्टाचत्वारिंशत् पञ्चशतीश्लोकमानेन ॥५॥

टीका[1], अनुयोगचतुष्टयव्याख्या[2] प्रव्रज्याभिधानटीका[3], अजितशान्तिस्तव बोधदीपिका[4] नाम्नी टीका, भयहरस्तोत्र (नमिउण) अभिप्रायचन्द्रिका[5] टीका, उपसर्गहरस्तोत्र अर्थकल्पलता[6] टीका, पादलिप्तसूरिकृतवीरस्तोत्र टीका, गुणानुरागकुलक[8], कालचक्रकुलक[9], परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका[10],

---

१. देखें, जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास और जैनस्तोत्र संदोह भा० २.

२. प्र० । ३. देखें, हीरालाल कापड़िया की चतुर्विंशतिजिनानंद स्तुति, प्रस्ता०, पृ० ४७ ।

४. र० सं० १३६५ पौष० दाशरथिपुर ग्र० ७४०. प्र० ।

५. आ०—श्रीपार्श्वं स्वामिनं स्मृत्वा, मानतुङ्गगुरोः कृतौ ।
वृत्तिं भयहरस्तोत्रे, सूत्रयामि समासतः ॥१॥

अं०—भयहरस्तवने विवृतिर्मया व्यरचि किञ्चन मन्दधियाप्यसौ ।
अनुचितं यदवोचमिह क्वचित्तदनुगृह्य विशोध्यमृषीश्वरैः॥२॥
वृत्तिरेषा विशेषोक्ति रोचिष्णुश्चारुचेतनैः ।
च्यवतां चिररात्राय, नाम्नाभिप्रायचन्द्रिका ॥२॥

संवद्विक्रमभूपतेः शरऋतूर्दाचिमृगाङ्कमिते (१३६५)
पौषस्योज्ज्वलपक्षभाजि रविणा युक्तो नवम्यां तिथौ ।
शिष्यः श्रीजिनसिंहसूरिसुगुरोष्टीकामकार्षीदिमां,
श्रीसाकेतपुरे जिनप्रभ इति ख्यातो मुनीनां प्रभुः ॥३॥
प्रत्यक्षरं निरूप्यास्य ग्रन्थमानं विनिश्चितम् ।
अनुष्टुबच्छंदसा त्रीणि शतानि परिभाव्यताम् ॥४॥

६. सं० १३६४ पौष कृष्णा ९ साकेतपुर ग्र० २७१, प्र० ।

७. सं० १३८० चतुर्विंशतिप्रबन्ध अनुवाद के परिशिष्ट में प्र० ।

८. गा० ३५, लींबड़ी भंडार ।

९. इसी संग्रह में ।

१०. ,, ,,

परमात्मबतीसी[1], उपदेशकुलक★ ।

वैधानिक—विधिमार्गप्रपा[2], देवपूजाविधि[3], पूजाविधि★, प्रायश्चित्त-

---

१. नाहटा-संग्रह, ★ जेसलमेर भंडागारीय ग्रं० सूची के आधार से ।

२. अं० प्र०—

बहुविहसामायरिओ, दठ्ठु मामोहंमि तु सीस त्ति
एसा सामायारी, लिहिया नियगच्छपडिवद्धा ॥७॥

आगमआयरणाहिं, जं किंचि विरुद्धमित्थ मे लिहियं ।
तं सोहिंतु सुयधरा अमच्छरा मह किवं काउं ॥८॥

जिणदत्तसूरिसंलाणतिलयजिणसिंहसूरिसीसेण ।
गुत्तिरसकिरिय (१३६३) ढाणप्पमिए विक्कमनिवइवरिसे ॥९॥

विजयदसमीइ एसा, सिरिजिणपहसूरिणा समायारी ।
सपरोवयारहेउं समाणिया कोसलानयरे ॥१०॥

सिरिजणवल्लह-जिणदत्तसूरि-जिणचंद- जिणवइमुणिंदा ।
सुगुरुजिणेसर-जिणसिंहसूरिणो मह पसीयंतु ॥११॥

वाइयसयलसुएणं, वाणायरिएण अम्ह सीसेण ।
उदयाकरेण गणिणा, पढमायरिसे कया एसा ॥१२॥

जीए पसाया ओं नरा, 'सुकई सरसत्थवल्लहा' हुंति ।
सा सरसई य पउमावई य मे दिंतु सुयरिद्धि ॥१३॥

ससिसूरपई वा जाव भुवणभवणोदरं पभासेंति ।
एसा सामायारी, सफलिज्जउ ताव सूरीहिं ॥१४॥

पच्चक्खरगणणाए पाएण कयं पमाणमेईए ।
चउहत्तरिं समहिया पणतीससया सिलोयाणं ॥१५॥

विहिमग्गपवानामं सामायारी इमा चिरं जयइ ।
पल्हायंती हियंयं सिद्धिपुरीपंथियजणाणं ॥१६॥

(प्रकाशित)

३. अं० प्र०—

देवाहिदेवपूजाविही इमो भवियणुग्गहट्ठाए ।
उपदर्शितो श्रीजिनप्रभसूरिभिराम्नायतः सुगुरोः ॥

ग्र० २६९, विधिमार्गप्रपा में (प्रकाशित)

विशुद्धि[1], व्यवस्थापत्र[2]।

व्याकरण—कातन्त्रविभ्रमटीका,[3] रुचादिगणवृत्तिः[4]।

★ पूजाविधि के अन्तर्गत ही 'वन्दनस्थान विवरण, प्रत्याख्यान-विवरण, शान्तिपर्वविधि, चौराशी आशातना' है, स्वतंत्र नहीं।

'गृहप्रतिमायास्तु संक्षेपतः स्नपनविधिरयम्—"

"वंदणगणविवरणं समत्तं।"

'संपयं पच्चक्खाणठाइं भणंति × × × × पच्चक्खाणठाण-विवरणं सम्मत्तं।"

जिणपूजाविहिमाइ सुबहुविट्ठाणेसु जाण गन्थग्गं।

"पच्चक्खरगणणाए बाहत्तरिसंजुया छ सया।"

"ग्रन्थाग्रं० ६७२ कृतिः श्रीजिनप्रभसूरीणां।"

जैन साहित्य मंदिर पालीताणा नं० ५९९ प० १४।

१. "सर्वविरतिप्रायश्चित्तं" इति सर्वविरतिसंक्षेपोऽलेखि श्रीजिन-प्रभसूरिभिः।—जैन साहित्य मंदिर पालीताणा—नं० ४९०,

२. "ॐ गुरुभ्यो नमस्कृत्य श्रीजिनप्रभसूरिभिर्व्यपस्थापत्रं लिख्यते-" व्यवस्था ३२.

—जैन साहित्य मंदिर पालीताणा, नं० ५९९.

३. आ०—प्रणम्य परमं ज्योतिं, बालानां हितकाम्यया।
वक्ष्ये संक्षेपतः स्पष्टां, टीकां कातन्त्रविभ्रमे॥

अं. प्रः—पक्षेषुशक्तिशशभृन्मित (१३५२) विक्रमाब्दे,
धात्र्यङ्किते हरतिथौ पुरि योगिनीनाम्।
कातन्त्रविभ्रम इह व्यतनिष्ट टीका-
मप्रौढधीरपि जिनप्रभसूरिरेताम्॥१॥
प्रत्यक्षरं निरूप्यास्य ग्रन्थमानं विनिश्चितम्।
एकषष्ठ्या समधिके, शतद्वयमनुष्टुभाम्॥ २॥

४. अं. प्र०—दुर्गवृत्तिगरुचादिगणस्य, श्रीजिनप्रभमुनिप्रभुरेताम्।
पञ्जिकामुपनीय विनेते वृत्तिमल्पप्रतिबोधनिमित्तम्॥१॥

कोष—हैमव्याकरणानेकार्थकोषटीका[१], शेषसंग्रह टीका*

काव्य—श्रेणिकचरित्र[२] (द्वयाश्रयकाव्य), भवियकुटुंबचरियं,[३] विषमषट्पदकाव्यटीका,[४] गायत्रीविवरण[५]।

अलंकार—विदग्धमुखमण्डन[६]।

सैकोनत्रिंशदनुष्टुभां, शतद्वितयमादिगणवृत्तौ ।
सप्ततियुक्शतयुगलां, समकलितरुचादिगणवृत्तौ ॥२॥
रसयुगरविरस (१२४६) मितशकवर्षे,
भाद्रपदाशितचतुर्दशीदिवसे ।
भाडंग द्रंग इयं समर्पिता गणयुगलवृत्तिः ॥३॥

१. पुरातत्त्व, वर्ष २, पृ० ४२४ में उल्लेख, प्रति पाटणभंडार ।

*. मोतीचंद खजांची संग्रह बीकानेर ।

२. र० सं० १३५६ सर्ग ७ प्रकाशित ।

३. प्रति वाडी पार्श्वनाथ भंडार, नं० ७३०७.

४. "इति श्रीजिनेश्वरस्तुतिरूपा श्रीजिनप्रभसूरीकृत पारसीबद्ध-भाषाकाव्यावचूरीः"

इति षट्पदकाव्यस्य, विवृतिमतिशालिभिः ।
विदधे बुधबोधाय, श्रीजिनप्रभसूरिभिः ॥

५. अं०प्र०—चक्रे श्रीशुभतिलकोपाध्यायैः स्वमतिशिल्पकल्पान् ।
व्याख्यानं गायत्र्याः क्रीडामात्रोपयोगमिदम् ॥
इति श्रीजिनप्रभसूरि विरचितं गायत्री विवरणं समाप्तं ।
—(प्रतिलिपि नाहटासंग्रह)

६. आ०—ध्यात्वा श्रीवाग्देवीं, विदग्धमुखमण्डनस्य संक्षेपात् ।
विषमपदव्याख्यानं, क्रियते स्वपरोपकृतिकृते ॥१॥

तीर्थकल्प—विविधतीर्थकल्प[1]।

विविधतीर्थकल्प के अन्तर्गत निम्नकल्प हैं—

शत्रुञ्जयतीर्थकल्प,[3] रैवतकगिरिकल्पसंक्षेप, उज्जयन्तमहातीर्थकल्प, रैवतकगिरिकल्प, पार्श्वनाथकल्प, स्तम्भनककल्प, अहिच्छत्रानगरीकल्प,

---

अं०प्र०—श्रीधर्मदासकविना सुगतां हि सेवा-
हेवाकिना विरचिते गहनेऽत्र शास्त्रे ।
व्याख्यां विधा····सुगमासुकृतं यदापं,
तेनास्तु धीर्मम सदैव परोपकारे ॥१॥
श्रीविक्रमभूभर्त्तुर्वसुरसशक्तीन्दुसम्मिते (१३६८) वर्षे ।
नभसि सितद्वादश्यां, नृपभटपुरे नामनि विहरन् ॥२॥

१. अं० प्र०—आदित: सर्वकल्पेषु ग्रन्थमानमजायत ।
अनुष्टुभां पञ्चत्रिंशच्छती षष्ट्यधिका स्थिता ॥ १ ॥
कार्थी सजेत् ? किं प्रतिषेधवाचि पदं ? ब्रवीति प्रथमोपसर्ग: ।
कीदृग् निशा ? प्राणभृतां प्रिय: क: ? को ग्रन्थमेतं रचयांचकार ?॥२॥
—जिनप्रभसूरय: ।

नन्दाऽनेकपशक्तिशीतगुमिते श्रीविक्रमोर्वीपते-
र्वर्षे भाद्रपदस्य मास्यवरजे सौम्ये दशम्यां तिथौ ।
श्रीहम्मीरमहम्मदे प्रतपति क्ष्मामण्डलाखण्डले,
ग्रन्थोऽयं परिपूर्णतामभजत श्रीयोगिनीपत्तने ॥३॥
तीर्थानां तीर्थभक्तानां, कीर्त्तनेन पवित्रित: ।
कल्पप्रदीपनामायं, ग्रन्थो विजयतां चिरम् ॥४॥
(प्रकाशित)

३. अं० प्र०—

प्रारम्भेप्यस्य राजाधिराज: संघे प्रसन्नवान् ।
अतो राजप्रसादाख्य:, कल्पोऽयं जयताच्चिरम् ॥१२२॥
श्रीविक्रमाब्दे बाणाष्टविश्वेदेव (१३८५) मिते शितौ ।
सप्तम्यां तपस: काव्यदिवसेऽयं समर्पित: ॥१२३॥

अर्बुदाद्रिकल्प, मथुरापुरीकल्प, अश्वानबोधतीर्थकल्प, वैभारगिरिकल्प,[1] कौशाम्बीनगरीकल्प, अयोध्यानगरीकल्प, अपापापुरीकल्प, कलिकुण्डकुर्कुटेश्वरकल्प, हस्तिनापुरकल्प, सत्यपुरतीर्थकल्प, अष्टापदमहातीर्थकल्प, मिथिलाकल्प, रत्नवाहपुरकल्प, अपापाबृहत्कल्प[2] कन्यानयनीयमहावीर-प्रतिमाकल्प, प्रतिष्ठानपत्तनकल्प, नन्दीश्वरद्वीपकल्प, काम्पिल्यपुरतीर्थकल्प, अणहिलपुरस्थित अरिष्टनेमिकल्प, शंखपुरपार्श्वकल्प, नासिक्यपुरकल्प, हरिकंखीनगरस्थितपार्श्वनाथकल्प कपर्द्दियक्षकल्प, शुद्धदन्तीस्थितपार्श्व-नाथकल्प, अवन्तिदेशस्थ अभिनन्दनदेवकल्प, प्रतिष्ठानपुरकल्प, प्रतिष्ठान-पुराधिपतिसातवाहननृपचरित्र, चम्पापुरीकल्प, पाटलिपुत्रनगरकल्प, श्रावस्तीनगरीकल्प, वाराणसीनगरीकल्प, महावीरगणधरकल्प,[3] कोकाव-सतिपार्श्वनाथकल्प, कोटिशिलातीर्थकल्प, वस्तुपाल-तेजःपालमन्त्रिकल्प, ढींपुरीतीर्थकल्प, ढींपुरीस्तव[4], चतुरशीतिमहातीर्थनामङ्ग्रहकल्प, समवसरण-

---

१. अं० प्र०—वर्षे सिद्धा सरस्वद्रसशिखिकुमिते, (१३६४) वैक्रमे तीर्थमौलेः
सेवाहेवाकिनां श्रीर्वितरसुरतरो देवता सेवितस्य ।
वैभारक्षोणीभर्तुर्गुणगणभणनव्यापृता भक्तियुक्तैः,
सूक्तिर्जैनप्रभीयं मृदुविशदयदाऽपीयतां धीरधीभिः ॥२७॥

२. अं० प्र०—इय पावापुरीकप्पो, दीवमहुप्पत्तिभणणरमणिज्जो ।
जिणपट्टसूरीहिंकओ, ठिएहिं सिरिदेवगिरिनयरे ॥१॥
तेरहसत्तासीए, विक्कमवरिसम्मि भद्दवयबहुले ।
पूसक्कवारसीए, समत्थिओ एस सत्थि करो ॥२॥

३. अं० प्र०—जिणपट्टसूरिहि कओ, गहवसुसिहिकु (१३८९) मिअविक्कम-
समासु ।
चिट्ठसियपंचमिवुहे, गणहरकप्पो चिरं जयइ ॥२॥

४. अं० प्र०—शशधरहृषीकाक्षिक्षोणीमिते (१२५१) शकवत्सरे,
गृहमणिमहे संघान्वीता उपेत्य पुरोमिमां ।
मुदितमनसस्तीर्थस्यास्य प्रभावमहोदधे-
रितिविरचयां चक्रुः स्तोत्रं जिनप्रभसूरयः ॥९॥

रचनाकल्प, कुडुंगेश्वरनाभेयदेवकल्प, व्याघ्रीकल्प, अष्टापदगिरिकल्प, हस्तिनापुरतीर्थस्तव[१], कुल्यपाकस्थ ऋषभदेवस्तुतिः, आमरकुण्डपद्मावती-देवीकल्प, चतुर्विंशतिजिनकल्याणककल्प, तीर्थंकरातिशयविचार, पञ्च-कल्याणकस्तव, कोल्लपाकमाणिक्यदेवतीर्थकल्प, श्रीपुरः अन्तरिक्षपार्श्वनाथ-कल्प, स्तम्भनककल्पशिलोंछ, फलवर्द्धिपार्श्वनाथकल्प, अम्बिकादेवीकल्प, पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारकल्प ।

मन्त्र-साहित्य—सूरिमंत्रबृहत्कल्पविवरण[२], ह्रींकारकल्प[३], रहस्यकल्पद्रुम[४], शक्रस्तवाम्नाय[५] अलकारकल्पविधि[६] ।

---

१. अं० प्र०—

इत्थं पृषत्कविषयकिमिते शकाब्दे, वैशाखमासशितिपक्षगषष्ठतिथ्याम् ।
यात्रोत्सवौपनतसंघयुतो यतीन्द्रः, स्तोत्रं व्यधाद् गजपुरस्य जिनप्रभोस्य ॥३॥

२. आ०—अर्हं वीजं नमस्कृत्य, सम्प्रदायलवो मया ।
कल्पादाप्तोपदेशाच्च सूरिमन्त्रस्य लिख्यते ॥१॥

अं०—इति श्रीसूरिमन्त्रस्याम्नायलेशं विदृब्धवान् ।
दृष्ट्वा पुराणकल्पेभ्यः श्रीजिनप्रभसूरिराट् ॥१॥
(श्रीजिनप्रभसूरिसमुद्धृतः श्रीसूरिविद्याकल्पः)

अं०—"श्रीजिनप्रभसूरिसम्प्रदायागतः ।" (प्रकाशित)

३. अं० प्र०—इति श्रीमायाबीजकल्पः श्रीखरतरगच्छाधीशभट्टारक-श्रीजिनप्रभसूरिविरचितः समाप्तः । (प्रकाशित)

४. "भट्टारकश्रीजिनप्रभसूरिकृतरहस्यकल्पद्रुममध्यात् प्रयोगा दृष्ट-(प्रत्यया लिख्यन्ते ।" ग्रन्थ प्राप्त नहीं है । कदाचित् प्रयोगप्राप्त हैं । प्रतिलिपि नाहटा-संग्रह ।)

५. आचार्य शाखा भंडार, बीकानेर ।

६. आचार्य हरिसागरसूरि, लोहावट ।

खण्डनात्मक—तपोटमतकुट्टनशतम्[1]।

स्तोत्र

सिद्धान्तागमस्तव के अवचूरिकार ने लिखा है कि 'यमकश्लेपचित्रच्छान्दोविशेषादिनवनवभंङ्गीसुभगा-सप्तशती(७००)मिताः स्तवाः' आपके रचित ७०० स्तोत्र हैं। किन्तु दुःख है कि वर्तमान में निम्नोक्त स्तोत्र प्राप्त हो सके हैं। संभव है विशेष शोध करने पर कुछ और प्राप्त हो जायँ।

क्रमाङ्क	नाम	आदिपद	पद्यसंख्या
१	मङ्गलाष्टक	जितभावद्विषां सर्व	८
२	पञ्चनमस्कृतिस्तवः	प्रतिष्ठितं तमः पारे	३३
३	पञ्चपरमेष्ठिस्तवः	स्वः श्रियं श्रीमदर्हन्तः	५
४	,,	परमेष्ठिनः सुरतरून्	७
५	अर्हदादिस्तोत्र	मानेनोर्वी व्यहृतपरितो	८
६	प्राभातिक नामावली	सौभाग्यभाजनमभंगुर-	
७	वीतरागस्तवः	जयन्ति पादा जिननायकस्य	१६
८	पञ्चकल्याणकस्तवः	निलिम्पलोकायितंभूतलं	८
९	द्वित्रिपञ्चकल्याणकस्तवः	पद्मप्रभप्रभोर्जन्म	१५
१०	चतुर्विंशतिजिनस्तवः	कनककान्तिधनुःशत	२९
११	,,	ऋषभनम्रसुरासुरशेखरं	२९
१२	,,	आनम्रनाकिपतिरत्न	२५
१३	,,	पात्वादिदेवो दशकल्पवृक्षाः	२९

१. आ०—निर्लोहितशठकमठं, त्रैलोक्यप्रथितचारुकारुण्यम्।
प्रणिपत्य श्रीपार्श्वं, तपोटमतकुट्टनं वक्ष्ये ॥
अं० प्र०—इति जिनप्रभसूरिकृतं तपोटमतकुट्टनशास्त्रममत्सरः।
भवति सूक्ष्मधिया परिभावयन् बुधजनो त्रिधिपक्षविचक्षणः ॥१०२॥
(प्रतिलिपि नाहटा-संग्रह)

१४	चतुर्विंशतिजिनस्तवः	यं सततमक्षमालोपशोभितं	३०
१५	,,	आनन्दसुन्दरपुरन्दर	२९
१६	,,	ऋषभदेवमनन्तमहोदयं	३०
१७	,,	ऋषभनाथमनाथ	२९
१८	,,	तत्त्वानि तत्त्वानि भृतेषु सिद्धम्	२८
१९	,,	प्रणम्यादिजिनं प्राणी	२८
२०	,,	नाभेयं शोचि निर्ममो(आगरा भंडार)	२५
२१	,,	जिनर्षभप्रीणितभव्यसार्थ	८
२२	,,	नत सुरेन्द्रजिनेन्द्रयुगादिमा	९
२३	पुण्डरीकगिरिमण्डण ऋषभस्तवः [कातन्त्रसन्धिसूत्रगर्भित]	सिद्धो वर्णसमाम्नायः	२३
२४	युगादिदेवस्तवः [अष्टभाषामय]	निरवधिरुचिरज्ञानं	४०
२५	,,	मेरौ दुग्धपयोधि वा	३३
२६	,,	अस्तु श्रीनाभिभूर्देवो	११
२७	,,	अल्लाल्लाहि	११
२८	ऋषभदेवाज्ञास्तवः	नयगमभंगपहाणा	११
२९	अजितजिनस्तवः	विश्वेश्वरं मथितमन्मथभूपमानं	२१
३०	चन्द्रप्रभजिनस्तवः [षड्भाषागर्भित]	नमो महसेननरेन्द्रतनूज	१३
३१	चन्द्रप्रभचरित्रम्	चंदप्पह चंदप्पह	२२
३२	चन्द्रप्रभस्तवः	दैवैर्यः स्तुष्टुवे तुष्टैः	४
३३	शान्तिनाथाष्टकम् [पारसीभाषा]	अजिकुहकाफु जु	९
३४	शान्तिजिनस्तवः	शृङ्गारभासुरसुरासुर (आगराभंडार)	२४
३५	,,	शान्तिनाथो भगवान्	२०

३६	अरजिनस्तवः	जय शरदशकलदशहयवदन	१४
३७	मुनिसुव्रतजिनस्तवः	निर्माय निर्माय गुणार्द्धि	३०
३८	नेमिजिनस्तवः[क्रियागुप्तम्]	श्रीहरिकुलहीराकर	२०
३९	पार्श्वजिनस्तवः	कामे वामेयशक्तिः	१७
४०	,,	श्रीपार्श्वः श्रेयसे भूयात्	४४
४१	,, [फलवर्द्धिमण्डन]	अधियदुपनमन्तो	१२
४२	,, [,,]	जयामलश्रीफलवर्द्धिपार्श्व	२१
४३	,, [जीरावलीमंडन]	जीरिकापुरपतिं सदैवतं	१५
४४	,, [अष्टप्रातिहार्यमय]	त्वां विनुत्य महिमश्रियामहं	१०
४५	,,	श्रीपार्श्वपादानतनागराज	८
४६	,,	पार्श्वप्रभुंशश्वदकोपमानं	८
४७	,,	पार्श्वनाथमनघं	९
४८	,,	श्रीपार्श्वपरमात्मानं	८
४९	,,	श्रीपार्श्वं भावतः स्तौमि	९
५०	,, [षड्ऋतुवर्णनमय]	असमसरणीय	७
५१	, [नवग्रहगर्भित]	दोसावहार दक्खो	१०
५२	, [फलवर्द्धिमण्डन]	श्रीफलवर्द्धिपार्श्व	९
५३	,, [,]	सयलाहिवाहिजलहर	११
५४	,, [उपसर्गहरस्तोत्रपादपूर्ति]	पणमिय सुरनरपूइया	२२
५५	वीरजिनस्तवः[चित्रकाव्य]	चित्रैः स्तोष्ये जिनं वीरं	२७
५६	,, [विविधछन्दनामगर्भित]	कंसारिक्रमनिर्यदा	२५
५७	,, [पञ्चवर्गपरिहारमय]	स्वः श्रेयस सरसीरुह	२६
५८	,, [लक्षणप्रयोगमय]	निस्तीर्णविस्तीर्णभवार्णवं	१७
५९	,,	असमशमनिवासं	२५

६०	वीरजिनस्तवः	विश्वश्रीधुरच्छिदे	२१
६१	,,	श्रीवर्धमानः सुखवृद्धयेऽस्तु	९
६२	वीरनिर्वाणकल्याणकस्तवः	श्रीसिद्धार्थनरेन्द्रवंश	१९
६३	वीरजिनस्तवः [पञ्चकल्याणकमय]	पराक्रमेणेव पराजितोयं	३६
६४	,,	श्रीवर्द्धमानपरिपूरित	१३
६५	तीर्थमालास्तवः	चउवीसंपि जिणिंदे	१२
६६	तीर्थयात्रास्तवः	सिरिसत्तुंजयतित्थे	९
६७	मथुरायात्रास्तोत्रम्	सुराचलश्रीजिति	१०
६८	मथुरास्तूपस्तुतिः	श्रीदेवनिर्मितस्तूप	४
६९	स्तुतित्रोटकः	नियजंमु सफलु	५
७०	,,	ते धन्नपुन्नसुकपत्यनरा	४
७१	विज्ञप्तिः	सिरिवीयराय देवाहिदेव	३५
७२	गौतमस्तवः	श्रीमन्तं मगधेषु	२१
७३	,,	जम्मपवित्तियसिरिमगहदेस	२५
७४	गौतमाष्टकम्	ॐ नमस्त्रिजगन्नेतुः	९
७५	सुधर्मगणधरस्तवः [विविधछंदमय]	आगमत्रिपथगा हिमवन्तं	२१
७६	जिनसिंहसूरिस्तवः	प्रभुः प्रदद्यान्मुनिप	१३
७७	सिद्धान्तागमस्तवः	नत्वा गुरुभ्यः श्रुतदेवतायै	४५
७८	४५ आगमस्तवः	सिरिवीरजिणं	११
७९	शारदास्तवः	वाग्देवते भक्तिमतां	१३
८०	सरस्वत्यष्टकम्	ॐ नमस्त्रिदशवन्दितक्रमे	९
८१	पद्मावतीचतुष्पदिका	जिणसासणु अवधावि	३७
८२	वर्धमानविद्यास्तवः	आसि किलठुत्तरसय	१७
८३	परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका	धर्माधर्मान्तरं मत्वा	३२

८४	हीयाली	अकूलु अमूलुअ	४
८५	,, [अपूर्ण]	चारि चलण चउ	

सारस्वतदीपक[1]

आचार्य जिनप्रभ का साहित्य

जैसा कि कहा जा चुका है कि आचार्य जिनप्रभ सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने अनेक विषयों में साहित्य-रचना की है। वर्गीकरके उनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है :

काव्य

आचार्य काव्य व काव्यशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनका 'श्रेणिक चरित' नामक एक काव्यग्रन्थ मिलता है। यह 'द्वयाश्रयकाव्य' है। इस ग्रन्थ की रचना आचार्य ने सं० १३५६ वि० में की थी। कदाचित् इस ग्रन्थ की रचना में उन्हें हेमचन्द्राचार्य के 'सिद्धहेमशब्दानुशान' के आश्रित 'द्वयाश्रयकाव्य' से प्रेरणा मिली थी। हेमचन्द्र ने अपने शब्दानुशासन के सूत्रों का सफल प्रयोग करते हुए गुजरात के चालुक्यवंश का इतिहास अपने

क्रमाङ्क, १५,१६,१७,२०,३४,३७,४७ और ६० प्राप्त करने में असमर्थ रहा हूँ। —लेखक

१. सौन्दर्योदारकौन्दद्युतिधरवपुपं कौण्डलश्रीसनाथा-
मंहः मन्दोहमोहावतमसतरणिं हस्तविन्यस्तमुद्राम्।
त्रैलोक्यानेककामप्रवितरणमरुद्वीरुधामैन्द्रचाप-
व्यापिभ्रूपल्लवान्ताममतिरपि नमस्कृत्य देवीं स्तवीमि ॥१॥

(सारस्वतदीपक प्रथम पद्य)

आकाव्य मां सात सारस्वतमन्त्रों नो गुप्तरीते समावेश करवामां आव्योछे। आ स्तोत्र नी वृत्तिमां एक स्थले श्रीजिनप्रभसूरिनु नाम नजरे पडेछे। ए उपर थी आ जैन मुनीश्वरनी कृति होवानुं भासे छे। भक्तामर-स्तोत्रनी पादपूर्तिरूप काव्यसंग्रह द्वितीय विभाग प्रस्तावना, पृ० ३२।

द्व्याश्रयकाव्य में प्रस्तुत किया है। यहाँ एक उदाहरण असङ्गत न होगा। इसमें काले अक्षरों में शब्द व्याकरण के प्रयोग हैं। भीमदेव सोलंकी (चालुक्य) द्वारा पराजित सिन्ध के हम्मुक के शौर्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है :

अदमि न सुरैर्नो वा दैत्यै**रदामि** य आहवे।
स्म **दमयति** तं **दामंदामं दमंदमभो**जसा ॥
चुलुककुलभूः **कामंकामं** ह्य**कामचदामय**।
त्तमथ निगडं **प्रामंप्रामं** य **आमि** न केनचित् ॥

नाचामि नाकामि च केनचिद्या तां सोथ चौलुक्यकुलावतंसः।
आचाममाचाममभिभाश्वसैन्या **न्याचामयत्** सेक्षुयवां तदुर्वीम् ॥

श्रेणिकचरित भी इसी श्रेणी का काव्य है। यह काव्यशास्त्र के नियमों के अनुसार महाकाव्य की श्रेणी का काव्य है; परन्तु इसको 'एकार्थ-काव्य' कहा जाय तो अधिक संगत होगा।

प्रथम सर्ग में कातन्त्रव्याकरण के सन्धिपाद को उपस्थित किया गया है। पाँचों सन्धियों के पृथक्-पृथक् रूप दिखाये गए हैं। काव्य का प्रारम्भ इस प्रकार होता है :—

सिद्धो वर्णसमाम्नायः सर्वस्योपचिकीर्षता।
येनादौ जगदे ब्राह्म्यै स नन्द्यान्नाभिनन्दनः ॥
देशोऽस्ति मगधाभिख्यो यत्र मञ्जुस्वरा नराः।
समानश्रीसवर्णास्त्री युक्ता **ह्रस्वे**तराशयाः ॥

सब का उपकार करने की इच्छावाले जिस प्रभु ने ब्राह्मी के वर्णों की मर्यादा सिद्ध की ऐसे नाभि राजा के पुत्र भगवान् ऋषभदेव ज्ञान-समृद्धि के साथ आनन्द प्रदान करें। मगध नाम का एक देश है, जिसमें सुन्दर स्वरवाले, समान लक्ष्मीवाले, समान वर्ण की स्त्रियों से युक्त प्रबल पुरुष रहते थे।

इन श्लोकों में कातन्त्रव्याकरण के प्रथम पाँच सूत्रों (१. सिद्धो वर्णसमाम्नायः, २ तत्र चतुर्दशादौ स्वराः, ३. दश समानाः, ४. तेषां

द्वावन्योन्यस्य सवर्णौ, ५. पूर्वो ह्रस्वः) के भावों का प्रयोग किया गया है।

दूसरे सर्ग में व्याकरण के लिङ्ग-पाद का प्रयोग करके विभिन्न सिद्ध-रूप दिये गए हैं। उदाहरण के लिए दो श्लोक देखिये :

स्त्रीणां गुणानां भूमीनामपरित्यागलोलुपः ।
असौ बहूनां विद्यानां वधूनां चाभवद्वरः ।।
वा भर्तृणामतित्रीणां जेता गाम्भीर्यसम्पदा ।
त्रयाणां जगतां शस्तैश्चरित्रैश्चित्रमादधे ।।

यह सुकुमर स्त्री, गुण व भूमि का त्याग करने का इच्छुक था और इस कारण कई विद्याओं तथा वधुओं द्वारा वरणीय हो गया था। अपने गाम्भीर्य की सम्पत्ति से चार समुद्रों को जीतनेवाला वह कुमार अपने श्रेष्ठ चरित्र से जगत् को चकित कर देता था।

इन श्लोकों में स्त्री, भूमि, वधू, विद्या, गुण, बहु, भर्तृ, त्रि आदि शब्दों के षष्ठी विभक्ति के रूप आये हैं।

तीसरे सर्ग में युष्मदादि सर्वनामों के रूप आये हैं। उदाहरणार्थः देखिये :

मदावाभ्यामस्मदप्येतदत्युज्ज्वलमितीश ते ।
कम्बु करिरदौ चन्द्रपादाश्च नुवते यशः ।।
युष्मभ्यं प्रीणतास्मभ्यं श्लाघ्यते भूर्यथा यथा ।
प्रिययुष्मभ्यमस्मभ्यं मुदं दध्रे तथा तथा ।।

हे स्वामिन् ! मुझसे, हम दो से और हमारे से जो अति उज्ज्वल हैं ऐसे शंख, दो हाथी-दाँत और चन्द्रकिरणें आपके यश की स्तुति करते हैं। भूमि प्रसन्न होकर जैसे जैसे आपसे हमारी श्लाघा करती है वैसे वैसे भूमि, जिसके आप प्रिय हो, हमारे से हर्ष धारण करती है !

इसमें मत्, आत्राभ्यां, अस्मत् शब्द के पञ्चमी विभक्ति के तथा युष्मभ्यं, अस्मभ्यं आदि चतुर्थी के रूप आये हैं।

चतुर्थ सर्ग में कारक-प्रकरण को लेकर विभक्तियों के विभिन्न प्रयोग दिखाये गए हैं। उदाहरणार्थ :

स्मृताप्यग्नये स्वाहा वषट् प्राचीनबर्हिषे।
स्वधा पितृभ्य इत्येते मन्त्रास्त्राणाय न क्षमाः॥
स्यात् पुंसां श्रेयसे दारु यूपायेव जिनेन्द्र यत्।
तस्मै सचेताः को नाम त्वत्तीर्थाय न मन्यते॥

अग्नये स्वाहा, प्राचीनबर्हिषे (इन्द्र) वषट्, पितृभ्यः स्वधा आदि मंत्र याद तो किये थे परन्तु उनकी रक्षा करने में समर्थ था नहीं। हे जिनेन्द्र! यज्ञ के स्तम्भ की काष्ठ जिस तरह पुरुषों के कल्याण के लिए है इस बात को उसे आपके तीर्थ से सचेत प्राण नहीं मानता।

प्रथम श्लोक में स्वाहा, स्वधा, वषट् के योग में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग करके 'नमः स्वस्तिस्वाहास्वधावषड्योगे चतुर्थी' इस व्याकरण सूत्र की पुष्टि की गई है। इसी तरह दूसरे में यूपाय, तीर्थाय, श्रेयसे आदि रूपों का प्रयोग 'तादर्थ्ये चतुर्थी' व्याकरण सूत्र के अनुसार हुआ है।

पञ्चम सर्ग में संस्कृत व्याकरण के तद्धित-प्रकरण के सिद्धरूप दिये गए हैं। प्रारम्भ में सर्गार्ध में समासों के सिद्धरूप आये हैं और अन्त में तद्धित के।

षष्ठ सर्ग में आख्यात (धातु) प्रक्रिया के प्रथमपाद के रूप दिखाये गए हैं। इसी तरह सप्तम सर्ग में धातु प्रक्रिया के दूसरे पाद के रूप दिखाये गए हैं। शेष सर्गों में आख्यात प्रक्रिया के अवशिष्ट ६ पादों तथा कृत प्रकरण के ६ पादों के रूपों को उपस्थित किया गया है।

काव्य का विषय एक उद्देश्य को लेकर चलता है। इसमें महाकाव्य के सभी गुण विद्यमान हैं; परन्तु जातीय पृष्ठभूमि के अभाव के कारण

एकार्थ-काव्य कहना अधिक संगत है। वर्णन शैली भट्टिकाव्य के सदृश प्रौढ है।

काव्य का नायक महाराजा श्रेणिक धार्मिक व्यक्ति है। उसको जैन-शासन में प्रवृत्त होता हुआ दिखाया जाना ही काव्य का उद्देश्य है। सर्वत्र शान्तरस का उदात्त शैली में वर्णन है। वर्ण्य-विषय और वर्णन-कौशल दोनों ही हृदय से संवेदना जगाने में समर्थ हैं। काव्य के प्रथम भाग को देखने से प्रकट है कि कवि ने मधुर शब्दावली का प्रयोग करके काव्य को उत्कृष्ट बनाने का प्रयास किया है, जिसमें उसे सफलता भी मिली हैं। इतना ही नहीं चरित्र के उज्ज्वल पक्ष को उपस्थित करके भाव-सौन्दर्य लाने की चेष्टा भी सफल हुई है। व्याकरण पक्ष का प्रस्तुतीकरण भी अस्वाभाविक नहीं हो पाया है।

जैन-शैली में लिखा हुआ 'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्य अनुपम है और अनेकों महाकाव्य हैं किन्तु 'श्रेणिकचरित' की स्वाभाविक, कोमल एवं उत्कृष्ट शैली अपने ढंग की अन्यतम है।

श्रेणिकचरित्र की प्रशस्ति में अपना संक्षिप्त परिचय देकर आचार्य जिनप्रभ ने एक चित्रकाव्य उपस्थित करते हुए निम्नोक्त श्लोक में श्री शान्तिनाथ प्रभु की स्तुति की है :

> तत्तत्कर्मपरा जितिक्षमगिरं भव्याम्बुजाहस्करं,
> वन्दे विष्ठपमाननीयमचिरासूनुं सतां काम्यदम्।
> सच्चारित्रनिधिं प्रभावमथितारिष्टं जिनं व्येनसं,
> संसारेभहरिं वरेण्यसमताराङ्गं विदम्भौजसम्॥

खेद है कि यह महाकाव्य आज तक पूर्णरूपेण प्रकाशित नहीं हुआ है। इसका प्रामाणिक संस्करण शीघ्र ही प्रकाशित हो, यह अत्यावश्यक है।

व्याकरण

श्रेणिकचरित में कातन्त्र-व्याकरण का आश्रय लेकर व्याकरण-पक्ष

के साथ चरित्र-पक्ष का जो अद्भुत समन्वय किया है उससे आचार्य जिन-प्रभ का व्याकरण और कवित्व दोनों पर असाधारण अधिकार प्रमाणित हो जाता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने कुछ व्याकरण से सम्बन्धित अन्य ग्रन्थों की रचना भी की है। ऐसे ग्रन्थों में कातन्त्र-व्याकरण पर 'कातन्त्र-विभ्रमटीका' और 'रुचादिगणटीका' है।

कातन्त्र-विभ्रमटीका की रचना आचार्य जिनप्रभ ने सं० १३५२ वि० में योगिनीपुर (दिल्ली) में की थी। इसकी रचना के लिए माथुर-वंशीय ठकुर खेतल कायस्थ ने आचार्य की अभ्यर्थना की थी। आचार्य जिनप्रभ के प्राप्य ग्रन्थों में निर्माण-संवत् का उल्लेख होने से यह सर्वप्रथम कृति मानी गई है। यह लघुकृति अभी तक अप्रकाशित है।

रुचादिगणवृत्ति, अपेक्षा-कृत छोटी है; पर है महत्त्वपूर्ण। इस टीका की रचना वि० सं० १३८१ में हुई है। ग्रन्थ-प्रारम्भ रुचादिगण के परि-चय से होता है। यह कृति भी अप्रकाशित है।

कोष

हेमचन्द्राचार्य-प्रणीत 'अनेकार्थसंग्रहकोष' और 'शेपसंग्रहनाम-माला' दोनों कोष-ग्रन्थों पर आ० जिनप्रभसूरि रचित टीकाएँ प्राप्त हैं। दोनों की मात्र एक-एक प्रतियाँ पाटण-भण्डार और खजांची-संग्रह बीकानेर में प्राप्त हैं। दोनों ही टीकाएँ अद्यावधि अप्रकाशित हैं।

अलङ्कार

जिनप्रभाचार्य लक्षणशास्त्र के भी सुविज्ञ-पण्डित थे। इनका एक ग्रन्थ अलङ्कारशास्त्र पर मिलता है। वह है 'विदग्धमुखमण्डन-टीका'। विदग्ध-मुखमण्डन पर जैन टीकाओं में यह सर्वप्रथम प्राचीन एवं प्रामाणिक टीका है। इस टीका की रचना वि० सं० १३६८ में नृपभटपुर में हुई है। इसकी प्राचीन दो प्रतियाँ मेरे निजी संग्रह में हैं। यह टीका भी अप्रकाशित है। इसका आद्यन्त इस प्रकार है—

आ०—ध्यात्वा श्रीवाग्देवीं विदग्धमुखमण्डनस्य संक्षेपात् ।
विषमपदव्याख्यानं क्रियते स्वपरोपकृतिकृते ।।१।।
अं०—श्रीधर्मदासकविना सुगताङ्घ्रिसेवा-
हेवाकिना विरचिते गहनेऽत्र शास्त्रे ।
व्याख्यां विधाय सुगमा सुकृतं यदाप,
तेनास्तु धीर्मम सदैव परोपकारे ।। १ ।।
श्रीविक्रमभूभर्तुर्वसुरसशक्तीन्दुसम्मिते वर्षे ।
नभसि सितद्वादश्यां नृपभटपुरे नामनि विहरन् ।। २ ।।
श्रीजिनप्रभसूरिणा विदग्धमुखमण्डनस्य टिप्पनकं कृतम् ।

तर्कशास्त्र

आचार्य जिनप्रभ बहुत बड़े तार्किक भी थे । यद्यपि उनके द्वारा किए गए किसी प्रसिद्ध वाद-विवाद का उल्लेख तो उनके जीवन की प्राप्य सामग्री में नहीं मिलता; किन्तु इतना स्पष्ट है कि मुहम्मद तुगलक जैसे कट्टर मुसलमान बादशाह पर चमत्कारों के अतिरिक्त किसी ऐसी घटना से ही वे प्रभाव डालने में समर्थ हुए होंगे । इस विषय को लेकर जिनप्रभ ने वि० सं० १३५६ में 'तपोटमतकुट्टनशतक' नामक ग्रन्थ की रचना की है । इसमें १०० अनुष्टुप् छन्दों में 'तपोटमत' का तर्क द्वारा खण्डन किया है । ग्रन्थ-प्रारम्भ आर्या छन्द से इस प्रकार होता है :

निर्लोठितशठकमठं त्रैलोक्यप्रथितचारुकारुण्यम् ।
प्रणिपत्य श्रीपार्श्वं तपोटमतकुट्टनं वक्ष्ये ।।

तपटोमत का परिचय देते हुए आचार्य ने कहा है कि जो तप करते हुए अटनशील रहते हैं उन्हें 'तपोट' कहते हैं । तपोटमत को वे मुद्गल व शाकिनी के मतों के तुल्य मानते हैं । जैसे,

बाह्यक्रियादर्शनेन मोहयन्तो जगज्जनम् ।
तपोभूता अटन्तीति तपोटा परिकीर्तिता ।।

तपोटमतवादी सिद्धियों का प्रदर्शन करके लोगों को भ्रान्त किया करते हैं। उसका परिणाम बड़ा संक्लिष्ट होता है। इसलिए उक्त दोनों मतों की तरह इसे भी त्याग देना चाहिए। आचार्यजी का कथन है कि अन्य दो मतों का उपक्रम सम्भव भी हो सकता है किन्तु तपोटों की चिकित्सा दुष्कर है। तपोट-मत प्राणियों के अनेक जन्म नष्ट कर देता है। तपोटमत वालों का ज्ञान–गरम दूध पीना, दर्शन–मुख की मुद्रा बनाना और चारित्र–केवल मलधारण करना मात्र है :

ज्ञानमुष्णपयःपानं दर्शनं मुखमुद्रणम्।
चारित्रं दर्शयाम्येषां केवलं मलधारणम्॥

ये लोग अपने आपको ही चरित्रवान् बतलाते हैं। परमात्मा की निन्दा करते हैं। ये कौटिल्य में पटु हैं। इसलिए इनकी देशना नहीं सुननी चाहिए। इस प्रकार अनेक प्रकार के तर्कों से तपोटों के मिथ्याडम्बरों का उद्घाटन करते हुए आचार्य ने उनके मत का खण्डन किया है। जैनधर्म के एक मत-विशेष तपागच्छ का इस प्रकार विरोध करके आचार्यजी ने न केवल साहस का ही परिचय दिया है वरन् उनको आत्मनिरीक्षण का अवसर भी देने का प्रयत्न किया है।

कतिपय विद्वान् इस कृति को आचार्य जिनप्रभ की रचना मानने में संदेह व्यक्त करते हैं किन्तु जब तक कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त न हो तब तक संदेह करना निरर्थक ही है। यह कृति भी अप्रकाशित है।

विधि-विधान

आचार्य श्रीजिनेश्वरसूरि ने चैत्यवासियों के अजेय दुर्ग अणहिलपुर पत्तन में जिस सुविहित पक्ष, विधिपक्ष, खरतरपक्ष की स्थापना की थी, उस परम्परा का विकास आचार्य जिनवल्लभ, युगप्रधान जिनदत्तसूरि, मणिधारी

जिनचन्द्रसूरि एवं षट्त्रिंशद्वादविजेता जिनपतिसूरि तक अविच्छिन्न रूप से होता रहा। आचार्य जिनपतिसूरि के समय तक चैत्यवास-प्रथा का ह्रास हो चुका था और सर्वत्र सुविहित पक्ष का प्रचार हो चुका था।

आचार्य जिनेश्वर से जिनपतिसूरि तक के समय में निषेध-खण्डनात्मक प्रवृत्ति का विशेषतया प्रचार रहा। इस अवधि में कतिपय आचार्यों ने विधानात्मक कई छोटे-मोटे प्रकरणों की रचनाएँ भी की थीं; जिनमें से प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं :

जिनचन्द्रसूरि	श्रावकविधि दिनचर्या
परमानन्द (अभयदेवसूरि शि०	सामाचारी
जिनवल्लभसूरि	प्रतिक्रमण सामाचारी, पौषधविधिप्रकरण
जिनदत्तसूरि	व्यवस्थाकुलक, शान्तिपर्वविधि, आचार्यपदादिव्यवस्था
मणिधारी जिनचन्द्रसूरि	व्यवस्थाकुलक
जिनपालोपाध्याय	संक्षिप्तपौषधविधि
जिनेश्वरसूरि (द्वितीय)	श्रावकधर्मविधि

किन्तु व्यवस्थित रूप से समग्र क्रियाओं-विधानों का आकर कोई भी ग्रन्थ विधिपक्ष का जिनप्रभसूरि तक निर्मित नहीं हुआ था। भिन्न-भिन्न गच्छों की अनेक सामाचारी-ग्रन्थों का निर्माण और प्रचार हो चुका था। ऐसी अवस्था में विधिमार्गानुयायियों को अनेक सामाचारी ग्रन्थ देखकर भ्रम न हो तथा अपने विधिपथ पर आरूढ़ रहकर सामाचारी का पालन कर सकें इस दृष्टि से आ० जिनप्रभसूरि ने 'विधिमार्गप्रपा' नामक विशाल ग्रन्थ का निर्माण किया।

बहुविहसामायारीओं दट्ठु मा मोहमिंतु सीस त्ति।
एसा सामायारी लिहिया नियगच्छपडिवद्धा ॥७॥

[वि० प्र०, पृ० १२१]

नामकरण

ग्रन्थ के नामकरण के सम्बन्ध में मुनि जिनविजयजी अपनी सम्पादकीय प्रस्तावना में लिखते हैं—

इस ग्रन्थ का सम्पूर्ण नाम, जैसा कि ग्रन्थ की सब से अन्त की गाथा में सूचित किया गया, विधिमार्गप्रपा नाम सामाचारी (विहिमग्गपवा नामं सामायारी, देखो, पृ० १२०, गा० १६) ऐसा है। पर इसकी पुरानी सब प्रतियों में अन्यान्य उल्लेखों में भी संक्षेप में इसका नाम 'विधिप्रपा' ऐसा ही प्रायः लिखा हुआ मिलता है, इसलिये हमने भी मूलग्रन्थ में इसका यही नाम सर्वत्र मुद्रित किया है; पर वास्तव में ग्रन्थकार का निज का किया हुआ पूर्ण नामाभिधान अधिक अन्वर्थक और संगत मालूम देता है। इस विधिमार्ग शब्द से ग्रन्थकार का खास विशिष्ट अभिप्राय उद्दिष्ट है। सामान्य अर्थ में तो 'विधिमार्ग' का 'क्रियामार्ग' ऐसा ही अर्थ विवक्षित होता है पर यहाँ पर विशेष अर्थ में खरतरगच्छीय विधि-क्रिया-मार्ग ऐसा भी अर्थ अभिप्रेत है। क्योंकि खरतरगच्छ का दूसरा नाम विधिमार्ग है और इस सामाचारी में जो विधि-विधान प्रतिपादित किये गये हैं वे प्रधानतया खरतरगच्छ के पूर्व आचार्यों द्वारा स्वीकृत और सम्मत हैं। इन विधि-विधानों की प्रक्रिया में अन्यान्य गच्छ के आचार्यों का कहीं कुछ मतभेद हो सकता है और है भी सही। अतएव ग्रन्थकार ने स्पष्ट रूप से इसके नाम में किसी को कुछ भ्रान्ति न हो इसलिये इसका 'विधिमार्गप्रपा' ऐसा अन्वर्थक नामकरण किया है। इसलिये इसका यह 'विधिमार्गप्रपा' नाम सर्वथा सुन्दर, सुसंगत और वस्तुसूचक है ऐसा कहने में कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

अन्य सामाचारी-ग्रन्थ

वैसे तो जिनप्रभसूरि ने इस ग्रन्थ में कतिपय आचार्यों और ग्रन्थों के नाम—मानदेवसूरि (पृ० २५), जिनवल्लभसूरिकृत पौषधविधि (पृ० २२) पादलिप्तसूरिकृत निर्वाणकालिका (पृ० ६७), श्रीचन्द्रसूरिकृत प्रतिष्ठासंग्रह

(पृ० १११), कथारत्नकोप[1] (पृ० ११४), और सैद्धान्तिक श्रीविनयचन्द्र-सूरि (पृ० ११९), योगविधान (पृ० ५८) तथा महानिशीथ आवश्यकचूर्णि आदि दिये हैं किन्तु 'बहुविह सामायारी ओ दट्ठु' के अनुसार तत्समय में प्रचलित सामाचारी ग्रन्थों का उल्लेख नहीं किया है। संभवतः उस समय तक प्रचलित उमास्वातिकृत पूजाप्रकरण, हरिभद्रसूरिकृत प्रतिष्ठाकल्प, राज-गच्छीय सिद्धसेनसूरि कृत सामाचारी, अजितदेवसूरिकृत योगविधि (र० सं० १२७३), श्रीतिलकाचार्यकृत सामाचारी एवं श्रीचन्द्रसूरीकृत प्रतिष्ठा-कल्प एवं सुबोधा सामाचारी आदि ग्रन्थ उनके सन्मुख अवश्य रहे होंगे।

चन्द्रगच्छीय श्रीतिलकाचार्य[2]-कृत सामाचारी[3] एवं श्रीचन्द्रसूरि[4]-कृत सुबोधा सामाचारी[5] ग्रन्थ से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि तत्स-मय में प्रचलित न केवल वैधानिक विपय ही अपितु क्रिया-पद्धति भी एक ही थी। केवल कहीं-कहीं स्वगच्छीय मर्यादानुसार अन्तर प्रतीत होता है। ये दोनों सामाचारी-ग्रन्थ संक्षेप में विपय का प्रतिपादन करते हैं, वहाँ उन्हीं विपयों का प्रतिपादन विधिमार्गप्रपाकार विस्तार के साथ करते हैं, ताकि उस समय क्रियाकार को अन्य किसी सहाय्य की जरूरत न रहे। योग-विधि, पदस्थापनविधि एवं प्रतिष्ठाविधिप्रकरण का तो अध्ययन करने

---

१. विधिमार्गप्रपा, पृ० १११ में ध्वजारोपणविधि के जो ५० पद्य दिये गये हैं वे देवभद्रसूरिकृत कथारत्नकोप पृ० ८६, गा० १७ से ५५ और पृ० ७१ गाथा ११४ से १२४ तक के हैं।

२. चन्द्रग० शिवप्रभसूरि के शिष्य थे। इनका रचनाकाल १२६१ से १३०३ है। विशेष अध्ययन के लिये देखें, जै० सा० सं० इ० ५६२.

३. शाह नागरदास प्रागजी भाई दोसी, वाडानी पोल, अहमदाबाद से प्रकाशित।

४. देखें, वल्लभभारती।

५. देवचंद लालक भाई पुस्तकोद्धारफंड सूरत से प्रकाशित।

पर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों इस विषय के ये मौलिक एवं स्वतंत्र ग्रन्थ ही हों।

इन दोनों सामाचारी ग्रन्थों के साथ विषय साम्य ही नहीं, अपितु कतिपय प्रकरण तो अक्षरशः जैसे के तैसे प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिये तुलना कीजिये :—

विधिमार्गप्रपा	सुबोधसामाचारी
उपधानविधि, पृ० १२	पृ० ६.
पंचनमोक्कारेकिल० गा० ५४	
कल्लाणकंदादि ८ गाथा० ११	,, ३८
सावज्जकज्जादि० गा० ९ १५.	,, ३८
जइसिद्धाणादि० गा० ५ १०३.	,, ४४
थुइराणमंतनासो आदि० गा० ६ १०३	,, ४७

× × ×

	सामाचारी
अरिहाणनमो पूयं आदि गा० ३६ पृ० ३१.	पृ० ४
पंचनमोक्कोर किल आदि गा० ५४. पृ० १२.	पृ० ६ गाथाओं का हेरफेर अवश्य हैं।
असंखयं जीविय आ० गा० १८ पृ० ४९	३५

× × ×

'सुबोधसामाचारी' तथा 'सामाचारी' में प्रतिपाद्य विषयों का संक्षेप में प्रतिपादन किया गया हैं जब कि विधिमार्गप्रपा में समग्र विषयों का विशद शैली में निरूपण किया गया है और सुबोधा सामाचारी में 'आलोचनाधिकार' नहीं है एवं सामाचारी में 'प्रतिष्ठाधिकार' नहीं है जब कि इन दोनों अधिकारों का भी इस ग्रन्थ में विस्तृत रूप में प्रतिपादन किया गया है।

'निर्वाणकलिका' वस्तुतः प्रतिष्ठाविधि ग्रन्थ हैं। इसमें २९ विधियाँ है,

यहाँ 'विधि' शब्द प्रकरण या अधिकार-सूचक है। दीक्षाविधि एवं आचार्याभिषेकविधि के अतिरिक्त समग्र विधियां प्रतिष्ठाविधान से ही सम्बन्ध रखती हैं। प्रतिष्ठाविधान इतना विस्तृत निरूपण अन्य किसी ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होता। निर्वाणकलिका के सन्मुख विधिप्रपा की 'प्रतिष्ठाविधि' भी संक्षिप्त-सी प्रतीत होती है।

विधिप्रपा के पृष्ठ ११०-१११ में श्रीचन्द्रसूरिकृतप्रतिष्टासंग्रहकाव्यानि के ७ पद्य उद्धृत हैं। ये सातों पद्य श्रीचन्द्रसूरि रचित सुबोधासमाचारी में प्रतिष्ठाविधि में प्राप्त नहीं है। अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीचन्द्रीय प्रतिष्ठाविधि का सारांश ग्रन्थकार जिनप्रभसूरि ने इन ७ पद्यों में गुंफित किया हो।

प्रतिपाद्य-विषय

इस सम्बन्ध में विधिमार्गप्रपा की सम्पादकीय प्रस्तावना में मुनि जिनविजयजी ने बड़े विस्तार से प्रकाश डाला है जो अविकल रूप से इस प्रकार है[1] :—

"जैसा कि इसके नाम से ही सूचित होता हैं—यह ग्रन्थ साधु और श्रावक के जीवन में कर्त्तव्य कर्म नित्य और नैमित्तिक दोनों ही प्रकार की क्रिया-विधियों के मार्ग में संचरण करनेवाले मोक्षार्थी जनों की जिज्ञासारूप तृष्णा की तृप्ति के लिये एक सुन्दर 'प्रपा' समान है। इसमें सब मिलाकर मुख्य ४१ द्वार यानी प्रकरण हैं। इन द्वारों के नाम, ग्रन्थ के अन्त में, स्वयं शास्त्रकार ने १ से ६ तक की गाथाओं में सूचित किये हैं। इन मुख्य द्वारों में कहीं-कहीं कितनेक अवान्तर द्वार भी सम्मिलित हैं जो यथास्थान उल्लिखित किये गये हैं। इन अवान्तर द्वारों का नाम निर्देश, हमने विषयानुक्रमणिका में कर दिया हैं। उदाहरण के तौर पर, २४ वें 'जोगविही' नामक प्रकरण में, दशवैकालिक आदि सब सूत्रों की योगो-

१. संपादकीय प्रस्तावना, पृष्ठ आ.

द्वहन क्रिया के वर्णन करनेवाले भिन्न-भिन्न विधान प्रकरण हैं; और ३४ वें 'आलोयणविही' संज्ञक प्रकरण में ज्ञानातिचार, दर्शनातिचार आदि आलोचना विषयक अनेक भिन्न-भिन्न अन्तर्गत प्रकरण हैं। इसी तरह ३५ वें 'पइट्ठाविही' नामक प्रकरण में जलानयनविधि, कलशारोपणविधि, ध्वजारोपण विधि—आदि कई एक आनुषंगिक विधियों के स्वतंत्र प्रकरण सन्निविष्ट हैं।

इन ४१ द्वारों—प्रकरणों में से प्रथम के १२ द्वारों का विषय, मुख्यतः श्रावक जीवन के साथ संबंध रखनेवाली क्रिया-विधियों का विधायक हैं; १३ वें द्वार से लेकर २९ वें द्वार तक विहित क्रिया-विधियाँ प्रायः साधु जीवन के साथ संबंध रखती हैं और ३० वें द्वार से लेकर ४१वें द्वार तक में वर्णित क्रिया-विधान, साधु और श्रावक दोनों के जीवन के साथ संबंध रखने वाली कर्त्तव्यरूप विधियों के संग्राहक हैं।

यह ग्रन्थ सचमुच ही जैन क्रिया-विधानों का परिचय प्राप्त करने के इच्छुकों के लिये सुन्दर प्रपा-तुल्य एवं सर्वश्रेष्ठ है। सारा ग्रन्थ प्राकृत गद्य में लिखा हुआ है, बीच-बीच में गाथाएं भी उद्धृत की गई हैं जो अधिकतर पूर्वाचार्यों की हैं। आलोचनाग्रहणविधि पद्य ६४ (पृ० ९३-९६) तथा पिण्डालोचना विधानप्रकरणगाथा ७३ (पृ० ८२-८६) तो ग्रन्थकार द्वारा रचित स्वतन्त्र प्रकरण से हैं। विषय की दृष्टि से यह ग्रन्थ अलभ्य सामग्री प्रस्तुत करता है। समग्र-विधि-विधानों का ऐसा विशद और क्रमबद्धरूप अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता। यही कारण है कि परवर्ती समस्त गच्छों के विधान-ग्रन्थकारों ने किसी न किसी रूप में, अंश रूप से या पूर्णरूप से इस ग्रन्थ का अनुकरण किया है और इसे आदर्शरूप में माना है।

इस ग्रन्थ की रचना-समाप्ति वि० सं० १३६३ विजया दशमी के दिन कोशलानगर अर्थात् अयोध्या नगरी में हुई है। यह ग्रन्थ मुनि जिनविजय जी द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुका है।

विधि-विधान के अन्य ग्रन्थ

विधिमार्गप्रपा के अतिरिक्त आचार्य जिनप्रभ ने देवपूजाविधि, प्रायश्चित्तविशुद्धि, एवं व्यवस्था-पत्र नामक लघु ग्रन्थों की भी रचना की है। इस ग्रन्थों का क्रमशः परिचय इस प्रकार है :

देवपूजा विधि—जैन उपासक के लिए देवपूजन अवश्य और नित्य कर्त्तव्य होने से इस विधि में गृहप्रतिमापूजाविधि, चैत्यवन्दनविधि, छत्र-भ्रमणविधि, पञ्चामृतस्नानविधि और शान्तिपर्वविधि का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। पादलिप्तसूरि कृत निर्वाणकलिका की मान्यताओं और परम्पराओं का भी ग्रन्थकार ने कई स्थानों पर उल्लेख किया है। अष्टाह्निका में संघ का चन्द्रबलादि की अपेक्षा से तिथि-सम्बन्धी मन्तव्य का उल्लेख करते हुए "पूज्य श्रीजिनदत्तसूरीणामाम्नाये" वाक्य का प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट है कि श्रीजिनदत्तसूरि का इस सम्बन्ध में कोई ग्रन्थ अवश्य होगा या उनकी 'मान्यता' परम्परारूप में प्रचलित होगी, किन्तु वर्तमान समय में दोनों अनुपलब्ध हैं। यह 'विधि' विधिमार्गप्रपा के साथ प्रकाशित हो चुकी है।

पूजाविधि—इस विधि में वन्दनस्थानविवरण, प्रत्याख्यानविवरण, शान्तिपर्वविधि एवं चौरासी आशातनाओं का ग्रन्थकार ने विस्तार से प्रतिपादन किया है।

प्रायश्चित्तविधि—इस विधि में साधुवर्ग के लिए प्रायश्चित्त का विधान है। जीवन में सामान्य या विशेष जो कोई दोष या अपराध हुए हों, उनका परिहार एवं परिमार्जन करने हेतु आलोचना का विधान है। दोषों के आधार पर दण्ड-प्रायश्चित्त दिया जाता है।

व्यवस्थापत्र—इसमें स्वगच्छीय सामाचारी के पालन कर्त्ताओं के लिए ३२ व्यवस्थाओं का विधान किया गया है।

पूजाविधि, प्रायश्चित्तविधि और व्यवस्थापत्र ये तीनों ही ग्रन्थ

अप्रकाशित हैं और इनकी एक मात्र प्रतियां जैन साहित्य मन्दिर, पालीताणा में क्रमशः ५९९, ४९० एवं ५९९ पर प्राप्त हैं।

मन्त्र साहित्य

जैन साहित्य में विधि-विधानों में प्रयुक्त होनेवाले मन्त्रों की संख्या भी बहुत अधिक है। 'ॐ नमो अरिहन्ताणं' बौद्ध शीलत्रय की तरह जैन-शासन का मूलाधार माना जाता है। जिनप्रभसूरि महाप्रभावक आचार्य थे। इसलिए मन्त्रों की ओर उनका ध्यान जाना भी अनिवार्य था। मन्त्र-साहित्य से सम्बन्धित उनके ग्रन्थ ये हैं:—'ह्रींकारकल्पविवरण, सूरिमन्त्र-बृहत्कल्पविवरण, चूलिका, रहस्यकल्पद्रुम, वर्धमानविधकल्प, शक्रस्तवाम्नाय, अलङ्कारकल्पविधि, पञ्चपरमेष्ठिमहामन्त्र स्तव, गायत्रीविवरण आदि।

ह्रींकारमन्त्रविवरण में ह्रींकारमन्त्र की महत्ता का वर्णन करते हुए उसकी प्रयोगविधि पर प्रकाश डाला गया है। ह्रींकारमन्त्र को चौबीस तीर्थङ्करों, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादि सब देवताओं से युक्त माना गया है। इससे भाग्यहीन को भी सिद्धि मिलती है। इसके जाप से सभी देवी-देवता सिद्ध होते हैं। सभी प्रकार के भय दूर होते हैं। बुद्धि प्राप्ति, शत्रु-उच्चाटन, द्रव्यप्राप्ति आदि के लिए इस ग्रन्थ में विभिन्न उपायों से ह्रींकार मन्त्र प्रयुक्त करने की विधि दी गई है। इससे पद्मावती देवी भी प्रसन्न होती है।

वर्धमानविधाकल्प प्राकृतभाषा में है। उपाध्याय पद धारक साधु के लिये आराधना विषयक विधान दिया गया है।

सूरिमन्त्रबृहत्कल्पविवरण में सूरि-मन्त्राक्षरों का फलादेश संस्कृत गद्य-पद्य में प्रस्तुत किया गया है। इन मन्त्रों का आराधन करनेवाला आचार्य धर्मोन्नति के साथ आत्मकल्याण करने में भी समर्थ होता है। ग्रन्थ में विद्यापीठ, महाविद्यापीठ, उपविद्यापीठ, मन्त्रपीठ, मन्त्रराजपीठ आदि पाँच

प्रस्थानों के मंत्रों का खरतरगच्छीय पद्धति से प्रयोग दिखाया गया है। चूलिका में भी इसी विषय का प्रतिपादन है।

रहस्यकल्पद्रुम नामक ग्रन्थ में जैन-समाज में प्रचलित अनेक मन्त्रों के इष्ट प्रयोगों का अनुकथन है। पूर्णग्रन्थ प्राप्त न होकर कुछ प्रयोग मात्र ही प्राप्त हैं।

शक्रस्तवाम्नाय में जैन-साहित्य में सर्वाधिक प्रसिद्ध 'नमोत्थुणं' स्तव पर परम्परागत मन्त्रविधानों और साधनों के प्रयोगों का कथन है।

'गायत्रीविवरण' में गायत्री आचार्य ने वेदों के सारभूत गायत्री मन्त्र की संक्षिप्त व्याख्या की है। गायत्री की उत्पत्ति के विषय में ग्रन्थकार ने लिखा है:—

स्वयम्भुवादभवत्फेनः फेनादर्जनबुद्बुदः।
वभूव बुद्बुदादण्डमण्डात् ब्रह्मा ततोऽनलः॥
अनलादभवद् वायुः वायोरोङ्कारमेव च।
ओङ्कारादपि गायत्री सावित्री च ततोऽभवत्॥

अर्थात् स्वयम्भुव परब्रह्म से फेन के रूप में सृष्टिबीज उत्पन्न हुआ। फेन से बुद्बुद हुआ। बुद्बुद से अण्डा (हिरण्यगर्भ) और उससे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। फिर अग्नि, उससे वायु, और वायु से शब्दब्रह्म ॐ पैदा हुआ। ॐ से गायत्री व सावित्री का जन्म हुआ।

आगे गायत्री का स्वरूप बतलाया गया है :

धेनुरूपाभवेदेषा त्रिपादा पञ्चशीर्षका।
त्रिवर्णा च त्रिनासा च चतुर्विंशति देवता॥

अर्थात् गायत्री के भूः, भुवः, स्वः त्रिपाद हैं, ऋग्वेद, शिक्षा, कल्प, निरुक्त और ज्योतिष-ये पञ्चशीर्ष हैं। रक्त, श्वेत और कृष्ण-ये तीन वर्ण हैं, इसके तीन नासिका हैं और इसमें २४ देवता निवास करते है, ऐसी गायत्री धेनुरूपा है।

आगे २४ देवताओं के नाम गिनाते हुए गायत्री के प्रत्येक अक्षर की युक्तियुक्त व्याख्या की है। यह विवरण अप्रकाशित है।

ऐतिहासिक

आचार्य जिनप्रभ का एक अन्य बड़ा ग्रन्थ 'विविध-तीर्थकल्प' है। यह ऐतिहासिक व भौगोलिक महत्त्व का ग्रन्थ है। इसकी रचना वि० सं० १३८९ में पूर्ण हुई। इसमें वर्णित विविध तीर्थों से सम्बन्धित कल्प विभिन्न काल की रचनाएँ हैं। वैभारगिरिकल्प की रचना १३६४ में, शत्रुञ्जय कल्प की रचना १३८५ में, ढीम्पुरीतीर्थस्तोत्र की १३८६ में, पावापुरी-कल्प की १३८७ में, महावीरगणधरकल्प की १३८९ में और हस्तिनापुर-तीर्थ स्तोत्र की रचना १३९० में हुई थी। इस ग्रन्थ में सौराष्ट्र, गुजरात, मालवा, राजपूताना, मध्यदेश, पूर्वदेश और दक्षिण भारत के जैन तीर्थों का विश्वसनीय प्राचीन इतिहास मिलता है। यह आचार्य के तीर्थयात्रा-सम्बन्धी निजी अनुभवों का एवं परम्परागत ऐतिह्य तथ्यों का प्रामाणिक संकलन है।

ग्रन्थ में शत्रुञ्जय, उज्जयन्त (गिरनार), स्तम्भन (खंभात), अहिच्छत्रा, अर्बुद (आबू), मथुरा, अश्वावबोध (भड़ौंच), वैभारगिरि (राजगृह), कौशाम्बी, अयोध्या, पाबापुरी, कलिकुण्ड, हस्तिनापुर, सत्यपुर (सांचोर), अष्टापद, मिथिला, रत्नपुर, कन्यानयन, प्रतिष्ठानपत्तन (पेठण), नन्दीश्वर, काम्पिल्यपुर, शंखपुर, नासिक, हरि-कंखी पार्श्व, शुद्धदन्ती, चम्पापुरी, पाटलिपुत्र (पटना), श्रावस्ती, वाराणसी, कोकापार्श्व, (पाटण), कोटिशिला, चेल्लणपार्श्व (ढिम्पुरी), कुण्डगेश्वर (उज्जैन), माणिक्यदेव (कुलपाक-दक्षिण,), फलवर्द्धि (फलौदी), आदि तीर्थों तथा कपर्दियक्ष, कोहंडियदेवी, अम्बिकादेवी, आरामकुण्ड-पद्मावतीदेवी, व्याघ्री, मन्त्रीश्वर वस्तुपाल-तेजपाल आदि तीर्थभक्तों का परिचय दिया गया है।

ग्रन्थकार ने तीर्थों व तीर्थभक्तों से सम्बन्धित घटनाओं का संस्कृत व प्राकृत भाषा में, गद्य व पद्य में प्रामाणिक वर्णन किया है जिससे उस समय की स्थिति का पता चलता है। स्वयं आचार्य जिनप्रभ के जीवन की अनेक घटनाओं—जैसे सुलतान मुहम्मद की प्रसन्नता, फरमान, मूर्तियों का उद्धार, तीर्थों की रक्षा, प्रतिष्ठा आदि की सूचना इन तीर्थकल्पों से ही मिलती है। ३५६० श्लोक-प्रमाण के इस ग्रन्थ की योगिनीपुर (दिल्ली) में समाप्ति की सूचना भी ग्रन्थ के अन्तिम समाप्ति काव्य से मिलती है।

इस ग्रन्थ का प्रामाणिक संस्करण मुनि जिनविजयजी द्वारा सम्पादित होकर सिंघी जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित हो चुका है।

जैन साहित्य

आचार्य जिनप्रभ जैनदर्शन, आगम, प्रकरण आदि साहित्य के भी परमगीतार्थ विद्वान् हैं। जैन-साहित्य पर इनका कोई मौलिक ग्रन्थ तो प्राप्त नहीं हैं किन्तु गुणानुरागकुलक, कालचक्रकुलक, उपदेशकुलक, परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका, परमात्मद्वात्रिंशिका आदि दार्शनिक, सैद्धान्तिक एवं औपदेशिक लघुकायिक प्रकरण ग्रन्थ अवश्य प्राप्त हैं। ये सभी प्रकरण अभी तक अप्रकाशित हैं।

जैनागम, प्रकरण और स्तोत्र आदि अनेक ग्रन्थों पर आपकी सुबोधा टीकाएँ उपलब्ध हैं। कुछ टीकाओं के नाम इस प्रकार हैं :

कल्पसूत्र 'सन्देह 'विषौषधि' टीका, साधुप्रतिक्रमणसूत्र-'अर्थनिर्णय-कौमुदी' टीका, षडावश्यक-टीका, प्रव्रज्याभिधान-टीका, अनुयोगचतुष्टय-व्याख्या, अजितशान्तिस्तोत्र-टीका, नमिउणस्तोत्र-टीका, उपसर्गहरस्तोत्र-टीका, पादलिप्तीय वीरस्तोत्र-टीका और विषमषट्पदकाव्य-टीका।

कल्पसूत्र टीका

कल्पसूत्र जैनागमों में प्रसिद्ध सूत्र है। जिनप्रभ से पूर्व इस ग्रन्थ पर टिप्पनक आदि अवश्य प्राप्त थे किन्तु इस पर रहस्योद्घाटिनी कोई टीका

उस समय तक प्राप्त नहीं थी । आचार्य ने वि० सं० १३६४, अयोध्या में रहते हुए कल्पसूत्र पर 'सन्देहविषौषधि' नामक टीका की रचना कर इस अभाव को पूरा किया । टीका सुबोध एवं प्रामाणिक है और टीका का नाम भी अन्वर्थक प्रतीत होता है । परवर्ती प्रायः समस्त टीकाकारों ने अपनी कल्पसूत्र की टीकाओं में—किरणावली, कल्पलता, सुबोधिका, कल्पद्रुमकलिका, कल्पदीपिका आदि में किसी न किसी अंश में इस संदेहविपौषधि का अनुसरण किया ही है ।

यह टीका हीरालाल हंसराज द्वारा अवश्य प्रकाशित हुई है किन्तु इसका प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित होने की अत्यावश्यकता है ।

साधुप्रतिक्रमणसूत्र की अर्थनिर्णयकौमुदी-टीका का निर्माण वि० सं० १२६४ अयोध्या में, उपसर्गहरस्तोत्र पर 'अर्थकल्पलता' टीका का १३६४ साकेत (अयोध्या) में, अजितशान्तिस्तोत्र पर 'बोधदीपिका' टीका का एवं भयहर (नमिउण) स्तोत्र पर 'अभिप्रायचन्द्रिका' का सं० १३६५ दाशरथिपुर (अयोध्या) में हुआ है ये सब ही टीकायें सुबोध, परिमार्जित एवं प्रामाणिक शैली में लिखी हुई हैं ।

षट्पदविषमकाव्य विवृति में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के लगभग २१ पद्य हैं । पद्यों में अनेकार्थवाची श्लिष्ट शब्दों की अनेकधा आवृत्ति हुई है । इस क्रम से पद्य के अनेक अर्थ हो जाते हैं । एक श्लोक और उसकी जिनप्रभ द्वारा की गई टीका देखिये :

हंसनादमतं देवं देवानां विभयं भयम् ।
यं भयं भविनां वादे वन्दे तं मदनासहम् ।।

हंसनद०—तं देवानां देवं हरं वीतरागं वा वन्दे इति सम्बन्धः । यं किं विशिष्टम् ? हंसस्येव नादः—शब्दस्तेन सुस्वरत्वान्मतं-लोकानां सम्मतं वीतरागं । महेश्वरपक्षे तु हंसेन नादः प्रसिद्धिर्यस्य हंसवाहनत्वाद् ब्रह्मा उच्यते, तस्य मतं पूज्यम्, ब्रह्मणोऽपि पूज्यत्वाद् । ईश्वरस्य शेषाणि सर्वा-

ण्यपि विशेषणानि पक्षद्वयेऽपि तुल्यानि । विभयं विगतं भयम् । पुनः किंविशिष्टम् ? भयम्-सेव्यम् धातूनामनेकार्थत्वात् । कथां भविनां क्व ? वादे-विवादे, किमत्यसौ वादो सेव्यते यतो भयं......................यः चन्द्रस्तमाह्लादकत्वात् । पुनः ....भयोरपि कामविनाशकत्वात् । इत्यनुलोमप्रतिलोमश्लोकार्थः ।

स्पष्ट है कि उक्त श्लोक में शिव और वीतराग पक्ष के दो अर्थ निकलते हैं। सभी विशेषणों के दोनों पक्षों में अलग-अलग अर्थ हैं ।

एक अन्य फ़ारसी भाषा का पद्य देखिये :

दोस्तीख्वान्दतुरा न वासइ (कु) या हामा चुनी द्रोग् हिसि ।
चीजे आमद वेसिदो दिलुसिरा बूदी चुं नी कीवरु ।।
तं बाला रहमाण वासइ चिरा दोस्ती निसस्ती इरा ।
अल्लाल्लाह तुरा सलामु बुचिरुक् रोजी मरा मे दहि ।।

दोस्तीख्वांद०—दोस्ती–अनुरागः ख्वान्द–स्वामिन् तुरा नव न वासइ-नास्ति कुया–कस्मिन्नपि हामाचुनी-सर्वं द्रोग्-असत्यं हिसि-तिष्ठति । आद्य-पदार्थः यतः चीजे यः कोऽपि आमद-आजगामः वेसिदो-युष्मद् पार्श्वे दिलुसिराबूदी-सञ्जातभग्यमानसः चुनी-ईदृशः कीबरः-कर्म्मकरः माम्रापि । (द्वितीयपदम्) तथा तं बाला रहमाणः तस्योपरि हरमाण वीतराग वास इति विद्यते । चिरा-कुतः । दोस्ती निसस्ती-रागानुबन्धः इरा-अतः कारणात् अल्लाल्लाह—पूजावाचको शब्दो तुरा-तुभ्यं सलामु-नमस्कारः । बुचिरुक्-महती-रोजी-विभूतिः मरा-मे दहीति-देहि ।

अपभ्रंश का एक पद्य भी देखिये :

जत्तीसीलीमेलावा केहा धण उत्तावली पिअ मंदमिणेहा ।
कन्न पवित्तडी जणु जाणइ दोरा विरइ माणुस जो मरई तसु किस निहोरा ।

इस पद्य के टीकाकार जिनप्रभ ने चार भिन्न-भिन्न अर्थ दिये हैं । स्पष्ट है कि सारे पद्य दृष्टिकूट हैं । देखने पर ऊपर से कुछ दूसरा अर्थ ज्ञात होता है और निकलता कुछ और ही है । यह संस्कृत के राक्षसकाव्य

की परम्परा का ग्रन्थ है जिसे अपनी विवृत्ति से जिनप्रभ ने सरल, सुबोध बना दिया है।

उक्त कृतियों को देखने से स्पष्ट है कि आचार्य जिनप्रभ की प्रतिभा बहुमुखी थी। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी आदि अनेक भाषाओं पर उनको समान अधिकार प्राप्त था। उनकी कवित्वशक्ति व विषय-विवेचनी-प्रतिभा अपने समय में बेजोड़ थी। धर्म के गूढ़ रहस्यों को वे समझते थे। धर्म पर उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा थी। इसके उपरान्त भी उनकी विचारधारा उदार थी। उनके कई स्तोत्र और गायत्रीविवरण आदि ग्रन्थ इस बात की पुष्टि करते हैं। वे न केवल एक जैन उपदेष्टा के रूप में ही स्मरणीय हैं, वरन् धर्म व दर्शन के तत्त्वों के व्याख्याता, इतिहास की घटनाओं को सूचित करनेवाले, महाकाव्यकार, व्याकरण के तात्त्वज्ञ, टीकाकार आदि अनेक रूपों से युक्त एक असाधारण प्रतिभावान् विद्वान् थे और सबसे अधिक प्रसिद्धि उनकी स्तोत्रकार के रूप में है।

आचार्य जिनप्रभ का स्तोत्र-साहित्य

जिनप्रभ ने विशाल स्तोत्र साहित्य की रचना भी की है। ऐसा प्रसिद्ध है कि वे नित्यप्रति एकाध नवीन स्तोत्र की रचना करके आहार ग्रहण करते थे। उन्होंने यमक-श्लेष-चित्र-छन्दोविशेष नयी-नयी प्रकार के ७०० स्तोत्रों की रचना की थी। इसका उल्लेख उनके सिद्धान्तागमस्तव की अवचूरि में मिलता है :

"पुरा जिनप्रभसूरिभिः प्रतिदिनं नवस्तवनिर्माणपुरस्सरं निरवद्याहार-ग्रहणाभिग्रहवद्भिः यमकश्लेषचित्रच्छन्दोविशेषादिनवनवभंगीसुभगाः सप्त-शतीमिताः स्तवाः।"

इन स्तोत्रों की रचना तीर्थंकर, गणधर, तीर्थ, तीर्थरक्षक, शारदा-देवी, अपने गुरु आदि को उदेश्य करके हुई है। ये अपभ्रंश, प्राकृत, फारसी, संस्कृत आदि अनेक भाषाओं में रचित मिलते हैं। इसमें विविध छन्द, चित्रकाव्य आदि का प्रयोग हुआ है। कोई-कोई स्तोत्र-मंत्र-

गर्भित है। ७०० स्तोत्रों में से अब तक लगभग अस्सी स्तोत्र मिलते हैं, इनमें से कुछ स्तोत्र काव्यमाला (सप्तम गुच्छक), प्रकरणरत्नाकर (भा० २-४), जैनस्तोत्रसंग्रह, जैनस्तोत्रसमुच्चय, जैनस्तोत्रसन्दोह आदि में प्रकाशित हुए हैं। पाटण, खंभात, जैसलमेर, बीकानेर आदि के ज्ञानभंडारों में खोज करने पर और भी मिल सकते हैं।

इन सभी स्तोत्रों में षड्भाषा-गर्भित-स्तोत्र अधिक आश्चर्य-प्रद है जिनमें फारसी-भाषा का भी साधिकार प्रयोग हुआ है। विदेशी भाषा पर ऐसा अधिकार तत्कालीन अन्य भारतीय लेखकों में अलभ्य है। नीचे प्राप्य स्तोत्रों का विषयानुसार वर्गीकरण करके सामान्य परिचय दिया जा रहा है :

चतुर्विंशति जिनस्तव

२४ तीर्थंकरों की समवेत स्तुति में प्रयुक्त स्तोत्रों की संख्या सबसे अधिक है। अब तक जिनप्रभ द्वारा रचित १३ चतुर्विंशति स्तवों का उल्लेख मिला है जिनमें ९ प्राप्य हैं। इनका परिचय इस प्रकार है :

चतुर्विंशतिजिनस्तवों में २ स्तोत्र 'आ' से प्रारम्भ होनेवाले हैं। एक, जिसका उल्लेख मात्र मिलता है, का प्रारंभ 'आनन्द-सुन्दर-पुरन्दर-नम्र' अक्षर-समूह से होता है। दूसरा, जिसका प्रथम श्लोक यह है :

आनम्रनाकिपतिरत्नकिरीटरोचिः नीराजितक्रमसरोजनिवासलक्ष्मीः।
उत्तापहेमपरमाणुमयप्रभो वः श्री नाभिनन्दन-जिनाधिपतिः पुनातु ॥

इसमें वसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त हुआ है। इसमें कुल श्लोकों की संख्या २५ है। अन्तिम श्लोक में जिनप्रभ ने अपना नाम भी दिया है।

'ऋ' से प्रारम्भ होनेवाले तीन स्तोत्रों का उल्लेख मिलता है। एक स्तोत्र का प्रथम श्लोक इस प्रकार है :

ऋषभनम्रसुरासुरशेखर-प्रणतयालुपरागपिशंगितम्।
क्रमसरोजमहं तव मौलिना जिनवहे नवहेमतनुद्युते ॥ १ ॥

इस स्तोत्र में २९ द्रुतविलम्बित छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इसमें प्रत्येक श्लोक के अन्तिम चरण में ३-३ अक्षरों की आवृत्ति करके यमक का प्रयोग किया गया है। यमक आचार्य जिनप्रभ का प्रिय अलंकार है। प्रस्तुत स्तोत्र से कुछ उदाहरण देखिये—

सुकृतिनः कृतवर्मधराधवान्वयनभस्तलभासनभास्वरं।
श्रयत कांचनवारिरुहच्छदच्छविमलं विमलं जगदीश्वरम् ॥१३॥
उपनमन्ति तमीश समुत्सुकाः प्रणयते वरितुं सकलाश्रियः।
जगति तुभ्यमनन्त नमस्क्रियामकलये कलये द्विनयेन यः ॥१४॥
अवतु धर्मजिनेन्द्र कुभावना—रजनिनाशनसपृहयोदयः।
शममयः समयस्तव सुव्रता तनय मां नयमांमल विस्तरः ॥१५॥

यमक प्रयोग करते हुए ही जिनप्रभ ने २४ वें श्लोक में अपना नाम भी रख दिया है :

चलनकोटिविघट्टनचंचली-कृत सुराचल वीर जगद्गुरोः।
त्रिभुवनाशवनाशविधौ **जिनप्रभवते** भवते भगवन्नमः ॥२४॥

दूसरे स्तोत्र में २९ द्रुतविलम्बित छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इसमें भी उपर्युक्त रीति से यमकालंकार का प्रयोग हुआ है। किन्तु इसमें केवल चतुर्थचरण का बन्धन नहीं है। चारों चरण यमकमय हैं। इसका प्रथम चरण उक्त विशिष्टता से युक्त देखिये:—

ऋषभनाथ ! भवनाथनिभानन !
प्रसृतमोहतमोहननक्षम !
दिश सुवर्ण ! सुवर्ण सुवर्णरुक् !
परमकाममकाम ! विदीर्णरुक् !

तीसरे स्तोत्र में ३० द्रुतविलम्बित छन्द प्रयुक्त हुए हैं। प्रत्येक श्लोक के चतुर्थ चरण में ३-३ अक्षरों के त्रिधा आवृत्ति होना इस स्तोत्र की प्रमुख विशेषता है। इसका प्रथम श्लोक इस प्रकार है :

ऋषभदेवमनन्तमहोदयं
नमत तं तपनीयतनूरुचम् ।
अजनि यस्य सुतो धुरि चक्रिणां
शुभरतो भरतो भरतोदरे ।।

इसी विशेषता से युक्त 'क' वर्ण से प्रारम्भ होनेवाला स्तोत्र २९ श्लोक वाला है । उसमें भी द्रुतविलम्बित छन्द प्रयुक्त हुआ है । इसके प्रथम दो श्लोक इस प्रकार हैं—

कनककान्तिधनुः शतपंचकोच्छ्रितवृषांकितदेहमुपास्महे ।
रतिर्जयिनं प्रथमं जिनं नृवृषभं वृषभं वृषभञ्जिनः ।।१।।
द्विरदलाञ्छितवाञ्छितदायक क्रमलुठत्त्रिदशासुरनायक ।
स्तुतिपरः पुरुषो भवति क्षितावजित राजितरा जितराग ते ।।२।।

अन्तिम श्लोक में आचार्य ने अपना नाम भी दिया है :

करकृताम्रफला पृणती जिनप्रभवतीर्थमिभारिमधिष्ठिता ।
हरतु हेमरुचिः सुदृशां सुखव्युपरमं परमं परमम्बिका ।।

'ज' वर्ण से प्रारम्भ होनेवाला एक चतुर्विंशति स्तव है । यह बहुत छोटा स्तोत्र है । इसमें ८ छन्द प्रयुक्त हुए हैं—७ उपजाति व एक शार्दूल-विक्रीडितम् । प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

जिनर्षभ प्रीणितभव्यसार्थ-समस्तदोषाजिततीर्थनाथ ।
श्रीशंभवाखण्डलबंधनंधाःस्वामिन् प्रजानामभिनन्दन त्वम् ।।

'त' से प्रारम्भ होनेवाला एक स्तोत्र है । इनमें २७ इन्द्रवज्रा और १ शार्दूल विक्रीडित छन्द प्रयुक्त हुए हैं । अन्तिम छन्द उपर्युक्त स्तोत्र का अष्टम छन्द हैं जिसमें आचार्य का नाम भी है । इस स्तोत्र के प्रत्येक चरण में सखण्ड अथवा अखण्ड यमकालंकार का प्रयोग हुआ है । यमक के इस प्रकार के बहुल प्रयोग के उपरान्त भी स्तोत्र में प्रसादगुण का अभाव नहीं हो पाया है । यह रचयिता की क्षमता का द्योतक है । प्रथम दो श्लोक अवलोकनीय हैं—

तत्त्वानि तत्त्वानिभृतेषु सिद्धं भावारिभावारि विशोषधर्मम् ।
दुर्बोधदुर्बोधमहं हरन्तमारम्भमारम्भजताऽदिदेवम् ।।१।।
नेन्द्रा जिनेन्द्राजिततेस्तवेलं काहंतुकाहंतुरथं नयस्य ।
मामत्रमामत्रतथापि कुंद दंतावदंतावलचिह्नदीनम् ।।२।।

'न' अक्षर से प्रारम्भ होनेवाले २ 'चतुर्विशति जिनस्तव' हैं। एक छोटा है जिसमें केवल ९ द्रुतविलम्बित छन्द हैं। छोटा होते हुए भी प्रवाह और प्रसन्न-यमक प्रयोग की दृष्टि से यह उत्कृष्ट स्तोत्रों में गिना जा सकता है। इसके प्रथम दो छन्द देखिये—

नत सुरेन्द्र जिनेन्द्र युगादिमाजित जिता किल कर्ममहारिपो ।
अभव संभव संभवनाथ मे प्रणत कल्पतरो कुरु मंगलम् ।।१।।
त्वमभिनन्दन नन्दननाथ मे ध्रुवगते सुमते सुमते सदा ।
सुकृतसद्म सुपद्म जिनेश मे प्रवरतीर्थपते कुरु मंगलम् ।।२।।

दूसरे स्तोत्र में २५ छन्द हैं। इसका प्रारम्भ 'नाभेयं शोचि निर्ममो' शब्दों से होता है।

'प' अक्षर से प्रारम्भ होने वाले स्तोत्र दो हैं। एक में २९ श्लोक हैं। छन्द उपजाति प्रयुक्त हुआ है। अनायास ही आजानेवाले अनुप्रासों की छटा इसमें भी दर्शनीय है। इसका प्रथम श्लोक है—

पात्वादिदेवो दशकल्पवृक्षा यस्मादधीत्येहितदानविद्याम् ।
अपूपुजन् यच्चरणौ नखालिव्याजेन नूनं नवपल्लवैःस्वैः ।।

अन्तिम श्लोक में जिनप्रभ ने अपना नाम भी दिया है। दूसरे स्तोत्र में २७ अनुष्टुप् छन्द हैं। प्रत्येक श्लोक के द्वितीय चरण के अक्षरों को चतुर्थ चरण में दुहराया गया है। खंड-यमक व श्लेष का प्रयोग इस स्तोत्र की सबसे बड़ी विशेषता है। इसका यह प्रथम श्लोक है—

प्रणम्यादिजिन प्राणी मरुदेवांग जायते ।
हरणे पापरेणूनां मरुदेवांग जायते ।। १ ।।

कुछ और यमक के उदाहरण देखिये—

त्वन्मते रमते श्रेयन् कमलायतनेत्र या ।
सा धी प्रिया मेऽस्तु कृतं कमलायतनेत्रया ॥११॥
वासुपूज्य सविद्भास्त बन्धूकारुण्ययोगतः ।
शरणं त्वत्क्रमौ विश्व-बन्धूकारुण्ययोगतः ॥१२॥

२८ वें शार्दूलविक्रीड़ित छन्द में जिनप्रभ ने अपने नाम को बड़े ही अधिकारपूर्ण ढंग से चक्रबन्ध काव्य में जड़ दिया है और इससे श्लोक में किसी प्रकार का दुर्बोधत्व नहीं आने पाया है—

लक्ष्म्या कृष्टिकरं **जि**[1]नेन्द्रमनघं **भ**[4]द्रावलीमन्दिरं,
वन्दे तस्य गिरं **न**[2]तभ्रमतमः **सू**[5]र्यं धिया कारणम् ।
सार्वीयप्रथित**प्र**[3]भावमखिला**रि**[6]ष्टौघहानिप्रदं
दम्भव्यालसृणिं वरेण्यसमयं रंगद्गुणं बोधिदम् ॥

काले अक्षरों के शब्दों में अंकित संख्यानुसार जिनप्रभ का नाम वर्णित है ।

अन्तिम १३ वाँ 'चतुर्विंशतिजिनस्तव' 'य' अक्षर से प्रारंभ होता है । इसमें ३० श्लोक हैं । इसका यह प्रथम छन्द है—

यं सततमक्षमालोपशोभितं सेवतेऽमरालीशः ।
कमलासनः स्वयम्भूः सः श्रीमान्नाभिभूर्जयति ॥

पार्श्वजिनस्तव

इस स्तोत्र में श्लेष का प्रयोग हुआ है । इसमें विष्णु, राम, कपिध्वज, उमा, प्रद्युम्न, राम, सौमित्र आदि देवी-देवताओं के नाम आये हैं जो जिनप्रभ की उदार विचारधारा को प्रकट करते हैं । श्लिष्ट-प्रयोगों से सारा स्तोत्र ही द्वयाश्रयकाव्य जैसा बन गया है । 'चतुर्विंशतिजिनस्तव' के बाद परिमाण की दृष्टि से 'पार्श्वजिनस्तव' का स्थान है । यद्यपि संख्या में ये उक्त स्तोत्रों से भी अधिक—१६ हैं परन्तु हैं अपेक्षाकृत छोटे । 'चतुर्विंशति-जिन-स्तवों' में यमकालंकार का प्रयोग ही विशेष उल्लेखनीय

है, परन्तु 'पार्श्वजिन-स्तवों' में अनेक प्रकार के प्रयोग देखने में आते हैं, यथा—नवग्रहगर्भित, षड्ऋतुमय, उपसर्गहरस्तोत्र की पादपूर्ति के रूप में, आदि। इनमें मालिनी, स्रग्धरा आदि बड़े छन्दों व प्राकृत भाषा का प्रयोग भी हुआ है। अकारान्त क्रम के उनका परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

'अ' स्वर से प्रारम्भ होनेवाले दो पार्श्वजिनस्तव हैं। एक संस्कृत भाषा में और दूसरा प्राकृत में। संस्कृत पार्श्वस्तव में फलवर्द्धि (फलौदी) के मण्डन स्वरूप पार्श्व स्तवन है। इसमें ११ 'मालिनी' व १ 'शार्दूल-विक्रीडित' कुल १२ छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इसके अन्तिम छन्द में रचना-काल भी दिया हुआ है—

> नन्दर्तुज्वलनक्षपाकर (१३६९) मिते संवत्सरे वैक्रमे,
> राधस्याधिशिती त्रयोदशिबुधे संघेन सार्द्धं सुधी।
> यात्रायै फलवर्द्धिकामुपगतः स्तोत्रं तवेदं प्रभो,
> श्रीमत्पार्श्वजिनप्रभो मुनिपतिः संसूत्रयामासिवान् ॥ १ ॥

इसका प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

> अधियदुपनमन्तो यात्रिकाः प्रीतिपात्रा
> अविकलफलशालि प्राणितं मन्वते स्वम्।
> स जयति फलवर्द्धिस्थानक्लृप्तावतार-
> स्त्रिभुवनभवनश्रीदीपकः पार्श्वनाथः॥

दूसरा स्तोत्र प्राकृत-भाषा में है। षड्ऋतुवर्णनगर्भित होना इसकी प्रमुख विशेषता है। इसमें ७ प्राकृत गाथाएँ प्रयुक्त हुई हैं। प्रथम गाथा में वसन्त-वर्णन के साथ पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है। देखिये—

> असमसरणीय ज ओ निरंतरामोय सुमणमहमहिओ।
> भमरहिओ पियसुहओ जय इव संतुव्व पासजिणो॥

इसी तरह शरद् वर्णन—

> उवसंतपंकमग्गं विमलियभुवणासयं अमलविसयं।
> सियपक्खाणदयरं सेवह सरयं व पासजिणं॥

एक स्तोत्र 'क' वर्ण से प्रारम्भ होता है। इसमें १५ स्रग्धरा, १ शार्दूलविक्रीडित और १ वसन्ततिलका—कुल १७ श्लोक आये हैं। इसका प्रथम श्लोक इस रूप में है :

का मे वामेय शक्तिर्भवतु तव गुणस्तोमलेशप्रशस्तौ
न स्याद्यस्यामधीशः सुरपतिसचिवस्यापि वाणी विलासः।
माने वा वार्धिवारां कलयति क इव प्रौढिमारूढधारां
भक्तिव्यक्तिप्रयुक्तस्तदपि किमपि ते संस्तवं प्रस्तवीमि ॥

भाषा-प्रवाह व भावगुरुता की दृष्टि से यह स्तोत्र जिनप्रभ के सर्वोत्कृष्ट छन्दों में से एक है। एक उदाहरण पुनश्च देखिये—

संसाराम्भोधिवेला निबिडजडमतिध्वान्तविध्वंसहंसः
श्यामाश्यामांगधामा शठकमठतपोधर्मनिर्माथिपाथः।
स्फारस्फूर्जत्फणीन्द्र प्रगुणफणमणिज्योतिरुद्द्योतिताशा-
चक्रश्चक्रिध्वजं त्वं जय जिन विजित द्रव्यभावारिवारः ॥ २ ॥

दो स्तोत्र 'ज' वर्ण से प्रारंभ होनेवाले हैं। दोनों संस्कृत में हैं। एक २१ श्लोकात्मक फलवर्द्धिपार्श्वस्तव है जिसमें २० उपजाति १ शार्दूलविक्रीड़ित छन्द है। इसका प्रथम श्लोक यह है—

जयामल श्रीफलवर्द्धिपार्श्व पार्श्वस्थनागेन्द्र पृथुप्रभाव।
भावल्लरी चेष्टितदिग्वितान तानर्चयामः स्तुवतेऽत्र ये त्वाम् ॥

दूसरा जीरापल्लीपार्श्वस्तव है जिसमें १४ इन्द्रवज्रा व १ शार्दूलविक्रीड़ित—कुल १५ छन्द प्रयुक्त हुए हैं। प्रत्येक छन्द में यमक अलंकार का प्रयोग भी यथास्थान हुआ है। अधिकतर प्रथम व तृतीय चरणों के अन्तिम अक्षरों की आवृत्ति द्वितीय व चतुर्थ चरण के प्रारम्भ में होती है। प्रथम दो श्लोक उदाहरणार्थ देखिये—

जीरिकापुरपतिं सदैव तं दैवतं परमहं स्तुवे जिनम्।
यस्यनाम जगतो वशंकरं शंकरं जपति मंत्रवज्जनः ॥

नाथतत्तव मुखेन्दुदर्शनं दर्शनं च नयनामृतं स्तुवे ।
येन मे दुरिततापहारिणा हारिणा लसति पुण्यवारिधिः ।।

'द' वर्ण से प्रारंभ होनेवाला एक 'पार्श्वस्तव' है जिसमें १० प्राकृत गाथाएँ हैं। स्तोत्र नवग्रह-स्तुतिगर्भित है। इस प्रकार का प्रयोग भी नितान्त नवीन है। प्रथम दो गाथाओं को देखिए जिनमें प्रथम में सूर्य और दूसरे में चन्द्रमा की स्तुति के साथ पार्श्वनाथ की स्तुति की गई है—

दोसावहारदक्खो नालीयायरवियासगोपसरो ।
रयणत्तयस्सजणओ पासजिणो जयउ जयचक्खू ।।
कयकुवलयपडिबोहो हरिणंकियविग्गहो कलानिलओ ।
विहिआरविन्दमहणो दिअराओ जयइ पासजिणो ।।

'त' वर्ण से प्रारम्भ होनेवाला भी एक ही स्तोत्र है। इसमें ११ इन्द्रवज्रा छन्द प्रयुक्त हुए हैं। यह अष्टप्रातिहार्यमय है। प्रत्येक श्लोक में द्वितीयचरण के शब्दों की चतुर्थचरण में आवृत्ति हुई है। सभंग श्लेष की छटा सर्वथा दर्शनीय है। प्रथम श्लोक इस प्रकार है—

त्वां विनुत्य महिमश्रियाहं पन्नगांकमठदर्पकोषिणम् ।
स्वां पुनामि किमपीनरक्षिता-पन्नगां कमरुदर्पकोपिणाम् ।।

दो उदाहरण और भी देखिये—

तादृशः श्रवणस्तवोत्तमा कारकायवरदेशनाध्वनेः ।
प्रस्थितः क इव पाप्मनां निरा कारकायवरदेशनाध्वनेः ।। ४ ।।
नाकिनामकयुगेन सादरं चामरैर्विषदभागवीज्यसे ।
त्वं न कैर्भव सुखाय मुह्ये चामरैर्विषदभागवीज्यसे ।। ५ ।।

'प' वर्ण से प्रारंभ होनेवाले तीन 'पार्श्वस्तव' हैं जिनमें एक प्राकृत में है जिसमें २२ पद्य हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसमें सम्पूर्ण उवसग्गहर (उपसर्गहर) स्तोत्र की समग्र रूप से पादपूर्ति हुई है। इसका प्रथम पद्य यह है—

पणमिय सुरनपूइया पयकमलं पुरिसपुंडरीय पासं ।
संघवण भत्तिचलणो, भणामि भवभमणभीममणो ।।

अन्तिम पंक्ति में 'भ' व 'ण' अक्षर की आवृत्ति से उत्पन्न चमत्कार सर्वथा दर्शनीय है। उपसर्गहर-स्तोत्र की प्रथम गाथा है—

उपसग्गहरं पासं पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं।
विसहरविसनिन्नासं मंगलकल्लाणआवासं॥

आचार्य जिनप्रभ ने अपने स्तोत्र की पादपूर्ति दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें पद्य में की है—

उपसग्गहरं पासं पणमह नट्ठट्ठकम्मदढपासं।
रोसरिउभेयपासं विणहिय लच्छीतणयवासं॥ २॥
जं जाणइ तं लुक्कं **पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं**।
जो झाइऊण सुक्कं झाणं पत्तो सिवमलुक्कं॥ ३॥
विसहर विसनिन्नासं रोसगइंदाइभयकयविमाणं।
मेरुगिरिसन्निकासं पूरिअ आसं नमह पासं॥ ४॥
मरगयमणितणुभासं **मंगलकल्लाण आवासं**।
ढालियभवसंतापं थुणिमो पासं गुणपयासं॥ ५॥

अन्तिम पद्य में उवसग्गहर-स्तोत्रकार भद्रबाहुस्वामी और साथ ही अपना नाम भी जिनप्रभ ने जोड़ दिया है—

सिरिभद्दबाहुरइयस्स जिणपहसूरिहि मं सपहावं।
संथवणस्स समगस्स विहिय बिबुहाणय पयस्स॥२२॥

दूसरे 'प' वर्ण से प्रारंभ होनेवाले एक अन्य स्तोत्र में ८ उपजाति छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इसकी प्रमुख विशेषता यह है प्रथम व तृतीय चरण के अन्त के अक्षरसमूह की दूसरे व चौथे चरण के प्रारंभ में आवृत्ति की गई है। सभंगश्लेष की छटा दर्शनीय है। इसमें प्रथम व द्वितीय पद्य उदाहरण के लिए पर्याप्त होंगे—

पार्श्वं प्रभुं शश्वदकोपमानंदकोपमानं भववह्निशान्तौ।
आराधतां दत्तनिरंतरायं निरंतरायं पदमाप्तुमीडे॥
तीक्षेजगन्नेत्र महाभयत्र महाभयत्रस्य तवांह्रियुग्मम्।
पुण्यः स एवाऽवसरोऽमराली सरोमरालीव निषेवते यत्॥

तीसरे स्तोत्र का प्रारंभ 'पार्श्वनाथमनघं' अक्षरों से होता है। इसमें ९ छन्द होने का उल्लेख मिलता है।

'स' अक्षर से प्रारंभ होनेवाला एक प्राकृत स्तोत्र। इसमें १२ छन्द हैं। प्रथम ११ आर्या छन्द हैं। अन्तिम वसन्ततिलका नामक छन्द है। इसमें भी प्रथम व तृतीय चरण के कुछ अक्षरों की आवृत्ति द्वितीय व चतुर्थ चरण के प्रारंभ में होती है। एक शब्द बहुधा त्रिधा आवृत्त हुआ है। प्रथम दो छन्द उदाहरण के लिए देखिये—

सयलाहिवाहिजलधर समूहसंहरणचंडपवमाणं।
फलवद्धिपासनाहं संथुणिमो फणय इट्ठफलं॥
विहुयासं विहुयासं विहुयासं पत्तमभिथुणन्ति तुमं।
अमयरया अमयरया अमयरया णुगइखमवयणं॥

स्पष्ट है कि यह भी फलवर्द्धि पार्श्वनाथ का स्तवन है। एक अन्य फलवर्द्धिमण्डनपार्श्वस्तव 'श्री' अक्षर से प्रारम्भ होता है जिसमें ९ छन्द हैं। प्रथम व नवम छन्द संस्कृत में है शेष ७ प्राकृत में। प्रथम छन्द यह है—

श्रीफलवर्द्धिपार्श्वप्रभुमोंकारं समग्रसौख्यानाम्।
त्रैलोक्याक्षरकीर्ति लक्ष्मीबीजं स्तुवेऽर्हताम्॥

इस स्तोत्र के अन्तिम श्लोक में रचनाकाल भी दिया गया है—

विक्रमवर्षे करवसुशिखिकु (१३८२) मिते माधवासितदशम्याम्।
व्यधित जिनप्रभसूरिस्तवमिति फलवर्द्धिपार्श्वप्रभो॥

'श्री' अक्षर से प्रारंभ होनेवाले ४ पार्श्वजिनस्तव और भी हैं। जिनमें एक स्तोत्र बहुत बड़ा है। इसमें ४३ अनुष्टुप् व १ द्रुतविलम्बित कुल ४४ छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इस स्तोत्र की विशेषता यह है कि सभी विषम छन्दों (१,३,५ आदि) में द्वितीय चरण के सभी अक्षरों की आवृत्ति चतुर्थ चरण में हुई है। इसी तरह सम छन्दों (२,४,६ आदि) में प्रथम चरण के अक्षरों की आवृत्ति तृतीय चरण में हुई है। इस स्तोत्र का प्रारंभिक छन्द है—

श्री पार्श्वः श्रेयसे भूयादलितालसमानरुक् ।
अनन्ता संसृतिर्येन दलिताऽलसमानरुक् ॥ १ ॥

दो सम छन्द देखिये—

जिनास्यसारसंसार किं नेदानीं वराक रे ।
जिनास्यसारसं सारमद्य यद्वीक्षितं मया ॥ ८ ॥
कल्याणगिरिधीरे मे त्वयि चेत् परमेश्वर ।
कल्याणगिरिधीरे मे करस्था सर्वसंपदः ॥ १० ॥

इसी तरह दो विषम छन्द—

येन त्वदागमः स्वामिन् स्याद्वादेनोपराजितः ।
निर्णीतः स कुतीर्थ्यानां स्याद् वादे नो पराजितः ॥ ३९ ॥
त्वद्गुणस्तुतिरंऽभोदकान्ते यमकहारिणी ।
भव्यानऽवस्तु विज्ञानां कान्तेयमऽकहारिणी ॥ ४३ ॥

केवल सभंगश्लेष के चमत्कार की दृष्टि से ही यह स्तोत्र महत्त्वपूर्ण नहीं है वरन् भावगुरुता और साथ ही भक्ति-भावना की दृष्टि से भी इस स्तोत्र को आचार्य जिनप्रभ के स्तोत्रों में विशेष स्थान दिया गया है ।

अन्य ३ पार्श्वजिनस्तव छोटे हैं । एक में ६ उपजाति व २ वसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त हुए हैं जिसके प्रत्येक श्लोक के प्रथम व द्वितीय तथा तृतीय व चतुर्थ चरणों में पादान्त यमक है । अपनी समस्त विशेषताओं से उपेत प्रथम छन्द देखिये—

श्री पार्श्वपादानतनागराज प्रोत्सर्पदेनः कफनागराज ।
सतां हृताऽसत् परिणामरागं त्वां संस्तुमः स्थैर्य गुणाऽमराऽगम् ॥

इसी तरह अन्तिम वसन्ततिलका भी दृष्टव्य है—

इत्थं फणीन्द्रसततश्रितपार्श्वनाऽथ
स्त्री वा स्तवं पठति यस्तव पार्श्वनाथ ।
तस्मै स्पृहामवृजिनप्रभवाय नव्या
लक्ष्मीविभर्ति सुमनः समवायनव्या ॥

अन्य पार्श्वजिनस्तव में भी ९ छन्द व्यवहृत हुए हैं—८ अनुष्टुप् व अन्तिम १७ अक्षरों का हरिणीछन्द। सभी छन्दों के द्वितीय चरण के अक्षरों को चतुर्थ में दुहरा कर पादान्त यमक दिखाया है। इसके प्रथम दो छन्द हैं—

श्रीपार्श्वं भावतः स्तौमि महोदधिमगर्हितम्।
उद्धरन्तं जगद्दुखमहोदधिमगर्हितम्॥
दृग्गोचरं भवान् येषां प्रियंगुरुचिरायते।
प्राप्नुवन्ति सुखं नाथ! प्रियं गुरु चिराय ते॥

तीसरे पार्श्वजिन-स्तोत्र में ८ अनुष्टुप् छन्द हैं। प्रत्येक छन्द के प्रथमाक्षरों से आचार्य का नाम (श्रीजिनप्रभसूरयः) बनता है। इस प्रकार अपने नामाक्षरों का प्रयोग करने की आचार्य की सूझ भी अद्भुत है। इसके प्रथम तीन श्लोक देखिये जिनमें 'श्री जिन' अक्षरों का प्रयोग है—

श्री पार्श्वं परमात्मानं त्रैलोक्याभयसाक्षिणम्।
विज्ञानादर्शं सङ्क्रान्तलोकालोकमुपास्महे॥
जिनः त्वन्नाममन्त्रं ये ध्यायन्त्येकाग्रचेतसः।
दुराधामपि श्रेयः श्रियं: संवनयन्ति ते॥
नमस्ते जगतां पित्रे विधात्रे सर्वसम्पदाम्।
सवित्रे भव्यपद्मानामीशित्रे भुवनत्रयम्॥

वीर जिनस्तव

संख्या की दृष्टि से महावीर स्वामी की स्तुति में प्रयुक्त होने वाले वीर जिनस्तवों का तीसरा स्थान है। 'वीर जिनस्तव' १० हैं। जिनमें 'अ' से प्रारम्भ होनेवाला एक, 'क' से प्रारंभ होनेवाला एक, 'घ' से प्रारम्भ होनेवाला एक, 'न' से प्रारंभ होनेवाला एक, 'प' से प्रारम्भ होनेवाला एक, 'स' से प्रारंभ होनेवाला एक, 'व' से प्रारम्भ होनेवाला एक व 'श्री' से प्रारंभ होनेवाले ३ स्तोत्र हैं। इनमें से कुछ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। एक चित्रकाव्यमय है जिनमें कुल २७—२४ अनुष्टुप्, १ वसन्ततिलका व २ शार्दूल विक्रीड़ित छन्द हैं। इसका प्रथम श्लोक है—

चित्रैः स्तोष्ये जिनं वीरं चित्रकृच्चरणं मुदा ।
प्रतिलोमानुलोमाद्यैः खड्गादिश्चाति चारुभिः ।। १ ।।

एकाक्षरपाद और एकाक्षर के उदाहरण देखिये—

लाललालोललीलालं तततातततितात ते ।
ममाममामुममुमा ननानेननननोनम ।।११।।
काकंकि काककंकैकः केकाकोककेकिकम् ।
कककाकुककोकैकः ककुः कौकोंककांककम् ।।१२।।

एक श्लोक में चक्रबन्धचित्रकाव्य में कवि ने अपना नाम भी गुंफित किया है—

भग्नाकृत्यपथो जिनेश्वरवरो भव्याब्जमित्रक्रिया-
दिष्टं तत्त्वविगान[2]दोषरहितैः सू[5]क्तैस्तवैस्तर्पणः ।
जन्माचिंत्यसुखप्र[2]दाः सरचिता[6]रिष्टक्षयो वः सदा
दाता शोभनवादिधीः कजदलायामेक्षणः संविदा ।।

इस स्तोत्र में मुरजबन्ध, गोमूत्रिका, सर्वतोभद्र, रथपद, अर्द्धभ्रम, खड्ग, मुशल, त्रिशूल, हल, धनुः, शर, शक्ति, बीजपूर, हारबन्ध, चामर, चक्र, अष्टदलकमल, षोडशदलकमल आदि चित्रकाव्यों का प्रयोग हुआ है ।

इसी तरह एक दूसरे स्त्रोत्र के अन्तर्गत विविध छन्दों के नाम गर्भित हैं । इसमें २५ विविध श्लोक हैं । प्रथम श्लोक शुद्धविराट् देखिये—

कंसारिक्रमनिर्यदापगाधाराशुद्धविराट्छदच्छविम् ।
छन्दोभिर्विविधैरधीरस्तोष्येऽहं चरमं जिनेश्वरम् ।।

एक अन्य श्लोक देखिये, जिसमें मालिनी नाम आया है—

अतिमहतिभवोर्मिमालिनीह भ्रमन्तो
जननमरणवीच्याघातदोदूयमानः ।
कथमपि पृथुपुण्याः प्राणिनः प्राप्नुवन्ति
प्रवहणमिव केचिच्छासनं तावकीनम् ।।१७।।

एक अन्य स्तोत्र पंचवर्गपरिहारमय है जिसमें २६ श्लोक हैं जिसका प्रारम्भ इस श्लोक से होता है—

स्वः श्रेयससरसीरुहसूरं श्रीवीरं ऋषिवरं सेव ।
सविशेषहर्षरसवशसुरासुरव्यूहसेव्यांऽह्लिशा ॥

एक वीरस्तव में लक्षण प्रयोग मिलते हैं । उसमें १७ श्लोक आये हैं जिसका प्रारम्भ इस श्लोक से होता है—

निस्तीर्णविस्तोर्णभवार्णवं ज्ञै रुत्कर्णमाकर्णितत्रर्णवादम् ।
सुपर्णमंहोहि दमे सुपर्ण श्रीपर्णवर्णं विनुवामि वीरं ॥१॥

समासों के लक्षणों का प्रयोग इस श्लोक में दृष्टव्य हैं—

द्विगोरिव तत्प्रणतस्य संख्या
पूर्वा प्रवृत्तिर्न कुतीर्थिकानाम् ।
विभो बहुव्रीहि समासदत्व-
मन्यार्थ एवोयदधासिवृत्तिम् ॥४॥

एक महावीरस्तव पंचकल्याणकमय है । इसमें ३६ श्लोक व्यवहृत हुए हैं । प्रारम्भ इस श्लोक से होता है—

पराक्रमेणेव पराजितोऽयम्
सिंहः सिषेवे धृतलक्ष्मदम्भः ।
सुखानि वः खानिरयं रमाणां
द्वैमातुरस्तीर्थकरः करोतु ॥

अन्य स्तोत्र

दो स्तोत्र ऋषभदेव से सम्बन्धित है । जिनमें से एक में कान्तत्र-व्याकरण के सूत्रों को गुम्फित किया गया है । इसमें २३ श्लोक हैं प्रथम कुछ श्लोक देखिये जिनमें ग्रथित सूत्रों को रेखांकित किया गया है :

सिद्धोवर्णसमाम्नायः स्तव जिह्वे चिरन्तनः ।
शत्रुञ्जये त्रयल्लेभेऽनन्तसिद्धे यदास्पदम् ॥

दशाहि तीर्थ व्ययक्षनभोगक्षयात्मिकाः स्युः ईविणे चतस्रः ।
श्रद्धालुभिस्तत्र **चतुर्दशादौ स्वराः** कृतार्थी क्रियतेऽत्र शैले ।।
तल्लेप्य बिम्बसहितः शैलेऽत्र स पूज्यते त्रैलोक्यापि ।
अर्हन् **पूर्वो ह्रस्वः** क्रियते येन च भवः **परो दीर्घः** ।।
लोकोपचाराद् ग्रहणसिद्धिः स्यात् क्वापि कस्यचित् ।
सिद्धान्तामृतपूरे तु स्नात्यस्य महिमागिरेः ।।
आवृत्तकालापकनामसंधि-सूत्रैः कवित्वेरिति पुण्डरीकः ।
स्तुतो गिरिः सम्प्रति सन्निधाय मुदास्तुवे श्रीऋषभं जिनन्द्रं ।।

उन्हीं से सम्बन्धित चार युगादिदेव स्तव हैं जिनमें एक अष्टभाषामय है। इसमें ४१ विविध भाषाओं के छन्द व्यवहृत हुए हैं। इस स्तोत्र का प्रारंभ इस संस्कृत आर्या से होता है—

निरवधिरुचिरज्ञानं, दोषत्रयविजयिनं सतां ध्येयम् ।
जगदवबोध निबन्धनमादिजिनेन्द्रं नवीमि मुदा ।।

प्राकृत भाषा का प्रारम्भिक छन्द है :

तमकसिणसप्परवयमो रमोरउल्ला हु ते किलिस्संति ।
तुह सासणापिधं जे कुणंति विविहे तव किलेसे ।। ५ ।।

मागधी भाषा का प्रारंभिक पद्य देखिये :

तुहश्चस्तिदभावस्तं गदप्रंजेशमरपथवज्जं ।
ते यिणकुमदलक्खशवशे मिश्चादिस्टीपदे दिभवे ।। ९ ।।

पैशाचीभाषा का प्रारम्भिक पद्य दृष्टव्य है :

विबुधानरा चिञानत् अनज्ज सामज्जपुज्जतिसपज्जं ।
रंतूणहितयके मे कतसिद्धि कुतं विनीपनय ।।१३ ।।

यह एक अन्य पद्य चूलिकापै-शाची का है :

काठंसि नेहफलिता तुहवतनं सेवते लमा अनरवं ।
हातून फलं कुरु कुनंप्पुग्मं सकलंकमपि च विधुं ।।१७।।

शौरसेनी भाषा का प्रारम्भिक पद्य है—

कुमुदमकधनिदानं ता इह धर्माण विज्जदे भगवं।
चिन्दाविदावनय्येव भोदि पावाण नाध इमा ॥२१॥

पचीसवाँ पद्य समसंस्कृत का प्रथम श्लोक है—

हेमसरोरुहभासं कलिमलकमलालिमंघहिमभासं।
भवभयधूलिमहाबल नाभेय भवंतमभिवन्दे ॥

दस पद्य अपभ्रंश भाषा के हैं जिनमें प्रथम तथा क्रम से उन्तीसवाँ है—

तउ रेहइ अलि सामली चिहुरावलि भुवि पिट्ठि।
निज्जिय रिउबलझाणदुग्गसुहउहणं असिलट्ठि ॥२९॥

चालीसवें संस्कृत श्लोक में कवि का प्राक्तन नाम शुभतिलक बड़े ही कलात्मक ढंग से गुंफित है। देखिये—

नन्दासोरुविशु[1]द्धयोगरसभोन्मीलत्[4] प्रतोषोन्वितं,
शस्तं सौष्ठवभ[2]ग्नमोहरचनं स्त्वं क[5] जहस्तच्छविः।
रुच्याभाश्करति[3]ग्म सिद्धरमणी संक्लृप्तभावः परं,
रंता ज्ञानरमां शमास्तरुष मे तन्याः सुविद्यां चिरम् ॥

अवचूरिकार ने आचार्य का प्राकृत नाम शुभतिलक दिया है। भाषा की विविधता के साथ सहजगंभीर भाव की दृष्टि से यह स्तोत्र जिनप्रभसूरि के स्तोत्र-साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

युगादिदेव ऋषभदेव से सम्बन्धित एक अन्य महत्त्वपूर्ण स्तोत्र शार्दूलविक्रीड़ित छन्द में विरचित है। इसमें ३३ श्लोक हैं। प्रथम श्लोक देखिये—

मेरौ दुग्धपयोधि वाः प्लवमिषाज्जन्माभिषेके ध्रुवं
यत्कीर्तिप्रकराः प्रसस्तुरभितो लोकत्रयीं लङ्घितुम्।
नैव क्वापि कदापि युष्मदपरं स्वामी करिष्याम (?) इ-
त्यङ्गस्पर्शनतः प्रणीतशपथास्तं नाभिसूनुं स्तुमः ॥

इस स्तोत्र में भी भावों की अद्भुत स्रोतस्विनी प्रवहमान है। स्वयं रचयिता ने अन्तिम श्लोक में इस भावगर्भित स्तोत्र को 'सुधीजनश्रोत्र-सुधासुगन्धः' कहा है। देखिये—

सुधीजनश्रोत्रसुधासुगन्धः शार्दूलविक्रीड़ितवृत्तबन्धः।
सतामयं भावरिपुद्विषेषु शार्दूलविक्रीड़ितमातनोतु ॥३३॥

शेष तीन ऋषभदेव से सम्बन्धित स्तोत्र छोटे हैं। प्रत्येक में ११ पद्य हैं। इनमें एक पद्य 'अल्लाल्लाहि' शब्दों से प्रारंभ होता है और फारसी भाषा में है। प्रथम पद्य देखिये—

अल्लाल्लाहि तुराहं कीम्बरु सहियानु तुं मराष्वांद।
दुनीयक समेदानइ बुस्मारइ बुध चिरा न हत्र ॥ १ ॥

दूसरा प्राकृत भाषा में है। जिसका प्रथम पद्य देखिये—

नयगमभंगपहाणा विराहि आराहि आवि सपमाणा।
भवसिवदाणसमाणा जिणवरआणा चिरं जयतु ॥ १ ॥

अन्तिम पद्य में रचयिता ने अपना नाम भी दिया है—

इइ विण्णत्तो जिणपहु ! **जिणथहसूरीहि** जगगुरु पढमो।
विण्णत्तीइ पसायं निव्विग्घं कुणउ अम्हाणं ॥ १ ॥

उक्त स्तव का नाम रचयिता ने ऋषभदेवाज्ञास्तव दिया है। अन्तिम युगादिजिनस्तव में भी ११ श्लोक है। ये सब अनुष्टुप् छन्द में हैं। इस स्तोत्र का यह प्रथम छन्द है—

अस्तु श्रीनाभिभूर्देवो विपत्त्रासनकर्मठः।
पवित्रः पोषयेन्नाकं सुधर्माधिपतिः श्रिये ॥

अजितजिन से सम्बन्धित केवल एक स्तोत्र मिलता है। संभव है जिनप्रभ के अप्राप्त स्तोत्रों के उपलब्ध होने पर और भी मिल सकें। इस स्तोत्र में २१ श्लोक हैं। प्रथम बीस वसन्ततिलका छन्द हैं और अन्तिम शार्दूलविक्रीड़ित है। यह स्तोत्र भी बड़ा चमत्कार पूर्ण है। इसमें प्रत्येक

दो-दो चरणों में तुक मिलाई गई है। अन्त्यानुप्रास का ऐसा सफल प्रयोग संस्कृत साहित्य में कम ही मिलता है। इस श्लोक का प्रथम श्लोक देखिये—

विश्वेश्वरं मथितमन्मथभूपमानं
देवं क्षमातिशयसंश्रितभूपमानम्।
तीर्थाधिराजमजितं जितशत्रुजातं
प्रीत्या स्तवीमि यमकैर्जितशत्रुजातम्॥

अन्तिम चार अक्षरों की आवृत्ति दूसरे चरण में होने के कारण यह यमक तो है ही। कहीं संपूर्ण प्रथम चरण तृतीय चरण में आवृत्त हुआ है जिसमें सभंगश्लेष की छटा अपूर्व है। तीसरा श्लोक देखिये—

आनन्दकंदलितमानसदैवतेन
स्तोतव्ययः सुरपुरन्ध्रिकटाक्षपाशः।
आनन्दकं दलितमानसदैवतेन
त्वामेकवीरमपहाय न मन्मथोऽन्यम्॥ ३॥

अष्टम श्लोक में चारों चरणों में प्रथमचरण के शब्द ही दोहराये गए है फिर भी भावप्रेषण में किसी प्रकार की कमी न आने पाई है। देखिये—

सत्यादराजितसमानवकामदारो
सत्यादराजितसमानवकामदारो।
सत्यादराजितसमानवकामदारो
सत्यादराजितसमानवकामदारो॥ ८॥

यमक का चरमचमत्कार वहाँ देखने को मिलता है जहाँ सारा १२ वाँ श्लोक पुनः तेरहवें के रूप में दोहराया गया है। दोनों श्लोकों का अक्षर विन्यास सर्वथा दर्शनीय है—

संपन्नकामलसदागमनाभिभूत
भावारितापचितिकारसभारती ते।

भव्याय देहि तरसा तरसा प्रसिद्ध
भूमानमत्रभवतीः कमलायताक्ष ॥ १२ ॥

तथा—

संपन्न कामल सदागमनाभिभूत
भावारितापचिति का रसभा रती ते ।
भव्यायदेहितरसा तरसा प्रसिद्ध
भूमानमत्र भवतीः कमलायताक्ष ॥ १३ ॥

अन्तिम श्लोक में जिनप्रभ ने अपना नाम तो दिया ही है साथ ही 'आनन्दनिष्यन्दी' स्तोत्र को पापनाशक भी कहा है—

यं त्रैलोक्यपितस्तव स्तवमिमं सन्दृब्धवान् मुग्धधी—
रप्याचार्यजिनप्रभः श्रवणयोरान्दनिष्यन्दिनम् ।
भक्तिव्यक्तितरंगरंगमनसां पुंसाममुं सादरं
पापं पापठतां प्रयाति विलयं संसारनामारिपुः ॥ २१ ॥

इसीतरह का एक अन्य चमत्कारपूर्ण स्तोत्र 'अरजिनस्तव' है । इसमें १४ छन्द हैं प्रथम तेरह पंचदशाक्षरी श्लोक हैं । जिनमें ५ नगण एक साथ आये हैं अन्तिम शार्दूलविक्रीड़ित श्लोक है । लेखक ने पुष्पिका में इस स्तव को केवलाक्षरमय कहा है जिसमें किसी भी प्रकार की मात्रा का प्रयोग नहीं हुआ है । बिना भाषा पर असाधारण अधिकार प्राप्त हुए ऐसा प्रयोग किया जाना असंभव है । माघव और भारवि ने एकाक्षर व द्व्यक्षर श्लोक लिखे हैं परन्तु वे अर्थ की दृष्टि से अत्यन्त क्लिष्ट हो गए हैं । वहाँ जिनप्रभ का प्रयोग अद्भुत है जिसमें किसी भी तरह की अर्थ की हानि न होने पायी है । इसका प्रथम श्लोक है—

जय शरदशकलदशहयवदन
जय हतजगदसहनमदमदन ।
जय नतशमगतशमनजकदन
जय भगवदरपरमपदसदन ॥ १ ॥

इस सारे स्तवों में अनुप्रासों का प्रयोग अपूर्व है। इस प्रकार का सफल प्रयोग कदाचित् मात्राओं के अभाव के कारण ही हो पाया है। अन्त्यानुप्रास की छटा भी निराली है। छेका, वृत्ति व अन्त्य अनुप्रासों को अपनी समस्त विशेषताओं के साथ नीचे के श्लोकों में देखिये—

नतशतमखतमखलजनमदर
गमयपरमपदमभयदसदर ।
नवनवभववनभवदशमगम
शकलनगजकलगतदनवगम ।। ७ ।।

अनुप्रास के साथ यमक का प्रयोग इस श्लोक में दर्शनीय है—

समतसतममहपरमतकलस
गणधरगणधरशमरसकलस ।
भवदभवदपदलयलसदवम्
वनमवनमयसहनमहनवम ।। १३ ।।

नेमिनाथ से सम्बन्धित भी एक ही स्तोत्र है। यह भी बड़ा ही चमत्कारपूर्ण है। इसमें २० विविध प्रकार के छन्द व्यहृत हुए हैं। प्रथम छन्द आर्या है। दूसरे से २० वें तक क्रमशः वंशस्थ, सुनन्दिनी, रथोद्धता, उपजाति, अनुष्टुप्, स्रग्विणी, द्रुतविलम्बित, रुचिरा, वसन्ततिलका, मृदंग, स्वागता, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीड़ित, स्रग्धरा, वियोगिनी, औपच्छन्दिक, पुष्पिताग्रा तथा मालिनी हैं। इस स्तोत्र का नाम क्रियागुप्त नेमिजिनस्तव है। इसके नाम से ही प्रकट होनेवाली विशेषता यह है कि इसके प्रत्येक श्लोक में कोई क्रिया गुप्त रक्खी गई है जिसका रचयिता ने अलग से उल्लेख कर दिया है। इसका प्रारम्भ निम्न आर्या छन्द से होता है—

श्रीहरिकुलहीराकर, वज्रमणिर्वज्रपाणिनाप्रणतः ।
त्ववद्यमुक्तनेमे, प्रणमुषां शेमुषीमशुभाम् ।।

इस श्लोक में आया हुआ 'अवद्य' शब्द अगले श्लोक की क्रिया के साथ प्रयुक्त होता है पर वह वहाँ लुप्त है। देखिये—

।।अवद्य।। मयिप्रसाद प्रवणं कृपानिधे
विधेहि शैवेय निजं मनस्तथा ।
यथाजगन्नाथमधुव्रतव्रतं
भवे भवे तारक पादपद्मयोः ।।

उक्त श्लोक का भवे रूप अगले श्लोक की क्रिया के साथ प्रयुक्त होता है जहाँ वह लुप्त है—

।।भवे।। नयेन नेमे यदुवंशमौक्तिक-
श्रिया निवासस्तव पादपंकजम् ।
दुःखोर्मिसंघट्टविघट्टितात्मना
तेनाति गंभीरतमे भवाम्बुधौ ।।

इसका 'आति' अगले श्लोक की क्रिया के साथ प्रयुक्त होता है । इसी तरह क्रम चलता गया है । संस्कृतप्रेमी राजाओं की विद्वन्मंडली में इस प्रकार के शब्द-चमत्कार बहुधा दिखाये जाते थे । जिनप्रभ ने उसी को लेकर एक स्तोत्र की रचना कर दी । यद्यपि रसवादी आलोचकों को इस प्रकार के चमत्कार कभी प्रिय नहीं रहे । फिर भी यह कहना ही पड़ता है कि बिना भाषा पर असाधारण अधिकार प्राप्त किए कोई भी लेखक इस प्रकार के चमत्कारों की सृष्टि नहीं कर सकता । इस स्तोत्र का अन्तिम श्लोक देखिये जिसमें 'अय' क्रियांश गुप्त है जो इसके पहले वाले श्लोक में आया है—

।। अय ।। निखिलजगतां गोप्ता गुप्तक्रियास्तव सूत्रणा—
दितिकृतनुति सानन्दं श्रीजिनसूरिभिः ।
भवतु भवतां भेत्तुं भूयो भवभ्रमसंभवं
भयमभयदो भीमः श्रीमच्छिवातनयः प्रभुः ।। २० ।।

चन्द्रप्रभ स्वामी से सम्बन्धित ३ स्तोत्र प्राप्य हैं । जिनमें एक अत्यन्त छोटा है जिसमें ५ अनुष्टुप् छन्द हैं । प्रत्येक दूसरे व चौथे चरण में अन्त्यानुप्रास का सफल प्रयोग मिलता है । यमक व अन्त्यानुप्रास का समन्वित-रूप छोटा होते हुए भी स्तोत्र को चमत्कारपूर्ण बना देता है । पहला श्लोक यह है—

देवैर्य स्तुष्टुवे तुष्टैः सोमलाञ्छितविग्रहः ।
दद्याच्चन्द्रप्रभः प्रीतिं सोमलाञ्छितविग्रहः ॥

इस स्तोत्र का अन्तिम श्लोक देखिये—

पातु गीर्वाः कृताविद्यो परमा कमलासना ।
यत् प्रभो वा जनैर्लेभे परमा कमलासना ॥ ४ ॥

दूसरा स्तोत्र चन्द्रप्रभ स्वामी के चरित्र को चित्रित करता है। यह प्राकृत भाषा में लिखा गया है। इसमें २२ प्राकृत पद्यों में चन्द्रप्रभ का जीवन चरित उपस्थित किया गया है। इस स्तोत्र का प्रथम पद्य है—

चंदप्पह ! चंदप्पह ! पणमिय चरणारविंदजुयलं ते ।
भविय सवणामयपिवं भणामि तुह चेव चरियलवं ॥

चन्द्रप्रभ के जन्मस्थान व मातापिता का नाम इस पद्य में मिलता है—

तत्तो इह भरहद्धे चविडं चंदाणणाय नयरीए ।
महसेनराय-पणयिणि-लक्खणदेवीई कुच्छंसि ॥ ४ ॥

चन्द्रप्रभ से सम्बन्धित तीसरा स्तोत्र षड्भाषामय है। इसमें विविध-भाषामय १३ पद्य हैं। प्रथम दो संस्कृत श्लोक हैं। स्तोत्र का प्रारंभ निम्न श्लोक से होता है तथा प्रथम व द्वितीय तथा तृतीय व चतुर्थ चरण में तुक मिलाई गई हैं—

नमो महसेननरेन्द्रतनूज जगज्जनलोचनं भृङ्ग सरोज ।
शरद्भवसोमसम द्युतिकाय दयामय तुभ्यमनन्तसुखाय ॥

इस प्रकार कीं तुक अन्य भाषाओं के पद्यों में भी मिलती है। तीसरा व चौथा पद्य प्राकृतभाषा के हैं। उनमें तीसरा देखिये—

जय निरसियतिहुयणजन्तु भंति जय मोहमहीरुहदलनदंति ।
जय कुन्दकलियसमदंतपंति जय जय चन्दप्पहवंदकंति ॥

पाँचवाँ पद्य शौरसेनीभाषा का है—

विगददुहहेदु मोहारिकेदूदयं
दलिदगुरुदुरिदमध विहिदकुमदक्खयं ।
नाधतं नमदि जोसदहनदवत्सलं
लहदि निच्चदि गति सोददं निम्मलं ॥

छठा पद्य उक्त समस्त विशेषताओं से समन्वित मागधी भाषा का है—

असुल सुलविसलनयनाय सेविनपदे
नमिल जय जंतु तुदि दिन्नसिवपुलपदे ।
चलन पुलनिलद संसालिसलसीलुदे
देहि महसामि तं सालि सासदपदे ॥

सातवाँ पैशाचीभाषा का पद्य है—

तलिताखिलतोसतया सतनं, मदनानलनीलमनानगुणं ।
नलिनारुण पाततलां नमने, जिन नो इध तं स शिवं लभते ॥

आठवाँ चूलिका पैशाची भाषा का पद्य है—

कलनालिकनातुलतप्पहलं, चलनीकल चालुयशप्पसलं ।
ललनाचनकीतकुनंलुचिलं, चिनलावमहंसमलामि चलं ॥

नवें व दसवें पद्य अपभ्रंश भाषा के हैं । ये हिन्दी भाषा के सोरठे के पूर्वरूप हैं । हिन्दी का प्रारंभिक रूप भी इनमें देखा जा सकता है । एक पद्य देखिये—

सासयसुक्खनिहाणु, नाह न दिट्ठो जेहिं नऊं ।
पुन्न विहूणउ जाणु, निफल जम्मु तिह नरपसुहं ॥

शेष तीन पद्य सम संस्कृत भाषा के है । अन्त्यानुप्रास के सौन्दर्य की दृष्टि से ही नहीं, प्रवाह की दृष्टि से भी इनकी भाषा द्रष्टव्य है । एक श्लोक देखिये—

हारिहासहरहास कुन्दसुन्दरदेहाभय
केवलकमलाकेलिनिलय मंजुलगुणगणमय ।

कमलारुणकरचरणचरणभरधरणधवलबल—
सिद्धिरमणिसंगमविलासलालसमलमवदल ॥११॥

प्रवाह की दृष्टि से इसकी भाषा जयदेव की प्रांजल सुमधुर पदावली की याद दिलाती है। जयदेव के गीत गोविन्द की भाषा को देखने से विश्वास होता है कि इस प्रकार की ललितभाषा की अवश्य ही कोई सुदीर्घ परम्परा रही होगी। जिनप्रभ के सारे स्तोत्र मिल सकें तो अवश्य ही कुछ उनमें ऐसे मिल सकते हैं जो इस परम्परा की शृंखला में कड़ी का काम दे सकें।

शान्तिनाथ से सम्बन्धित तीन स्तोत्रों से हम परिचित हैं। इनमें एक 'शान्तिनाथाष्टक' फारसी भाषा में लिखा गया हैं। इनमें ९ पद्य हैं। इसका प्रथम पद्य देखिये—

अजिकुहकाफुजनूविशहरिहथिणापुरगो—
वनिपात साहि त्रिससेणु खिम्मिति ओ राया जेवनि
कौम्यो ऐरादेवि तविहि सीतारामानइ
जुजिय किसू हरिषासदिगरहियपियरादान इ
आंदिगरिरोजिषु फूसिषु सेदरिनिगार खानैनिषो
छारिदहष्वावि अह संदिबइ आखरि सौविन इह मो।

छप्पय छन्द में फारसीभाषा का उक्त प्रयोग अनूठा है। अन्तिम पद्य में जिनप्रभ ने समकालीन दिल्लीश्वर मुहम्मद (तुगलक) का नाम भी दिया है, जिसपर जिनप्रभ का अत्यन्त प्रभाव पड़ा था—

अशितेरीषमुहम्मद सनखमसचति सईन सित्तमिय।
फितरीदीशशिमिसराकउदां सुदौलति वामी॥

दूसरे 'शान्तिजिनस्तवन' में २१ श्लोक हैं। जिनमें प्रथम २० अनुष्टुप् छन्द हैं व इक्कीसवाँ शार्दूलविक्रीड़ित है। प्रत्येक छन्द के द्वितीय चरण को चतुर्थ में दोहराया गया है। इस प्रकार यमक व अन्त्यानुप्रास का प्रयोग हुआ है। प्रथम छन्द देखिये—

श्री शान्तिनाथो भगवानष्टापदसमानरुक् ।
बिभ्रद् गुणान् मया स्तोता-नष्टापदसमानरुक् ।।

भावगौरव की दृष्टि से अन्तिम छन्द भी द्रष्टव्य है—

स्तुत्वा त्वामिति मार्गये मुहुरिदं श्रीनर्तकीनर्तने
नाट्याचार्य जिनप्रभंजनमहाविघ्नाम्बुदाच्छादने ।
धत्तां संततमेव तावकगुणग्रामाभिरामस्तव-
प्रज्ञापारमितामपारमहिम प्राग्भारमद् भारती ।। २० ।।

तीसरा स्तोत्र अभी तक नहीं मिल सका। इसमें २४ श्लोक हैं। यह भी बड़ा चमत्कार पूर्ण है। इसका प्रारंभ 'शृंगार भासुर सुरासुर' अक्षरों से होता है।

एक स्तोत्र मुनिसुव्रत से सम्बन्धित है। यह संस्कृत भाषा में है। इसमें इकतीस श्लोक हैं। अभी तक मिला नहीं है। प्राप्य सूचनानुसार यह भी बड़ा ही चमत्कारपूर्ण है। इसका प्रारंभ 'निर्माय निर्माय गुणर्द्धि' शब्दों से हुआ है।

आचार्य जिनप्रभ द्वारा रचित ३ गौतम स्वामी से सम्बन्धित स्तोत्र हैं। इनमें से एक 'गौतमाष्टक' है जिसमें ९ अनुष्टुप् छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इसका प्रथम श्लोक निम्न है—

ॐ नमस्त्रिजगन्नेतुः वीरस्याग्रिमसूनवे ।
समग्रलब्धिमाणिक्यरोहणायेन्द्रभूतये ।

दूसरे 'गौतमस्तवन' में २१ विविध प्रकार के संस्कृत छन्द व्यवहृत हुए हैं। इसमें पहला शार्दूलविक्रीडित है। दूसरे से सतरहवें तक उपजाति छन्द हैं। अठारहवाँ वियोगिनी, १९वाँ वसन्ततिलका, २० वाँ रथोद्धता व २१ वाँ शिखरिणी छन्द है। इस स्तोत्र का प्रारंभिक श्लोक देखिये—

श्रीमन्तं मगधेषु गौर्वर इति ग्रामोऽभिरामोऽस्ति यः
तत्रोत्पन्नमसन्नचित्तमनिशं श्रीवीरसेवा विधौ ।

ज्योतिः संश्रय गौतमान्वयवियत्प्रद्योतनद्योमणिम्
तपोत्तीर्ण सुवर्णवर्णवपुषं भक्त्येन्द्रभूतिं स्तुवे ॥

तीसरा 'गौतम स्तोत्र' प्राकृत भाषा के २५ पद्यों में निबद्ध है। इस स्तोत्र में गौतम स्वामी का जीवन चरित बड़े ही सुन्दर शब्दों में उपस्थित किया गया है। भाषा बड़ी ही सुन्दर व सरस है। भावगर्भित भाषा का परिचय इन प्रारंभिक दो पद्यों में मिलेगा—

जम्मपवित्तियसिरिमगहदेस अवयंस गुव्वरगामं।
गोयमगुत्तं सिरिइंदभूइगणहारिण नमिभो॥
वसुभूइ कुलविभूषण ! जिट्ठाउडुजाय ! कंचणच्छाय।
पुहवीउअरसरोरुहमराल ! तं जयसु गणनाह॥

अन्तिम पद्य में जिनप्रभ ने अपना नाम भी दिया है—

नमिरसुररायसेहरचुंबिअपय ! संथुओसि इअ भयवं।
जिणपह मुणिंद। गोयम मह उवरि पसीअ अविसामं॥२५॥

आचार्य जिनप्रभ ने एक स्तोत्र अपने गुरु जिनसिंहसूरि की स्तुति में भी लिखा है। इस स्तोत्र को लेखक ने 'यमकस्तबकित' कहा है। अनुप्रासों की छटा तो दर्शनीय है ही। कहीं प्रथम चरण के शब्दों की आवृत्ति तृतीय चरण में हुई है तो कहीं द्वितीय चरण को चतुर्थ में दोहराया गया है। प्रथम श्लोक देखिये—

प्रभुः प्रदधान्मुनिपक्षिपंक्ते-
नगारिरागोपचितिं सदानः।
समुद्वहन् श्रीजिनसिंहसूरि-
र्नागारिनागोपचितिं स दानः॥

एक अन्य श्लोक देखिये जिसमें प्रथम चरण के अक्षरों की आवृत्ति तृतीय चरण में हुई है—

योगेन धीरोचित माननीय
श्रियस्तवोचे शशिनोपमानम्।

योगेन धीरोचित माननीय
प्रख्यातमूर्ख तमुदाहराम: ॥१०॥

अन्तिम छन्द भी द्रष्टव्य है—

श्रीमज्जिनेश्वरयतीश्वरपादपद्म
श्रृंगारभृङ्गकरणिर्जिनसिंहसूरिः ।
इत्थं स्तुतोऽस्तु यमकैः: शमकैरवेन्दु-
रानन्दकन्दलनदुर्ललितो नतानाम् ॥१३॥

एक अन्य स्तोत्र **सुधर्म स्वामी** से सम्बन्धित है। इसमें २१ त्रिविध प्रकार के छन्द हैं। वे क्रमशः स्वागता, इन्द्रवज्रा, शार्दूलविक्रीड़ित द्रुत-विलम्बित, उपचित्रा, वैश्वदैवी, रुचिरा, शालिनी, शिखरिणी, गीति, इन्द्र-वंशा, आर्या, अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, चण्डवृष्टिदण्डक, मंजुभाषिणी, माल-भारिणी, अपरान्तिका, रथोद्धता, स्रग्धरा व हरिणी हैं। स्तोत्र का प्रारंभ इस श्लोक से हुआ है—

आगमत्रिपथगा हिमवन्तं संसृतेर्नत समूहमवन्तम् ।
नौ समानमभिनौमि सुधर्म-स्वामिनं महति मोहपयोधौ ॥

जिनप्रभ केवल छोटे श्लोक लिखने में ही सिद्धहस्त न थे वरन् बड़ा से बड़ा छन्द भी साधिकार लिखने में समर्थ थे। उनके २७ अक्षरों के चण्डवृष्टिदण्डक को देखने से इस विषय में कोई सन्देह नहीं रहता।

जनुरभजत फाल्गुनीपूत्तरासु प्रधानद्विजश्लाघनीयाऽग्निवैशायना-
भिजनजलधिचन्द्रमाश्चण्डमतिण्डतुल्यप्रतापाभिभूताभियातप्रभः ।
अधिगतवति वर्द्धमाने जिनेन्द्रे शिवश्री परीरम्भलीलां च यः पादपो-
पगमनमुपगम्य वैभारशैले द्विपक्षीमवापाऽपवर्गं स जीयाद्भवान् ॥१५॥

एक स्तोत्र मंगलाष्टक के नाम से है जिसमें ८ अनुष्टुप् छन्द हैं। प्रत्येक श्लोक के चतुर्थ चरण के अन्त में 'मंगलम्' शब्द आया है जो वल्लभाचार्य के मधुराष्टक के 'मधुरं' शब्द से किसी भी तरह कम प्रभाव-

शाली नहीं है। इस स्तोत्र में बड़े ही विनयपूर्वक श्रद्धानत होकर जिनप्रभ के भक्ति-आपूरित हृदय ने इष्टदेव को भावसुमन अर्पित किए हैं। किसी तरह का चमत्कार न होते हुए भी भावगरिमा के कारण यह जिनप्रभ के श्रेष्ठ स्तोत्रों में गिना जा सकता है। स्तोत्र का प्रारंभ इस श्लोक से हुआ है—

जितभावद्विषां सर्वविदां तत्त्वार्थदर्शिनम्।
त्रैलोक्यमहितांह्रीणामर्हतामस्तु मंगलम्॥

अन्तिम श्लोक में जिनप्रभ ने श्लेष का आश्रय लेकर अपना नाम उल्लिखित किया है—

मंगलस्तोत्रमंगल्यप्रदीपस्यास्य दानतः।
येऽर्चयन्ति जिनान् भक्त्या ते स्युः प्राप्तजिनप्रभाः॥

दो पंचपरमेष्ठि स्तव हैं। प्रथम स्तोत्र में ५ अनुष्टुप् छन्द व्यवहृत हुए हैं। इस स्तोत्र का प्रारंभिक श्लोक यह है—

स्वः श्रियं श्रीमदर्हन्तः सिद्धाः सिद्धपुरीपदम्।
आचार्याः पञ्चधाऽऽचारं वाचकाः वाचना वराम्॥

उपर्युक्त स्तोत्र के अन्तिम श्लोक की तरह इस स्तोत्र के अन्त में भी जिनप्रभ ने श्लेष का आश्रय लेकर अपना नाम उल्लिखित किया है—

मंत्राणामादिमं मंत्रं तन्त्रं विघ्नौघनिग्रहे।
ये स्मरन्ति सदैवेनं ते भवन्ति जिनप्रभाः॥ ५॥

दूसरे पंचपरमेष्ठि स्तव में ७ आर्या छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इस स्तोत्र की प्रथम आर्या है—

परमेष्ठिनः सुरतरूनिवनुतविदितत्रिविष्टपावस्थान्।
पंचापि सदा पत्रान् सुमनःप्रियसौरभान् सफलमुक्तीन्॥

एक 'पंचनमस्कृतिस्तव' है। जिसमें ३३ श्लोक प्रयुक्त हुए हैं। प्रथम ३१ अनुष्टुप् छन्द हैं तथा अन्तिम २ शार्दूलविक्रीड़ित छन्द हैं। इस स्तोत्र

में 'पंचनमोकार' मंत्र व प्रक्रिया की महत्ता बतलाई गई है। स्तोत्र का प्रारंभ इस श्लोक से होता है—

प्रतिष्ठितं तमः पारेवाग्वर्तिवैभवम्।
प्रपंचवेदसः पंच नमस्कारमभिष्टुमः॥

'पंचनमोकार' की महत्ता के कुछ अन्य श्लोक देखिये—

अहो पंचनमस्कारः कोऽप्युदारो जगत्सु यः।
सम्पदोऽष्टौ स्वयं धत्ते दत्तेऽनन्तास्तु ताः सताम्॥ २॥
स्मृत्वा पंचनमस्कारं प्रविष्टायास्तमोगृहम्।
घटन्यस्तो महासत्याः पन्नगः पुष्पमाल्यभूत्॥२५॥
एष माता पिता स्वामी गुरुर्नेत्रं भिषक् सखा।
प्राणत्राणं गतिर्द्वीपः शान्तिर्पुष्टिर्महन्मह॥२८॥

एक 'पञ्चकल्याणकस्तव' है जिसमें ८ श्लोक हैं। इस स्तोत्र का प्रारंभिक वंशस्थ छन्द यह है—

निर्लिपलोकायितभूतलं श्रिया
नयन्मुदं नैरयिकानपि क्षणम्।
त्रिलोकलोकस्य रतेः प्रपंचकं
जिनेन्द्रकल्याणकपंचमं स्तुमः॥

अन्तिम श्लोक में लेखक ने अपना नाम बड़े ही कौशल से गुंफित किया है—

इत्याहतस्त्रिभुवनप्रभुसत्क पंच-
कल्याणवज्रकवचं हृदि यो बिभर्त्ति।
शस्त्राणि ते जिततराण्यपि मोहराजः
सौभाग्यभाग्ययुजि न प्रभवन्ति तस्मिन्॥ ८॥

एक अन्य स्तोत्र 'द्वित्रिपंचकल्याणकस्तव' है। इसमें १५ श्लोक हैं। सभी अनुष्टुप् छन्द हैं। इसका प्रथम छन्द है—

पद्मप्रभप्रभोर्जन्म गर्भाधानं च नेमिनः ।
भवार्तिं कार्तिक श्याम द्वादश्यां लुम्पता मम ।।

इस प्रकार पञ्चकल्याणमहोत्सवों की तिथियों के नामों की गणना हुई है । अन्तिम श्लोक में लेखक का नाम भी दिया गया है ।

एक स्तोत्र का नाम अर्हदादि स्तोत्र है । इसमें ८ श्लोक हैं । जिनमें प्रथम दो मन्दाक्रान्ता छन्द हैं । पहला श्लोक देखिये—

मौनेनोर्वीं व्यहृत परितो वत्सराणां सहस्रं
यो निर्माणश्चरणयुगलं भव्यमालोपकारी ।
अर्हन्नुत्तारयतु हृदयात्स स्वकीयं कलानां
यो निर्माणश्चरणयुगलं भव्यमालोपकारी ।।

इस श्लोक में सम्पूर्ण द्वितीय चरण की आवृत्ति चतुर्थ चरण में हुई है । प्रसन्न यमक का अन्यत्र भी प्रयोग द्रष्टव्य है—

शिवरतोवरतोषवशान्नतो-मघवताऽध्रवतामतिदूरगः ।
अमदनो मदनोदनकोविदः शममलं मम लंभयताज्जिनः ।। ६ ।।
अविकलं विकलंकधिया सुखं विदधतं दधतं जगदीशिता ।
अकलहं कलहंसगतिं श्रये जिनवरं नवरंगतरंगितः ।। ७ ।।

एक अन्य स्तोत्र 'वीतरागस्तव' है । इसमें १६ उपजाति छन्द प्रयुक्त हुए हैं । इस स्तोत्र का प्रारंभिक श्लोक है—

जयन्ति पादा जिननायकस्य
दोषापहा ध्वस्ततमोविकाराः ।
रवेरिवाश्चर्यमतापकाश्च
न कौशिकक्लेशकराः खराश्च ।।

किसी प्रकार के चमत्कार का आवरण न होने पर भी 'वीतरागस्तव' भाव की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट स्तोत्रों में गिना जाता है । अन्तिम श्लोक में लेखक का नाम भी है ।

एक अन्य स्तोत्र का नाम प्राभातिक नामावली है। इहमें पहला श्लोक वसन्ततिलका है जिसमें जिनसिंहसूरि की स्तुति है। स्तोत्र के शेष अंश में जिनाचार्यों व तीर्थंकरों के नाम गिनाए गये है। नामों में ५ पाण्डवों व सीता आदि सतियों को भी गिनाया गया है। प्रथम श्लोक यह है—

सौभाग्यभाजनमभंगुरभाग्यभंगी
संगीतधाम निजधाम निराकृतार्कम्।
अर्चामि कामितफलं हृति-कल्पवृक्षं
श्रीमन्तमस्तवृजिनं जिनसिंहसूरिम्॥

अन्त में अपने गुरु परम्परा पट्टावली दी है।

एक स्तोत्र वीरजिन की 'विज्ञप्ति' के रूप में इसी नाम से मिलता है। यह प्राकृत भाषा में लिखा गया है। इसमें कुल ३५ पद्य हैं। भावों की दृष्टि से यह बड़ा ही मधुर व मनोरम स्तोत्र है। इसका प्रथम पद्य यह है–

सिरिवीरराय देवाहिदेव
सव्वनु जणिय जय रिक्ख।
विन्नवणिज्ज जिणेशर
विन्नति मुज्झ निसुणेसु॥

एक स्तोत्र, जिसे स्वतंत्र ग्रन्थ भी गिनाया गया है, हीयाली है। 'हीयाली' शब्द का तात्पर्य दृष्टिकूट या पहेली है। स्तोत्र-साहित्य में इस प्रकार का प्रयोग अनूठा है। यह अपभ्रंश भाषा में है। अभी तक यह अधूरा ही मिला है। पूरा प्राप्त होने पर अमीर खुसरो की पहलियों की परम्परा की एक कड़ी मिल सकती है। इसका पहला पद्य देखिये—

अकुलु अमूलुअ जोणी संभवु निर्मल वण्णु सो दीसइ।
हरिहर बंभु न सिद्धिनु गोरखु इंदु चंदु न सलीसइ॥

इस प्रसंग में चार पद्य हैं। आगे एक अपूर्ण पहाड़ीराग में हीयाली और मिलती है जिसका प्रथम पद यह है—

चारि चलण चउ सवण चउरभुज बंधुन करइ पचारि ।
बूझहु सकल सयाणा पंडित कासु कहउँ सा नारि ।।

यह आदिकालीन हिन्दी भाषा का रूप समझने के लिए भी अधिक प्रामाणिक सिद्ध हो सकती है ।

जिनप्रभसूरि द्वारा विरचित ६ स्तोत्र ऐसे हैं जिनमें विभिन्न तीर्थ स्थानों के नाम आये हैं । उनमें एक 'तीर्थमालास्तव' प्राकृत में है जिसमें १२ पद्य हैं । सारे स्तोत्र में अनेक जैनतीर्थों के नाम गिनाए गये हैं । इस स्तोत्र का प्रारंभिक पद्य यह है--

चउविसपि जिणिंदे, सम्मं नमिऊणाइसरणत्थं ।
जत्ताऽऽराहिय तित्थं नाम संकित्तणं कुणमह ।।

दूसरा 'तीर्थयात्रास्तोत्र' है जिसमें २७ जैन तीर्थ स्थलों के नाम आये हैं । कुल ९ पद्य हैं । भाषा इसकी भी प्राकृत ही है । प्रथम पद्य देखिये जिसमें शत्रुंजयतीर्थ व उज्जयंत शैल के नाम आये हैं—

सिरि सत्तुंजयतित्थे रिसहजिणं पणिवयामि भत्तीए ।
उज्जितसेल सिहरे जायवकुलमंडणं नेमिं ।।

तीसरा मथुरा-यात्रा स्तोत्र है जिसमें मथुरा-क्षेत्र के तीर्थस्थलों व जैन विग्रहों का उल्लेख आया है । इसमें १० उपजाति छन्द व्यवहृत हुए हैं । प्रथम छन्द देखिये—

सुराचलश्रीजितिदेवनिर्मिते स्तूपेऽभिरूपे वरदो कृतास्पदौ ।
सुवर्णनीलोपलकोमलच्छवि सुपार्श्वपार्श्वौ मुदिता स्तविमि वाम् ।।

चतुर्थ स्तोत्र में श्रीदेव द्वारा विनिर्मित मथुरास्तूप की स्तुति है । इसमें केवल चार श्लोक हैं । प्रथम श्लोक है—

श्रीदेवनिर्मितस्तूपश्रृंगारतिलकश्रियौ ।
सुपार्श्वपार्श्वतीर्थेशौ क्लेशं नाशयतां सताम् ।।

दो स्तोत्रों का नाम 'स्तुतित्रोटक' है । दोनों अपभ्रंश भाषा में लिखे

गये हैं। एक में ५ पद्य हैं तथा दिवराय, विमलगिरि, उज्जिलगिरि, दिल्ली आदि स्थानों के नाम प्रयुक्त हुए हैं। प्रथम पद्य यह है—

नियजंमु रावणहं सुयं दिवराय जुतित्थहं जत्त कियं।
निच्चलवणि वेचिउ निययधणं विमलगिरि वंदिउ आदिजिणं ॥

दूसरे स्तुतित्रोटक में चार पद्य हैं और फलवर्द्धिपुर के पार्श्वविग्रह का वर्णन व स्तुति की गई है। प्रथम पद्य देखिये—

ते धन्नपुन्नसुकयत्थनरा जे पणमहि सामिउं भत्तिभरा।
फलवद्धिपुरट्ठियपासजिणं, अससेणह नन्दण भयहरणं ॥

उक्त सभी स्तोत्र 'विधिमार्ग-प्रपा' नामक ग्रन्थ में भी आये हैं।

एक अन्य स्तोत्र का नाम 'आगम स्तवन' है। जिसमें ४५ आगम ग्रन्थों के नाम प्रयुक्त हुए हैं। स्तोत्र में कुल ११ आर्याछन्द हैं। भाषा प्राकृत है। प्रथम छन्द यह है—

सिरिवीरजिणं सुयरयरोहणं पणमिऊणभत्तीए।
कित्तेमि तप्पणोयं सिद्धन्तमहं जगपईवं ॥

'वर्धमान विद्यास्तवन' वर्धमान-विद्याकल्प नामक ग्रंथ में आया है। यह भी प्राकृत भाषा में विरचित है। इसमें १७ पद्य व्यवहृत हुए हैं। इस स्तोत्र के पठन का फल अन्तिम पद्य में मंगल कल्याण का आवास होना बताया गया है। प्रथम पद्य देखिए—

आसि किलट्ठुत्तरसय पयविन्नासो हुइज्ज पीढंमि।
तत्तो उद्धरियाओ वायगसिरिचन्दसेणेणं ॥

पद्मावती चतुष्पदिका

पद्मावती चतुष्पदिका का उल्लेख अन्यत्र स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में किया जा चुका है, किन्तु यह इतना छोटा है कि इसे एक बड़ा स्तोत्र कहना अधिक संगत है। भाषा अपभ्रंश है; परन्तु कहीं कहीं उसमें आदिकालीन हिन्दी भाषा का रूप भी देखा जा सकता है। इस विस्तृत स्तोत्र में ३७

चतुष्पदियों में पद्मावती-देवी की स्तुति की गई है। भाषा-संगठन व भाव-विन्यास दोनों ही दृष्टियों से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्तोत्र है। इसके प्रथम दो पद्य देखिए—

जिणसासणु अवधारि करेवि
झायहु सिरि पउमावइदेवि
भवियलोय आणंदपरे !
दुलहउसावयजम्मुलहेवि, मनरिमित्थसुर अणुसरहु ।।१।। ध्रुवकम

इसकी प्रथम दो पंक्तियां चौपई छन्द (हिन्दी) के दो चरण हैं अंतिम चरण गाने की टेक की तरह है। दूसरा पद्य और देखिए—

पास नाह पयपंकयभसलि, संघविग्घनिन्नासणिकुसलि।
ससिकर निम्मलगुणगणपुन्न, पउमएवि मम होहि पसन्न ।।

इसी तरह सारे पद्य चौपई छन्द हैं जिसके प्रत्येक चरण में १५ मात्राएं होती हैं और अन्त में ह्रस्व स्वर व्यवहृत होता है। १८वें पद्य में जिणदत्तसूरि का व ३६वें में जिनप्रभ के गुरु जिनसिंहसूरि के नाम भी आये हैं। अन्तिम पद्य में लेखक ने अपना नाम भी दिया है—

पउमावइ चउपईय पढंतु, होइ पुरिस तिहुयण सिरिवंतु।
इम पभणइं नियजस पप्पूरि, सुरहिय भवणु जिणप्पहसूरि ।।

इस स्तोत्र का न केवल भाव व भाषा की दृष्टि से ही महत्त्व है वरन् इसका ऐतिहासिक दृष्टि से भी उल्लेखनीय स्थान है। जायसी व तुलसी की दोहा-चौपाई शैली की प्राचीन परम्परा अप्राप्य है। यह तत्कालीन लोकभाषा (अपभ्रंश-हिन्दी का पूर्वरूप) में चौपई छन्द में लिखी हुई रचना है। यह और इसी तरह की अन्य चौपई व चौपाई छन्दों की रचनाएं मिलें तो इस त्रुटित परम्परा का पता लग सकता है।

कालचक्रकुलकम्

इसका नाम भी अन्यत्र एक स्वतंत्र ग्रंथ के रूप में प्रकरणग्रंथ में

गिनाया गया है। किन्तु इसे भी एक बड़ा स्तोत्र कहना अधिक उपयुक्त है। यह भी प्राकृत भाषा में विरचित है। कुल ३५ छन्द प्रयुक्त हुए हैं। सुख-निर्वाण के लिए इसका पठन फलदायक माना गया है। इसकी भाषा प्राचीन अपभ्रंश के अधिक निकट है उससे प्रस्फुटित होने वाली तत्कालीन हिन्दी के नहीं। भावों की दृष्टि से यह बड़ा ही गंभीर स्तोत्र है। इसके प्रारम्भिक दो छन्द देखिये—

अवसप्पिणि उसप्पिणि भेएणं होइ दुविहउ कालो।
सागर कोडाकोडीड वीसा एसो समप्पेइ।
सुससमुसमादि सुसमा सूसमा दुसमा य दुसमसुसमाय।
पंचमिया पुण दूसम तह दूसमदूसमा छट्ठी॥

शब्द चमत्कार भी दर्शनीय है। जैसा कि 'कुलकम्' नाम से ही स्पष्ट है एक छन्द के भाव दूसरे से संग्रथित हैं स्वतंत्र नहीं हैं। इस कुलक के रूप में कालचक्र की गाथा की रचना जिनप्रभ ने अबोध व्यक्तियों के बोधनार्थ की है जैसा कि अन्तिम छन्द से विदित होता है—

अबुहजणबोहत्थं…………अप्पणो समासेण।
कालचक्कस्स गाहा जिणपहसूराहिं संठविया।

दार्शनिक स्तोत्र

दो स्तोत्र जैनदर्शन के सिद्धान्तों से सम्बन्धित हैं। इसलिए इनका परिचय स्वतन्त्र रूप से दिया जाना ही अधिक उपयुक्त होगा। दोनों ही विस्तृत आकार वाले हैं। इनमें से एक नितांत महत्त्वपूर्ण 'सिद्धान्तागम' स्तव है। प्रस्तुत स्तोत्र में ४५ आगम ग्रन्थों के सिद्धान्तों एवं वर्ण्य विषयों का विवेचन किया गया है। यह ४६ संस्कृत श्लोकों में निबद्ध है। अनुष्टुप्, आर्या, आर्यागीति, उपजाति, इन्द्रवंशा, रथोद्धता, वंशस्थ, प्रहर्षिणी, रुचिरा, वसन्ततिलका, हरिणी, स्रग्धरा आदि विविध छन्द प्रयुक्त हुए हैं। साथ में इस पर लिखी हुई एक अवचूरि (टीका)

भी मिलती है। अवचूरि के इस अंश से ही उनके प्रतिदिन स्तवनिर्माण प्रतिभा का पता लगता है—

"पुरा श्रीजिनप्रभसूरिभिः प्रतिदिनं नवस्तवनिर्माणपुरस्सरं निरवद्याहारग्रहणाभिग्रहवद्भिः प्रत्यक्षपद्मावतीदेवीवचसामभ्युदिनं श्रीतपागच्छं विभाव्य भगवतां श्रीसोमतिलकसूरीणां स्वशैक्षशिष्यादिपठनविलोकनाद्यर्थं यमकश्लेषचित्रछन्दोविशेषादिनवनवभंगीसुभगाः सप्तशतीमिताः स्तवा उपदीकृता निजनामांकिताः। तेष्वयं सर्वसिद्धान्तस्तवो बहूपयोगित्वाद्विव्रियते।—

स्तोत्र के प्रथम श्लोक में गुरु व गणधर सुधर्मा के साथ आचार्य बड़े ही विनीत होकर श्रुतदेवता—सरस्वती को भी प्रणति निवेदन करते हैं। देखिए—

नत्वा गुरुभ्यः श्रुतदेवतायै सुधर्मणे च श्रुतभक्तिनुन्नः।
निरुद्धनानावृजिनागमानां जिनागमानां स्तवनं तनोमि॥

आगे प्रत्येक श्लोक में जिनागमों का वर्णन मिलता है। स्तोत्र की विषय स्थापन शैली के लिए कुछ श्लोक व उनकी अवचूर्णि द्रष्टव्य है।—

सामायिकादिकषडध्ययनस्वरूप-
—मावश्यकं शिवरमावदनात्मदर्शम्।
निर्युक्तिभाष्यवरचूर्णि विचित्रवृत्ति-
स्पष्टीकृतार्थनिवहं हृदये वहामि॥

"अवश्यकरणादावश्यकम्। सामायिकादिकानि सामायिक-चतुर्विंशति-स्तव-वन्दनकतिक्रमण-कायोत्सर्ग—प्रत्याख्यानरूपाणि यानि षडध्ययनानि तत्स्वरूपम्। शिवरमाया (मोक्षलक्ष्म्याः) वदनात्मदर्शं दर्पणतुल्यम्। पुनः किंविशिष्टम्। निर्युक्ति श्री भद्रबाहुकृता एकत्रिंशच्छतप्रमाणा। भाष्यं सूत्रार्थप्रपंचनम्। वरावचूर्णिरष्टादशसहस्रप्रमाणा पूर्वर्षिविहिता। विचित्रवृत्तिरनुगतार्थकथनं द्वाविंशतिसहस्रप्रमाणम्। एताभिः स्पष्टीकृतोऽर्थनिवहो यस्य तथाविधं हृदये वहामि स्मरामि।"

प्रवचननाटकनान्दी प्रपंचितज्ञानपंचकसतत्त्वा ।
अस्माकममन्दतमं कन्दलयतु नन्दिरानन्दम् ।।

"प्रवचनं जिनमतमेव नाटकं तत्र नान्दी द्वादशतूर्यनिर्घोषः तन्मूलत्वान्नाटकस्य। प्रपंचितं प्रकटीकृतं ज्ञानपंचकस्य मतिश्रुतावधिमनःपर्यय केवलज्ञानरूपस्य सतत्त्वं स्वरूपं यया सा नन्दिरस्माकममन्दतमं बहुतरमानन्दं कन्दलयतु वर्धयतु।"

अन्तिम श्लोक में जिनप्रभ ने अपना नाम देने के साथ:साथ स्तोत्र को कण्ठस्थ करने का फल श्रुतदेवता—सरस्वती के द्वारा सन्तुष्ट होकर वर प्रदान करना कहा है—

इति भगवतः सिद्धान्तस्य प्रसिद्धफलप्रथाँ
गुणगणकथां कण्ठे कुर्याज्जिनप्रभवस्य यः।
वितरतितरां तस्मै तोषाद्वरं श्रुतदेवता
स्पृहयती च सा मुक्तिश्रीस्तत्समागमनोत्सवम् ।।

जिनागम सिद्धान्तों का एकस्थ-विवेचन करके आचार्य ने निश्चय ही जिज्ञासुओं के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इसे एक तरह की अनुक्रमणिका या कोष कहना अधिक संगत होगा।

'सिद्धान्तागमस्तव' की तरह ही दूसरा महत्त्वपूर्ण स्तोत्र 'परमतत्त्वावबोध द्वात्रिंशका' है। इसमें ३२ अनुष्टुप् छन्द हैं। इस लघुकाय स्तोत्र में, छोटे-छोटे श्लोकों में बड़े ही सरल शब्दों में साथ ही रोचक ढंग से आचार्य जिनप्रम ने 'परमतत्त्व' का विशद विवेचन किया है। जैनधर्म की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह व्यावहारिक है। इसी व्यावहारिकता ने उसे मनोविज्ञान व विज्ञानसम्मत बना दिया है। नैतिकता पर जैनधर्म में सबसे अधिक बल दिया गया है। नीति और व्यवहार के अद्भुत मिश्रण के साथ उच्चकोटि के दार्शनिक विवेचन को हम इस स्तोत्र के अन्दर पाते हैं। परमसुख की प्राप्ति के लिए इस स्तोत्र के ३२ श्लोक

जैसे ३२ चिन्तामणि मौक्तिक हैं जिनके चिन्तन का फल अमोघ व सद्यः साध्य है। प्रथम श्लोक देखिए—

धर्माधर्मान्तरं मत्वा, जीवाजीवादितत्त्ववित्।
ज्ञास्यति त्वं यदात्मानं, तदा ते परमं सुखम्॥

इन सीधे सादे श्लोकों में चाणक्य के सूत्रों की तरह का महान् ज्ञान भरा हुआ है। बिहारी के दोहों की तरह ये भी नाविक के तीर से उपमेय हैं जो छोटे दीखने पर भी हृदय में गंभीर घाव कर जाते हैं। आगे के २ श्लोक देखिए—

यदा हिंसां परित्यज्य कृपालुस्त्वं भविष्यसि।
मैत्र्यादिभावना-भव्यस्तदा ते परमं सुखम्॥
न भाषसे मृषा भाषां विश्वविश्वासघातिनीम्।
सत्यं वक्ष्यसि सौहित्यं तदा ते परमं सुखम्॥

अर्थात् जब हिंसा को छोड़ कर के कृपालु बन जाओगे, मैत्रीभावना बढ़ा कर भव्य बन जाओगे, विश्वविश्वासघातिनी झूठ न बोलोगे और सुन्दर हितकारिणी सत्य वाणी बोलोगे तभी परम सुख की प्राप्ति होगी।

जैन समाज की भाषागत प्रसिद्ध प्रार्थना 'बारहभावना' के अन्तर्गत इस प्रकार के भावों के लिए ही तो आकांक्षा प्रकट की गई है। गीता की समत्वभावना भी स्तोत्र में प्राप्य है—

स्वरे श्रव्ये च वीणादौ खरोष्ट्रीणां च दुःश्रवे।
यदा सममनोवृत्तिस्तदा ते परमं सुखम्॥
इष्टेऽनिष्टे यदा दृष्टे वस्तुनि न्यस्तशस्तधीः।
प्रीत्यप्रीतिविमुक्तोऽसि तदा ते परमं सुखम्॥
घ्राणदेशमनुप्राप्ते यदा गन्धे शुभाशुभे।
रागद्वेषौ न चेत्तत्र तदा ते परमं सुखम्॥
यदा मनोज्ञमाहारं यद्वा तस्य विलक्षणम्।
समासाद्य तयोः साम्यं तदा ते परमं सुखम्॥

११

सुखदुःखात्मके स्पर्शे समायाते समो यदा ।
भविष्यसि भवाभावी तदा ते परमं सुखम् ।।

गीता व स्तोत्र के इस श्लोक में कितनी समता है देखिए—

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतीष्ठिता ।।

गीता—२/५८

तथा—

अंगोपांगानि संकोच्य कूर्मवत्संवृतेन्द्रियः ।
यदा त्वं कायगुप्तोऽसि तदा ते परमं सुखम् ।।

और भी देखिए—

यदामित्रेऽथवा मित्रे स्तुति निन्दां विधातरि ।
समानं मानसं तत्र तदा ते परमं सुखम् ।।
लाभालाभे सुखे दुःखे जीविते मरणे तथा ।
औदासीन्यम् यदा ते स्यात्तदा ते परमं सुखम् ।।
यदा यास्यसि निष्कर्मा साधुधर्मधुरीणताम् ।
निर्वाणपथसंलीनस्तदा ते परमं सुखम् ।।

यहाँ तो गीता की नैष्कर्म्य-भावना और भी स्पष्ट हो जाती है। स्पष्ट है कि स्तोत्र रचना करते समय आचार्य जिनप्रभ गीता से प्रभावित हुए थे। या यों कहना अधिक संगत होगा कि जिस तरह तुलसीदास ने रामायण में 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' ज्ञान भर दिया, जिनप्रभ ने भी अनेक दार्शनिक व धार्मिक ग्रंथों का व्यावहारिक ज्ञान प्रस्तुत स्तोत्र में समन्वित रूप में उपस्थित कर दिया। स्पष्ट है कि सदाचार व उच्च भावनाओं के लिए विशेष धर्म का बन्धन नहीं है। वे सभी स्थानों पर समान रूप से मिल सकती हैं। महामुनि याज्ञवल्क्य ने धर्म की यथेष्ट परिभाषा देने पर भी सन्तोष न होने पर इतना कह दिया है और वही चरम ज्ञान है कि—

एषः तु परमो धर्मः यद्योगेनात्मदर्शनम् ।

'अर्थात् योग द्वारा सर्वत्र आत्मदर्शन ही परमधर्म है ।' कुछ ऐसी ही बात जिनप्रभ ने भी अन्तिम श्लोक में कहकर विरति ग्रहण की है—

आत्मपद्मवनं ज्ञान-भानुना बोध्य लप्स्यसे ।
यदा जिनप्रभां वर्यां तदा ते परमं सुखम् ।।

अर्थात् जब आत्मारूपी पद्मवन को ज्ञानभानु की प्रभा से आलोकित कर श्रेष्ठ जिनप्रभा को प्राप्त कर लोगे तभी परमसुख की प्राप्ति होगी। यह जिनप्रभा की प्राप्ति सर्वत्र आत्मदर्शन का दिव्यज्ञान—दिव्य दृष्टिकोण ही है।

निश्चय ही प्रस्तुत स्तोत्र जिनप्रभाचार्य के स्तोत्र साहित्य में भावों की दृष्टि से सबसे गंभीर और महान् सन्देश से ओतप्रोत है। भाषागत चमत्कार प्रदर्शन करने में ही जिनप्रभ सिद्धहस्त नहीं थे वरन् मौलिक, समन्वित व संयत विचार देने में भी उन्हें कृपण नहीं कहा जा सकता। यह बात इस स्तोत्र को देख कर समझी जा सकती है। यह स्तोत्र साधारण व्यक्ति के लिए भी बोधगम्य है।

वाणीवन्दना

जिनप्रभाचार्य के प्राप्य स्तोत्रों का परिचय दो अन्य स्तोत्रों के विना अधूरा ही रह जायगा। ये स्तोत्र केवल स्तोत्र की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण नहीं है वरन् ये रचयिता के विचारौदार्य को भी प्रकट करते हैं। दोनों में वाग्देवी सरस्वती की वन्दना अत्यन्त भावप्रवण हृदय से की गई है। इनमें एक छोटे स्तोत्र का नाम 'सरस्वत्यष्टक' है। जिसमें ९ रथोद्धता छन्द प्रयुक्त हुए हैं। कहीं-कहीं यमक और अनुप्रास की छटा भी मिलती है परन्तु रचयिता की दृष्टि चमत्कार की ओर कदापि नहीं रही; भावों की सहज-मधुर सरणि ही उसमें विद्यमान है। स्तोत्र का प्रारंभ प्रणवमंत्र (ॐ) से होता है—

ॐ नमस्त्रिदशवन्दितक्रमे
सर्वविद्वद्वनपद्मभृंगिके ।
बुद्धिमान्द्यकदलीदलीक्रिया
शस्त्रि तुभ्यमधिदेवते गिराम् ।।

भारती की महिमा के कुछ श्लोक देखिए—

दत्तह्रीन्दुकमलश्रियो मुखं
यैर्व्यलोकि तव देवि सादरम् ।
ते विविक्तकवितानिकेतनं
के न भारति भवन्ति भूतले ।।
श्रीन्द्रमुख्य विबुधार्चितक्रमां
ये श्रयन्ति भवतीं तरीमिव ।
ते जगज्जननि जाड्यवारिधिं
निस्तरन्ति तरसा रसा स्पृशः ।।

तथा—

विश्वविश्वभुवनैकदीपिके
नेमुषां मुषितमोहविप्लवे ।
भक्तिनिर्भरकवीन्द्रवन्दिते
तुभ्यमस्तु गीर्देवते नमः ।।

यह अष्टक सरस्वती के 'ॐ ह्रीं श्रीं' बीजनिर्मित मंत्र से गर्भित है। स्वयं जिनप्रभ ने अन्तिम श्लोक में इसे स्पष्ट किया है—

उदारसारस्वतमंत्रगर्भितम्
जिनप्रभाचार्यकृतं पठन्ति ये ।
वाग्देवायाः स्फुटमेतदष्टकं
स्फुरन्ति तेषां मधुरोज्जला गिरः ।।

वाग्देवी सरस्वती की वन्दना करते समय जिनप्रभ उतने ही प्रणत व भावप्रवण दिखाई पड़ते हैं जितने ऋषभदेव या अन्य किसी तीर्थंकर की

स्तुति करते समय। इनके दूसरे स्तोत्र का नाम 'शारदास्तव' है। इसमें १२ उपजाति व १ वसन्ततिलका छन्द प्रयुक्त हुए हैं इसमें केवल प्रणति निवेदन ही नहीं है शब्द चमत्कार भी उसी मात्रा में प्रस्तुत है। विषम संख्या के छन्दों के दूसरे चरण की चौथे चरण में आवृत्ति की गई है। इसका प्रारंभिक श्लोक यह है—

वाग्देवते भक्तिमतां स्वशक्ति-
कलापवित्रासितविग्रहे मे।
बोधं विशुद्धं भवती विधत्तां
कलापवित्रासितविग्रहा मे॥

इसी तरह सम संख्या के छन्दों में प्रथम चरण की आवृत्ति तृतीय चरण में हुई है। दूसरा श्लोक देखिये—

अंकप्रवीणाकल हंसपत्रा-
कृतस्मरेणानमतां निहन्तुम्।
अंकप्रवीणा कलहंसपत्रा
सरस्वती शश्वदपोहताद्वः॥

यमक के चमत्कार ने इस श्लोक से भाव को किस तरह प्रभावप्रेषणीय बना दिया है—

सितांशुकां ते नयनाभिरामां
मूर्तिं समाराध्य भवेन्मनुष्यः।
सितांशुकांते नयनाभिरामां-
-धकारसूर्यः क्षितिपावतंसः॥

अन्तिम श्लोक में भक्तहृदय की प्रणतिपुरस्सर श्रद्धांजलि देखिये, जिसमें कवि ने अपना नाम को गुम्फित किया है—

क्लृप्तस्तुतिर्निविडभक्तिजडत्वपृक्तै-
र्गुम्फैर्गिरामिति गिरामधिदेवता सा।
बालोऽनुकम्प्य इति रोपयतु प्रसाद-
-स्मेरां दृशं मयि जिनप्रभसूरिवर्ण्या॥

इस प्रकार इन सभी प्राप्य स्तोत्रों का संक्षिप्त परिचय व सामान्य विशेषताओं का उल्लेख करने के बाद सारे स्तोत्र-साहित्य पर समष्टि रूप से विचार कर लेना असंगत न होगा।

जिनप्रभ-स्तोत्र-साहित्य की सामान्य विशेषताएँ

भक्ति, विनय व औदार्य

जिनप्रभसूरि के सारे स्तोत्र धार्मिक गीतिकाव्य की महती सम्पत्ति हैं। वे मुक्तक हैं इस लिए उनके भावपक्ष पर विचार करते समय उनके स्तोत्रों में व्यंजित भक्ति, विनय तथा औदार्य पर सर्व प्रथम हमारा ध्यान जाता है। जैन-धर्म एक व्यावहारिक-धर्म है और भक्ति स्वयं धर्म का सबसे अधिक व्यावहारिक पहलू है। विगत दो सहस्राब्दियों में उठे हुए भक्ति के विभिन्न आन्दोलनों ने इस पहलू को प्रभूत विकसित बना दिया है। विष्णु के विभिन्न अवतारों व विग्रहों की कल्पना, नवधा विभक्ती-करण, प्रत्येक प्रकार की भक्ति की अनेक भूमिकाएँ आदि देखकर उसके विकसित स्वरूप का अनुमान लगाया जा सकता है।

इन भक्ति सम्बन्धी आन्दोलनों ने जैन धर्म पर भी प्रभाव डाला। श्रद्धाप्रधान होने से भक्ति जैन-धर्म के अनुकूल थी और प्रत्येक जैन व्यावहारिक दृष्टि से साधक होने पर भी भक्त प्रथम था। हाँ, सभी तीर्थंकर जिन थे। अतएव सभी जैनसाधक उस अवस्था की प्राप्ति के प्रयत्न में उनके सेवक थे। इसलिए जैनधर्म में दास्य-भक्ति ही प्रमुख रही। सख्य भक्ति को उसमें किसी भी प्रकार का कोई स्थान नहीं। हाँ श्रवण, कीर्तन, स्मरण, भजन, पूजन, वन्दन व आत्मनिवेदन का दास्यभक्ति से कोई विरोध नहीं है इसलिए इनको भी उतना ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

भक्ति के उपजीव्य जैनधर्म के अनुसार केवल चौबीस तीर्थङ्कर ही नहीं हैं। उनके जीवन से सम्बन्धित ग्रन्थ व तीर्थस्थल भी भक्ति के उप-जीव्य रहे हैं। इसलिए जैनधर्मानुयायी स्त्री-पुरुष तीर्थों व ग्रन्थों की भी

तीर्थङ्करों के साथ स्तुति करते हैं। आचार्य जिनप्रभसूरि ने भी इन सभी के लिए स्तोत्र लिखे।

जैनधर्म में भक्ति नवधा के स्थान पर षडधा मानी गई है। भक्ति की परिभाषा देखिए—

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये॥

अर्थात् मोक्षमार्ग के नेता (हितोपदेशी), कर्मरूपी पर्वतों का भेदन करने वाले (वीतराग) और विश्व के तत्त्वों को जानने वाले (सर्वज्ञ) आप्त (अर्हंत) की भक्ति, उन्हीं के गुणों को पाने के लिए करता हूँ।

स्पष्ट है कि विशिष्ट गुणवालों (अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु) के गुणों में अनुराग करके उनका सान्निच्य प्राप्त करने की क्रिया ही भक्ति है। जो जैनधर्म के अनुसार ६ प्रकार की मानी जा सकती है—

१. नामभक्ति—नाम व गुणों का स्मरण।
२. स्थापना भक्ति—मूर्तियों का स्थापन, पूजन व दर्शन।
३. दृश्य भक्ति—अरिहंत तथा सिद्धपुरुष के स्वरूप का चिन्तन।
४. भावभक्ति—अरिहंत तथा सिद्ध भावों का विचार करना।
५. क्षेत्रभक्ति—तीर्थस्थानों के सहारे वहाँ जन्म व निर्वाण प्राप्त करने वाले महान् पुरुषों का स्मरण।
६. कालभक्ति—जिन कालों में महान् पुरुषों ने जन्म, तप ज्ञान व निर्वाण प्राप्त किया उनके सहारे उन महान् पुरुषों के स्मरण द्वारा भक्ति।

यदि भक्ति के उक्त प्रकारों को ध्यान में रखकर आचार्य जिनप्रभ के स्तोत्र साहित्य का विहगावलोकन किया जाय तो पता चलता है कि आचार्य ने इन सभी दृष्टिकोणों से भावविभोर होकर अपने इष्टदेव के प्रति प्रणति निवेदन की है।

केवल काल (समय) को लेकर आचार्य ने 'कालचक्रकुलकम्'

नामक स्तोत्र लिखा है। उनके विभिन्न तीर्थमालास्तव तथा किसी विशिष्ट तीर्थस्थल के नाम से संलग्न तीर्थङ्कर सम्बन्धी स्तोत्र क्षेत्र-भक्ति के अच्छे उदाहरण हैं। अरिहंत व सिद्ध भावों का दर्शन उनके दार्शनिक स्तोत्रों में होता है जो भावभक्ति के उदाहरण हैं। 'परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका' इस प्रकार के स्तोत्रों का चूड़ामणि कहा जा सकता है। दृश्यभक्ति के उदाहरण तीर्थंकरों के विग्रहों का चित्रोपम वर्णन करने वाले स्तोत्र बन सकते हैं। नाम और स्थापन भक्ति के उदाहरण तो सभी बन सकते हैं। यही नहीं जिनप्रभ ने अपने गुरु को भी बड़े ही प्रणत भाव से श्रद्धांजलि अर्पित की है जो नामभक्ति के उदाहरण के रूप में उपस्थित की जा सकती है।

विनय और भक्ति का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। इष्टदेव अथवा महान् पुरुष की महत्ता और अपनी लघुता विनय को जन्म देती है। विनय के अभाव में कोई भक्त भक्त नहीं रह सकता। आचार्य ने अपने सभी स्तोत्रों में विनयशीलता का अच्छा परिचय दिया है। कहीं-कहीं तो वे इतने भाव बिह्वल हो जाते हैं कि उनके स्तोत्रों का पाठ करने वाले तक के चक्षु आर्द्र और कण्ठ वाष्परुद्ध गद्गद हो जाते हैं। तुलसी का विनय दीनता मिश्रित है किन्तु आचार्य जिनप्रभ के विनय में एक सिद्धिपथ के पथिक की विनम्र-दृढ़ता व अथक विश्वास के दर्शन होते हैं। सभी स्तोत्रों में आचार्य आत्मविश्वासी रहे हैं और उनकी ज्ञान-गरिमा तो सर्वत्र झलकती ही है।

आचार्य जिनप्रभ मोहम्मद तुगलक के संपर्क में आये थे और उसके पास सुदीर्घ काल तक रहे भी थे अतएव उनमें धार्मिक उदारता होनी ही चाहिए। केवल शारदा स्तवन मात्र से ही उनकी यह उदारता प्रकट नहीं होती, फारसी जैसी विदेशी भाषा को स्तोत्र रचना के लिए अपना कर भी उन्होंने अपनी उदारता की पुष्टि की है। ऐसी पांडित्यमण्डित उदारता निश्चय ही बहुत ऊँची वस्तु है और आचार्य जैसे निस्पृही, सर्वस्व-त्यागी में ही मिल सकती है।

भाषा

आचार्य जिनप्रभ अनेक भाषाओं के पण्डित थे। संस्कृत, समसंस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पैशाची, फारसी आदि अनेक भाषाओं में उन्होंने अपने भावप्रसून इष्टदेव को समर्पित किए हैं और सभी पर उनका असाधारण अधिकार प्रकट होता है। अनुप्रास, यमक, श्लेषादि शब्दालंकारों से उनकी भाषागत सामर्थ्य झलकती है। प्रासाद व माधुर्य गुणयुक्त प्रांजल पदावली के दर्शन सर्वत्र होते हैं। भाव-प्रवणता के कारण उसमें ओज व सहज-गाम्भीर्य का प्रवेश हो गया है। प्रवाह कहीं टूटने नहीं पाता।

षड्भाषा-गर्भित व अष्टभाषा गर्भित स्तोत्र उनके साधिकार-भाषा-प्रयोग के उदाहरण हैं। कातंत्रसंधिसूत्रगर्भित, षड्ऋतुगर्भित, उपसर्गहर-स्तोत्र पादपूर्तिमय, विविधछन्दोनामगर्भित, लक्षण-प्रयोगमय आदि अनेक स्तोत्र अर्थगाम्भीर्य को पुष्टि करते हैं। चित्रकाव्यमय स्तोत्र में यही बात और भी सफलतापूर्वक देखी जा सकती है। इतना अवश्य है कि इन प्रयोगों के उपरान्त भी भाषा बोधगम्य बनी रहती है।

यही नहीं, उनकी भाषा में गंभीर से गंभीर दार्शनिक भावों को सरलतम ढंग से व्यक्त करने की क्षमता भी विद्यमान है। इसी तरह की शक्ति, प्रवाह, गम्भीरता व विशदता संस्कृतेतर भाषाओं के प्रयोग में भी समान रूप से मिलती है।

शैली

स्तोत्र ललित-साहित्य की एक-विधा है। साथ ही वे मुक्तक-काव्य होने से पूर्वापर सम्बन्धनिरपेक्ष सहज रसपेशल भी होते हैं। उनमें किसी तरह का कथा प्रवाह नहीं होता। हाँ, भावों का प्रवाह उतना ही अनिवार्य है। आचार्य ने अपने स्तोत्रों को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए सार्थक शब्दों का प्रयोग किया है। इसी तरह छन्द प्रयोग भी भावगुरुता की दृष्टि से हुआ है। छोटे अनुष्टुप् या आर्याछन्द से लेकर बड़े-बड़े दण्डक छन्दों

का प्रयोग भी जिनप्रभ ने किया है। वह योग्यता-प्रदर्शन मात्र के लिए न होकर भावाभिव्यक्ति के सौकर्य्य के कारण ही हुआ है। आचार्य को अपने इस उद्देश्य में अतीव सफलता मिली है। कहीं-कहीं चमत्कारों के कारण भावग्रहण में कठिनाई अवश्य होती है। फिर भी आधिक्य को प्रमाण मान कर उनकी शैली को प्रसन्नगम्भीर कहा जा सकता है जिसमें कहीं-कहीं सहजप्रसन्नता कुछ क्षणों के लिए विलुप्त प्राय भी देखी जा सकती है। प्रसंग व भावानुभूतियों की सघनता पर केन्द्रित कहीं माधुर्य की, कहीं प्रसाद की और कहीं ओज की छटा देखने को मिलती है। सरलता, स्पष्टता व परिवर्तनशीलता उनकी शैली की विशेषता है।

वर्णन वैचित्र्य : विविध प्रयोग

जैनाचार्यों को कभी चमत्कार प्रदर्शन का लोभ नहीं रहा। कहा जाता है कि राजा भोज ने एक बार मयूरभट्ट के 'सूर्यशतक' और बाणभट्ट के चण्डीशतक' के भावनिधि पर मुग्ध होकर उसकी प्रशंसा करते हुए जैनाचार्य मानतुंग से भी इस प्रकार का चमत्कार-प्रदर्शन करने के लिए कहा। आचार्यजी ने केवल आत्मा के परम चमत्कार को ही सर्वोत्तम बताकर प्रदर्शन से इन्कार कर दिया। कहते हैं कि राजा भोज ने आचार्य को बंदीघर में बन्द करके ४६ ताले लगवा दिये और आचार्य ने 'भक्तामर स्तोत्र' की रचना करके बन्दीगृह से मुक्ति पाई। कदाचित् उक्त घटना को जिनप्रभ ने ध्यान में रक्खा और भाषा व भावसम्बन्धी सबसे अधिक प्रयोग करके पाठकों के लिए आश्चर्य की स्थायी सम्पत्ति छोड़ गए।

आचार्य जी के स्तोत्रों में पद-पद पर भाषा तथा भाव सम्बन्धी चमत्कारों के दर्शन होते हैं। उनके कोई स्तोत्र यमक, श्लेष, अनुप्रासादि से ओत प्रोत हैं तो किसी अन्य रचना को गुम्फित देखा जा सकता है। यमक प्रयोग भी अनेक प्रकार से हुआ है—कहीं एक चरण को दूसरे में दोहराया गया है तो कहीं चारों चरण एक ही हैं। शब्द-यमक से तो कदाचित् किसी स्तोत्र का कोई स्थल अछूता न होगा। एक स्तोत्र में

कातंत्र व्याकरण का संधिसूत्र गुम्फित है तो दूसरा उपसर्गहर स्तोत्र की पादपूर्ति से युक्त है, एक अन्य पंचकल्याणकमय है, तो दूसरा लक्षण प्रयोगमय है। एक षड्ऋतु-वर्णनमय है तो अन्य नवग्रहगर्भित है। क्रियागुप्त रचना तो एक नितान्त अद्भुत प्रयोग है। अनेक भाषाओं का एक साथ प्रयोग तो है ही। हीयाली यद्यपि अपूर्ण प्राप्त है फिर भी इतना पता चल जाता है कि इसमें अनेक प्रहेलिकाएँ हैं। कहीं आगमों के नाम स्तोत्रों में गुम्फित है तो किसी में आगम-सिद्धान्तों का उल्लेख है। कहीं छन्दों के नाम भी स्तोत्रों में आये हैं तो अन्य अनेक स्थानों पर आचार्य ने अपना नाम ही अनेक प्रकार के कलात्मक ढंगों से गुम्फित किया है। छोटे-से छोटे व बड़े से बड़े छन्दों का प्रयोग भी कम चमत्कार जनक नहीं है। राजा भोज इन विविध प्रकार के चमत्कारों को देखा होता तो उसका गुणग्राही मन विभोर हुए बिना न रहता।

प्राप्य स्तोत्रों के आधार पर कुछ चमत्कारों का नामोल्लेख मात्र यहाँ किया गया है। यदि ७०० स्तोत्रों की रचना करने की बात सत्य हो, तो पता नहीं लुप्त या अप्राप्य स्तोत्रों में कितने चमत्कार भरे पड़े होंगे। जो हो, प्राप्य स्तोत्रों व उनकी विशेषताओं के आधार पर ही हम आचार्य जिनप्रभ की प्रतिभा के प्रति नत होने को बाध्य हैं।

चित्र काव्य

प्राप्य स्तोत्रों में एक स्तोत्र चित्रकाव्यमय भी है। यद्यपि चित्रकाव्य को काव्यालोचकों ने अधमकोटि का काव्य कहा है; किन्तु फिर भी इतना मानना पड़ेगा ही कि बिना भाषा पर असाधारण अधिकार प्राप्त किए कोई भी कवि चित्रकाव्य की सृष्टि नहीं कर सकता। आचार्य जिनप्रभ ने अपने 'वीरजिनस्तव' में इस प्रकार का प्रयोग किया है और वे इसमें सफल भी हुए हैं। इस कार्य में उनकी सफलता को देख कर यह सोचने के बाध्य होना पड़ता है कि इस प्रकार के प्रयोग के विना कदाचित् उनके

स्तोत्र-साहित्य का एक अंग विच्छिन्न रह जाता। चित्रकाव्य की रचना करने से अधिक सफलता उन्हें उसी क्रम से स्तोत्र में अपना नाम गुम्फित करने में भी मिली है।

उपसंहार

जिनप्रभाचार्य की इन विशेषताओं पर विचार करने के बाद हम निस्सन्देह कह सकते हैं कि न केवल जैन साहित्यकारों में वरन् भारतीय स्तोत्र-साहित्य में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। सफल भाषा प्रयोग, उच्च-कोटि के भावों का उद्भावन, अनुभूति की सघनता, विविधचमत्कारिक प्रयोग किसी भी दृष्टि से देखा जाय उनका स्थान अपने सहयोगी जैन-साहित्यकारों में शीर्ष-कोटि का है। उनके सम्पूर्ण स्तोत्र प्राप्त होने पर निश्चय ही वे उत्तरकालीन साहित्य की परम्पराओं के उद्भावक व अनेक शृंखलाओं को जोड़ने वाली कड़ी के रूप में चिरउल्लेखनीय गौरव के अधिकारी समझे जायेंगे। हम निस्सन्देह उन जरामरण भयरहित यश-सिद्धकवीश्वर के समक्ष श्रद्धानत हैं।

माघ शुक्ल पूर्णिमा : २०१७
३१–१–६१ : कोटा

जिनप्रभसूरि गुणवर्णन छप्पय

—:०:—

तिन्नि वार सुलितानु जासु पुच्छवि हक्कारइ,
नियकरि करु संगहइ अप्प सरखइ बइसारइ।
अतीत अनागत वर्तमान पूछँ जं भावइ,
हसि हसि उत्तर देइ सुगुरु रायहं रंजावइ।
असपत्ति राउ ढिल्ली तणउ, जसु एवडु आयरु करइ।
भट्टारक सूरि **जिणप्पह** हं सूरि न को सरभरि करइ ॥ १ ॥

रयणपाल निम्मल-विसाल-कुलि-कमल-दिवायर,
हीर-खीर-डिंडीर-विमल-गुणमणि-रयणायर।
तिहुयण-जण-लोयण-चकोर-उल्हासण-ससहर,
विसम-विषय-जाला-कराल-दावानल-जलहर।
खेतल्लएवि-वर कुक्खिसर, रायहंस सुंदर चरिय।
तुव सरिसु **जिणपहसूरि** गुर, गछि गछि नहु आचरिय ॥ २ ॥

तां तित्तरु तडपडइ जाम सिच्चाणु पयट्टइ,
तां कुरंगु मयमंतु जाम चित्तउ संघट्टइ।
मयंगलु तामउ करइ जाम नवि केहरु पिक्खइ,
तां पव्वय उत्तुंगु जाम गिरि मेरु न पिक्खइ।
पंडियहं ताम गव्वु वहइं जां **जिनप्रभ** न वसि पडइं।
बहु सत्थ हत्थि अवहत्थियहं वां अग्गल तीसउं झडइं ॥ ३ ॥
को जग्गावइ काल-सप्पु सुत्तउ निद्दहं भरि,
कविण होइ दप्पिट्ठु घिट्ठु अग्गेसरि केसरि।

झलहलंत अंगार कवण निय सोसि वहिज्जइ,
कवण कुंत लोयणहं खग्ग खंडण भणि दिज्जइ ।
इत्तडिहिं पयारिहिं जो रमइ भमइ जीउ संसय ठिउ ।
सो अडइं **जिणपहसूरि** सिउं वाय करिवि अइ दिढ हिउ ।। ४ ।।

माग्गि मेरु जिम धीरु राग्गि रायहं मनुरंजणु,
साग्गि सत्थ पारीण वाग्गि वाइग मउ-भंजणु ।
धाग्गि धम्मि अनुरत्तु ताग्गि तपतेय-दिवायरु,
गाग्गि गच्छ **खरतरहं** पाग्गि पयडउ गुणसायरु ।
दांदाग्गि दानि सुरनरु सरिसु **जिनतिलकसूरि** पट्टिहिं जयउ ।
जिनराजसूरि सूग्गिहिं तिलउ, **राजहंस गणि** जंपियउ ।। ५ ।।

सयल कला सुज्जाण सरसवचनेहिं सुमिट्ठउ,
सोहगि जंबुकुमारु दाण-गुणि करण गरिट्ठउ ।
आगम गंथ पुराण वेद व्याकरण बहु जाणइ,
मधुर सधीर गंभीर वईण नव रस वक्खाणइ ।
खरतरहं गच्छि **जिनतिलकगुरु**, निय पट्टिहिं थिरु थप्पियउ ।
जिनराजसूरि जयवंत चिरु, **नयतिलक्क गणि** जंपियउ ।। ६ ।।

ओवलिष्वां मदि रिसह नाह वंदिगो वगोयं,
महावीर मखदूम तु दिलइ कीव गोयं ।
दस्तिमवारण सिर निहाद बुजरु कीविदादं,
पंजम गणहर सुहसामि रात खूविदादं ।
जंबुकुमार मुणि सुव्वयहं, पभव सजंभवादिहं ।
जिनदत्तसूरि सिरिताज सिरि, एलिमाल जूमलइ जहं ।। ७ ।।

पइं पयडिउ जिणधम्मु **मिच्छरज्जिहि ढिल्लियपुरि,**
पइं रंजिउ **सुरताणु** नाणि विन्नाणि विविह परि ।
पइं वाइय निज्जिणि **असेस** जयपत्तु वि **लद्धउ,**
तुह वाइय-गय-सिंह **विरुद** जाणियइ **पसिद्धउ** ।

पउमावइ-देविय पत्तवर, तुव चरित्त कित्तिय भणउं ।
सिरि सूरि **जिणप्पह** अगण गुण, इक्क जीह किम करि थुणउं ॥ ८ ॥

सरसइ-कंठाभरण पवर वाइय-गय-संकल,
विज्जा-सत्तागार वाइगय-अंकुस निम्मल ।
सयल वाइ-गय-गंधहत्थि वाइय विड्डारण,
जिणसासण-वण-सिंह वाइ-गय-घड-पंचाणण ।
हम्मीर वीर वंदिय चलण, मिच्छरज्जि अक्खलिय-पसर ।
जिणपह-मुणिंद इत्तिय विरुद, तुव छज्जइ पर हत्थु घर ॥ ९ ॥

लोह न कंचण सरिस मेरु सम अवर न भूधरु,
गरुड सरिस न हुँ पंखि इंद सम अवरि न निज्ज़रु ।
रवि सम इयर न खयरु न मणि चिंतामणि संनिह,
कप्परुक्ख सम सरिस इयर न हु दीसइ भूरुह ।
जिणसिंघसूरि सीसप्पवर, भुवब्भुय गुण उक्करिस ।
सिरि सूरि **जिणप्पहसूरि** तलि, सूरि न दीसइ तुव सरिस ॥१०॥

अंब निंब अंतरउ जेम अंतरु बक हंसहं,
जक्ख घणह अंतरउ जेम नारायण कंसहं ।
चिंतामणि पाहणहं जेम अंतरु ससि तारहं,
रयणायर सरवरहं रंक अंतरु जिम रायहं ।
इयरे वि सूरि चाउद्दिसिहिं, सीह सरस जिम अंतरउ ।
भट्टारक सूरि **जिणप्पह** हं, न ल्हवडउ पट्टंतरउं ॥११॥

—अपूर्ण—

[श्री साराभाई नवाब संग्रह, वि० सं० १५५८ राजसुंदर लिखित गुटके के आधार से साभार उद्धृत]

छप्पय क्रमांक ५ एवं ६ प्रक्षिप्त मालूम होते हैं ।

जिनप्रभसूरि षट् पद–

जुग्गिनि पुरि विस्तरउ सयल संसारिइ जाणिउ ।
सुगुरु सूरि जिनप्रभु साहि बुलाइ सभाषिउ ।
पूछइ खुंदालम्मं सुणि नितूं वातह म्हारी ।
इसि देवहिं क्या शक्ति, दूनी पूजइ विशयारी
त च साहि महमद (को) पीउ चडि पोसालइं आईयउ ।
पद्मावति समरि जिनप्रभुसुरि, **श्री महावीर** बोलावीउ ॥१॥
शक्ति करइ सुलताण, दुनी आलम ए का (य) म ।
इह खालि कु विशयासह सः,ऐक दीम दायम ।
हाजतिअ-वहु भवइ, जिके तुम्ह भावन भाविइं ।
पुज्जइ मनि घरि स्वामि, मन वांछित फल पावइं ।
तिहाँ मीरू मलिका डमरा, खडा जावन किसिहि अवीउं ।
श्री महावीर अतिसय कीउ, जिन शासनि छत्र चढाईउं ॥२॥
काजी उर मुख इम कुटिल्ल जमि लें हक्कारियाँ ।
तुम्ह हु रोग गद्रद दुनी, ए जम विशयारियाँ ।
इह जिन खानी खास नेक मनि जरं दीदं ।
खालिक जबाक राख जिमिइं अडरूने को दीदं ।
तब साहि **महमद** प्रज्वलू जइ खुदाइ न हु डर करुउं ।
अति वास मेति काजी, मुला बंदि मोलिघर धारी करुउं ॥३॥

इति षट् पद समाप्त

(१६ वीं शती, गुटका विनयसागरजी संग्रह)

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१७	प्रभावगा	पभावगा
	२२	साहित्कारों	साहित्यकारों
२	१४	अत्याश्यक	अत्यावश्यक
२	२४	विद्वता	विद्वत्ता
६	११	असन्तुष्ठ	असन्तुष्ट
११	११	बनईं	बनाइं
१२	६	प्रवल	प्रबल
	९	है ।	हैं ।
	१५	अम्मोहर	अम्भोहर
१४	२	चायोत्कट	चापोत्कट
१५	३	करडी हड्डी	करडी हट्टी
१६	१५	बहुश्चुत	बहुश्रुत
	२६	६२००	६२०००
१७	७	अनुत्तरौपपातिक०	अनुत्तरोपपातिक
	१६	सेठी नदी	सेढी नदी
१८	२	आगामों	आगमों
	१८	है ।	हैं ।
	२०	हो गये ।	हो गये थे ।
१९	१७	चित्रकूटीय वीरचैत्य प्रशास्त	चित्रकूटीय वीरचैत्य प्रशस्ति
	१७	भवारिवारण स्तोत्र	भावारिवारण स्तोत्र
	२५	स्वप्नसवृत्तिका	स्वप्नसप्ततिका
२०	३	हुम्ब	हुम्बड

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	४	शुक्ल १	शुक्ला १
२०	१०	यह	×
	१६	विक्रमपुरा	विक्रमपुर
	२२	मन्नवादी	मन्त्रवादी
२१	२२	सर्वाधिष्टात्री	सर्वाधिष्टायी
२२	५	आध्यात्मगीतानि	अध्यात्मगीतानि
	११	भादो	भाद्रपद
	१९	गच्छनामक	गच्छनायक
२३	५	भादो	भाद्रपद
	६	मालप्रदेश	भालप्रदेश
२४	२	निजपतिसूरि	जिनपतिसूरि
	३	प्रतिमा	प्रतिभा
	२४	पृ० २५३४	पृ० २५ मे ३४
२५	४	बृहद्वार	बृहद्वार में
	५	ने किया	ने शास्त्रार्थ किया।
	१३	प्रतिमा	प्रतिभा
२६	३	दो	द्वितीया
२६	४	वीरप्रभा	वीरप्रभ
	५	आषाठ	आषाढ
	६	बृहद्वारा	बृहद्वार
	११	सर्वदेवसूरि नामकरण किया गया।	सर्वदेवसूरि ने जिनपतिसूरि की आज्ञानुसार इनको आचार्य-गण-नायक पद प्रदान कर जिनेश्वरसूरि नामकरण किया।
२६	१९	शन्तुजय	शत्रुञ्जय
२७	२	बावरी	चाचरी

अमळनेर, जि. जळगाव.

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७	१८	गलितकोटकपुर	गलितकोटकपुर,
	२०	के	का
	२१	पंचशती	पंचशती में
२८	२	सेतलदेवी	खेतलदेवी
	१०	द्वितीय आचार्य जिने-श्वरसूरि	आचार्य जिनेश्वरसूरि (द्वितीय)
	१८	रमणपाल	रयणपाल
	२०	स० पट्टावली ३० पांच पुत्र में तृतीय नंबर	ख० पट्टावली ३ के अनुसार पाँच पुत्रों में से तीसरे।
	२३	पंच	पंचशती
	२४	बल्लभभारती	वल्लभभारती
३०	४	यह	×
	७	मूलगच्छा	मूलगच्छ
	८	जिनचन्द्रसूरि	जिनसिंहसूरि
३१	१	प्रभावती	पद्मावती
	२५	मोहिलवाणी	मोहिलवाडी
३२	२६	पंच	पंचशती
३३	१६	१४१८	१३१८
	१९	१३४७	१३४१
३४	९	प्राप्ति का	प्राप्ति का।
	१३	अष्टभाषाम	अष्टभाषामय
	१३	'निरवधिरुचिर ज्ञानमय,	'निरवधिरुचिरज्ञानं'
	१६	नन्दाप्तोरुविशुद्धयोग[1]	नन्दाप्तोरुविशुद्धयोग-
	१७	शास्तं	शस्तं
	१९	दन्ताज्ञानरमां	रन्ता ज्ञानरमां
३५	१२	ग्रन्थों का निर्माण किया।	ग्रन्थों का किया।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६	१९	पद्मदेवसूरि	पद्मदेवसूरि,
	२०	निम्नग्रन्थ	निम्न ग्रन्थ
३७	८	ये न ज्ञान कला-	येन ज्ञानकला-
३७	१९	देनेन्द्रसूरि	देवेन्द्रसूरि
३८	१३	१०९७	१३९७
	१३	काम्बोजकुलीयढ	काम्बोजकुलीय ठ०
	१४	अभ्यर्थतया	अभ्यर्थनया
३९	५	सहाय्योद्भिन्नसौरभ	साहाय्योद्भिन्नसौरभ ।
	७	प्रशात्ति:	प्रशस्ति:
	१३	महावीरप्रतिभाकल्प	महावीरप्रतिमाकल्प
	१५	देवगिरि	देवगिरि,
४०	१६	वैभारागिरि	वैभारगिरि
	१८	शुद्धदेह	शुद्धदेही
४१	११	शेरोषक	शेरीषक
	१४	आशापल्ली	आशापल्ली,
	१५	१३६९	१३६९ में
	१६	१३९१	१३९१ में
१६,१७		नाभि नंदनजिनोद्धार प्रबन्ध	नाभिनन्दनजिनोद्धारप्रबन्ध
४२	३	३१८	३२८
	५	लिखित	लेखित
	८	ऽत्रवंशे	ऽत्र वंशे
	१०	प्रसाद	प्रसाद-
	११	मासाद्यसद्गुण-	मासाद्य सद्गुण-
	१३	लिखित	लेखित
	१६	सूरिजिनप्रभांङिकमले	सूरिजिनप्रभाङ्घ्रिकमले

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	१८	वित्तपवनं	वित्तवपनं
	१९	समाजस्तु ताथ	समाजस्तुतान्
४३	४	पुराश्रीजिनप्रभसूरिभिः	पुरः श्रीजिनप्रभसूरिभिः
	४	पुरसारं	पुरस्सरं
	७	चित्रद्धान्दो	चित्रच्छन्दो
	१३	तपोरमतकुट्टनशतं	तपोटमतकुट्टनशतं
	१७	२९ वीं	२० वीं
	२०	समुदाय पिष्ट	समुदाय की दृष्टि
४४-४,६		गुच्छाग्रह	गच्छाग्रह
	८	रुद्रपल्ल	रुद्रपल्ली
	१५	सोमसुंदर	सोमतिलक
४५	१	प्रतिरोघ	प्रतिबोध
४६	१०	आचार्य ही ने	आचार्यश्री ने
	११	रखकर	रचकर
	२५	जिनदेवसूरि	जिनदेवसूरि[1]
४७	९	की	के
	२२	रजित	रचित
	२३	अमरनाम	अपरनाम
४८	६	(युगप्रवरागम जिनपति सूरि के चाचा)	युगप्रवरागम जिनपतिसूरि के चाचा,
	७	सङ्घेप	सङ्घे
	९	बाणष्ट	बाणाष्ट
	१५	विद्यमधुर	विक्रमपुर
	१८	उपरयुक्त	उपर्युक्त
	१९	कन्यानयनवर्त मान कालानूर	कन्यानयन वर्तमान कानानूर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४८	२१	किन्तु समय	किन्तु उस समय
	२३	सिंघि	सिंघी
	२५	बागुड़	बागड़
	२६	उल्छेख	उल्लेख
४९	१५	फरयान	फरमान
	१७	नवाहा	नवहा
	२४	महावीर पुत्र	महावीर प्रभु
५०	२	निकाला	निकला
	४	पहुंचा	पहुंचा।
५१	१५	निश्चितया	निश्चिततया
	१८	सेवागड़	से बागड़
	२४	युगप्रभ रागम	युगप्रवरागम
५२	११	५४	९४
	१४	मृगांकगं, यो	मृगाङ्कगं यो,
५३	६	अधिष्ठापक	अधिष्ठायक
५४	५	वृत्तान्त होने	वृत्तान्त ज्ञात होने
	९	आर्शीर्वाद	आशीर्वाद
	१२	जैन-संध	जैन-संघ
५५	९	जिनप्रभ शाही	जिमप्रभ ने शाही
	११	सिद्धातवाचना	सिद्धान्तवाचना
५६	७	आया	हो आया
	१०	पाण्डित	पाण्डित्य
५९	५	सरिजी	सूरिजी
	११	शासन भावना	शासन प्रभावना
६०	५	संघवात्मलादि	संघवात्सल्यादि
	२०	जयपुरस्तोत्र	गजपुरस्तोत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६०	२२	पृषत्कँ विषयाँ कँमिते[12]	पृषत्कँविषयाँर्कमिते[12]
	२४	यात्रोत्सवोपतत:	यात्रोत्सवोपनत
६१	२०	प्रभावती देवी	पद्मावती देवी
६४	२	यह	×
६५	१	मुहम्मदशाह	महम्मदशाह
	१	सत्कार	सत्कृत
	२	राघवचैतन्य	राघवचैतन्य
	५	भी	ही
	८	प्रभावती	पद्मावती
	२३	शाकं भरीश्वर	शाकम्भरीश्वर
	२४	द्विजागुणी	द्विजाग्रणी
	२६	टशे	हशे
६६	१७	कर्तव्य	आश्चर्य
६९	१९	बिया	दिया
७१	२०	दें	वांछित दें
७३	२४	वैठ	बैठ
७४	५	देने का	देने को
	१२	नागरिकों	नागरिकों ने
	२६	करे ।	करें ।
७६	६	१७४	? १३७४
	७	लेरस्सए	तेरस्ससए
७७	१	तथा	तपा
७८	३	जिनप्रभ	जिनप्रभ ने
	२४	शिलोञ्छा	शिलोञ्छ
७९	१	कर्म	कई
	८	वाचनार्थ	वाचनाचार्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७९	२०	नानानाटकहाटका भरगिरिः	नानानाटकहाटकामरगिरिः
	२३	सरोरूह–	सरोरुह
८०	८	विपक्षवादिद्विपञ्चवक्त्रः	विपक्षवादिद्विपपञ्चवक्त्रः
	११	तजित–	तर्जित-
	१३	जिनमेरुसूरि	जिनमेरुसूरिः
	१५	गुणगणभणि–	गुणगणमणि
८१	३	विपक्षवादिद्विपञ्चवक्त्रः	विपक्षवादिद्विपपञ्चवक्त्रः
८३	४	अरउक्कमल्ल	अरडक्कमल्ल
	१९	राघवलक्ष	राध्रवलक्ष
८४	१	उ०	ठ०
	१९	वाणेन्दु	बाणेन्दु
८५	११	समच्यर्थिता	समभ्यर्थिता
	२०	न्यूनधमः	न्यून धर्मः
	२४	स चरित्रभूः	सच्चरित्रभूः
८६	३	अरउकमल्लः	अरडकमल्लः
	११	अरउक्कमल्ल	अरडक्कमल्ल
	२३	अरउक्कमल्ल	अरडक्कमल्ल
८७	६	र्माघट्टे (?) रि	र्माघट्टेरि-
	१८	अरउक्कमल्ल	अरडक्कमल्ल
८९	४	स० १४	सं० १४····
	१४	सीतालती	सीता सती
	१९	सागरतिलक से	सागरतिलक के
९१	३	वीरस्तोत्र टीका	वीरस्तोत्र टीकाँ
९२	६	पडिवद्धा	पडिबद्धा
	९	जिणदत्तसूरिसंलाण	जिणदत्तसूरिसंताण
	१०	ढाणप्पमिए	ट्ठाणप्पमिए

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९२	१३	सिरिजणवल्लह्-	सिरिजिणवल्लह
	१७	पसाया ओं	पसायाओं
	१९	ससिसूरपई वा	ससिसूरपईवा
९३	७	पच्चक्खाणठाइं	पच्चक्खाणठाणाइं
	९	सुबहुविट्ठाणेसु	सुबहुविहाणेसु
९४	३	षद्पदकाव्यटोका	षट्पदकाव्य टीका
	९	समर्पिता	समर्थिता
	१४	श्रीजिनप्रभसूरीकृत	श्रीजिनप्रभसूरिकृत
	१५	भाषाकाव्यावचूरी:	भाषाकाव्यावचूरि:
९५	४	सुगतां हि सेवा-	सुगतांह्रिसेवा-
	६	विधा	विधाय
	२६	समर्पित:	समर्थित:
९६	१	अश्वानबोधतोर्थकल्प	अश्वावबोधतीर्थकल्प
	१२	चतुरशीतिमहातीर्थ- नामङ्ग्रह्कल्प,	चतुरशीतिमहातीर्थनामसंग्रह्कल्प-
	१६	मृदुविशदयद्दा-	मृदुविशदपदा-
	१८,२१,	जिणपट्टसूरीहिं	जिणप्पहसूरीहिं
	२०	पूसवक्कवारसीए	पूसक्कबारसीए
	२३	चिट्ठसिय-	जिट्ठसिय-
	२४	शशधरहृषोकाक्षि-	शशधरहृषीकाक्षि-
	२७	रितिविरचयां चक्षु:	रिति विरचयांचक्रु:
९७	२	आमरकुण्ड-	अमरकुण्ड-
	१०	पृषत्कविषयिकिमिते	पृषत्कविषयार्कमिते
	११	यात्रोत्सवो-	यात्रोत्सवो-
	११	जिनप्रभोस्य	जिनप्रभाख्य:

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९७	१२	वीजं	बीजं
	२४	हरिसागरसूरि	हरिसागरसूरि ज्ञान मण्डार,
९८	४	च्छान्दोविशेषादि-	च्छन्दोविशेषादि-
	२१	निर्लोहितशठकमठं	निर्लोठितशठकमठं
९९	४	ऋषभनाथमनाथ	ऋषभनाथभनाथ
१००	२	गुणाद्धि	गुणर्द्धि
१००	१६	दोसाबहार दवखो	दोसावहारदक्खो
१०१	१२	धन्नपुन्नसुकपत्थनरा	धन्नपुन्नसुकयत्थनरा
	२४	अवधावि	अवधारि
१०२	६	वर्गीकरके	वर्गीकरण करक
	१८	मन्दोहमोहावतमस-तरणि	सन्दोहमोहावनमसतरणि
	२२	आकाव्य	आ काव्य
१०३	६	दमंदमभोजसा	दमंदममोजसा
	७	ह्यकामचदामय	ह्यकामयदामय
	१०	आचाममाचाममभि-भाश्व	आचाममाचामभिभाश्व-
	१८	ब्राहम्यै	ब्राह्म्यै
१०४	२३	श्लाघा	श्लाघा
१०५	१	इसमें मत्,	इसमे अस्मद् के मत्,
१०६	१२	और	और भी
	१९	विष्ठप-	विष्टप-
१०८	९	रिप्पनकं	टिप्पनकं
११०	९	अभयदेवसूरि शि०	(अभयदेवसूरि शिष्य)
	२५	१२१	१२०
११२	७	श्रीचन्द्रसूरी	श्रीचन्द्रसूरि
	१३	विपय	विषय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११२	१८	कथादन्नकोष	कथारत्नकोष
	२१	ह० ५६२	इ० ५६२
	२५	लालक	लालचंद
११३	९	८ गाथा, ११	८ गाथा, पृष्ठ ११
	१०	गा० ९।१५	९ गाथा, पृष्ठ १५,
	११	गा० ५ १०३	५ गाथा, पृष्ठ १०३
	१२	गा० ६ १०३	६ गाथा, पृष्ठ १०३
११४	३	प्रतिष्ठाविवान	प्रतिष्ठाविधान का
११७	९	वर्धमानविघकल्प	वर्धमानविद्याकल्प
	२०	वर्धमानविघाकल्प	वर्धमानविद्याकल्प
११८	८	में गायत्री आचार्य	में आचार्य
१२०	१९	'संदेह 'विषौषधि'	'सदेहविषौषधि'
१२१	११	१२६४	१३६४
१२३	११	तात्वज्ञ	तत्वज्ञ
	२५	इसमें	इनमें
१२४	११	चतुर्विशति	चतुर्विंशति
	१५		
१२५	९	सपृहयोदय:	सप्तहयोदय:
	१०	नवमांमल	नयमांसल
	१९	भवनाथनिभानन	भनाथनिभानन
	२४	के	की
१२६	९	रतिर्जयिनं	रतिपतेर्जयिनं
	१९	बंघनंघा:	वन्द्य नन्द्या:
	२२	अष्टम छन्द	२८ वाँ छन्द
१२७	१८	यस्मादघोत्ये–	यस्माद्घोत्ये–
	२४	प्रणम्यादिजिन	प्रणम्यादिजिनं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२८	१९	पार्श्वजिनस्तव	पार्श्वजिनस्तव शीर्षक पंक्ति २३ में 'द्व्याश्रयकाव्य जैसा बन गया है।' इसके पश्चात् पैराग्राफ छोड़कर पढ़ें।
१२९	१२	स्तोत्र	स्तोत्रं
	२६	सियपक्खाणदयरं	सियपक्खाणंदयरं
१३०	१२	फणोन्द्र	फणीन्द्रः
	१२	रुद्यचोतिताशा	रुद्योतिताशा
१३१	१५	महिमश्रियाहं	महिमश्रियामहं
	१६	कमरुदर्पकोषिणाम्	कमठदर्पकोषिणम् ।
	१८	श्रवणस्तवोत्तमा	श्रवणतस्तवोत्तमा
	२०	नाकिनामकयुगेन	नाकिनायकयुगेन
	२१	मुद्ये	मुक्तये
	२२	हैं	हैं
	२६	सुरनपूइया	सुरनरपूइय
	२७	संघवण	संथवण
१३२	९	ते लुक्कं	तेलुक्कं
	१४	ढालिय–	टालिय–
१३४	१२	भव्यानऽवस्तु	भव्यानवतु
	२२	दृष्टव्य	द्रष्टव्य
	२५	स्पृहामवृजिनप्रमवाय	स्पृहामवृजिनप्रभवाय
	२६	लक्ष्मीविभर्ति	लक्ष्मीबिभर्ति
१३५	१६	दुराधामपि	दुराराधामपि
१३६	२	प्रतिलोमानुलोमाद्यै	प्रतिलोमानुलोमाद्यैः
	५	ननानेननन्नोनम	ननानेनननोनन
	१०	जिनेश्वरवरो भव्याब्ज-	जिने[1]श्वरवरो भ[4]व्याब्ज–
	१२	सुख[2]प्रदाः	सुख[3]प्रदाः
	२०	छन्दोभिर्विविधैरधीर	छन्दोभिर्विविधैरधीरधी-

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	२३	दूयभानः	दूयमानः
१३७	४	सेव्यांऽह्रिशा	सेव्यांऽह्रिम्
१३८	१५	तमकसिणसप्परवयमो	तमकसिणसप्पलयमो
	१८	तुहश्चस्ति	तुहशुस्ति–
	२२	रंतूणहितयके	रंतूणहितपके
१३९	२	कुमुदमकथनिदानं	कुमुदमकयनिदानं
	१३	नन्दाप्तोरुविशुद्धद्योग–	नन्दाप्तोरुविशुद्धयोग–
	१५	सिद्धरमणी	सिद्धिरमणी
१४०	१०	न ह्त्र	नह्य
	१५	जिणथहसूरीहि	जिणपहसूरीहि
१४२	१९	माघव	माघ
१४३	१	स्तवों	स्तव
	८	गतदनवगम	गलदनवगम
	१२	लसदवम्	लसदवम
	१५	व्यहृत	व्यवहृत
	२५	त्ववद्यमुक्तनेमे	त्वमवद्यमुक्तनेमे
१४४	२१	श्रीजिनसूरिभिः	श्रीजिनप्रभसूरिभिः
१४५	१	देवैर्य	देवैर्यः
	४	कृताविद्यो परमा	कृताविद्योपरमा
	१२	चविड चंदाणणाय	चविउं चंदाणणाए
	१५	पद्य है।	पद्य हैं।
	१८	जगज्जनलोचनं भृङ्ग सरोज	जगज्जनलोचनभृङ्गसरोज
१४६	७	सेविनपदे	सेवियपदे
	१३	नमने	नमते
	२५	हारिहास–	हारिहार–

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४७	१२,१३	हथिणापुर गो-वनिपात साहि	हथिणापुरगोवनि, पातसाहि
	१५	दिगरहिय	दिगरिहय
	२१	अशितेरीष	अजितेरीष
	२१	सनखमसचति सईन	सन खमस वतिसईन
१४९	२	तपोत्तीर्ण	तापोत्तीर्ण
	८	नमिभो	नमिमो
	१९	प्रदघान्	प्रदद्यान्
१५०	२०	चण्डमतिण्ड	चण्डमार्तण्ड
१५१	१५	वाचना	वाचनां
	१९	सदैवेनं	सदैवैनं
१५२	३	प्रतिष्ठितं तम:	प्रतिष्ठितं तम:पारे
	१०	गुरुनेत्रं	गुरुर्नेत्रं
	२०	इत्याहृत	इत्यादृत
	२३	श्लोक है ।	श्लोक हैं ।
१५३	२	लुम्पता	लुम्पतां
	१३	मघवताऽधवता	मघवताऽघवता
१५४	३	ज्निाचार्यों	जैनाचार्यों
	१५	जिणेशर	जिणेसर
	२३	सिद्धिनु	सिद्धु न
१५५	१	बंधुन	बंधण
	४	चउविसंपि	चउवीसंपि
	२०	स्तविमि	स्तवीमि
१५६	१	दिवराय	दिवराय (बलिनाम)
	३	नियजंमु	नियजंमु सफलु
	९	ग्रंथ में भी आये हैं ।	ग्रंथ में प्रकाशित हो चुके हैं ।
१५७	६	आणंदपरे	आणंदयरे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५७	१०	पयपंकय भुसलि	पयपंकयभसलि
	१७	पव्पूरि	कप्पूरि
१५८	८	कोडाकोडीडं	कोडाकोडीउं
	१०	छट्ठी	छट्ठो
	१६	जिणपहसूराहिं	जिणपहसूरीहि
१५९	२०	वन्दनकतिक्रमण	वन्दनकप्रतिक्रमण
१६०	११	कुर्याज्जिन	कुर्याज्जिन
१६०	१३	स्पृहयती	स्पृहयति
१६२	५	प्रतोष्ठिता	प्रतिष्ठिता
	१७	स्पप्ट	स्पष्ट
१६४	२	पद्मभूंगिके	पद्मभृंगिके
	२४	मधुरोज्जला	मधुरोज्ज्वला
१६५	७	विग्रहं	विग्रहा
	१६	श्लोक से	श्लोक के
	२२	नाम की	नाम भी
१६७	११	सान्निच्य	सान्निध्य
१७०	१७	४६	४४
	२३	किसी अन्य	किसी में किसी अन्य
१७१	२०	कौ	को
	२५	के बाच्य	के लिये बाच्य
१७२	१	विच्छिन्न	अपूर्ण

नोट—पृष्ठ ७९ पंक्ति ८ वाचनाचार्य चारित्रवर्द्धन शीर्षक से लेकर पृष्ठ ८८ पंक्ति १३ तक का अंश पृष्ठ ८९ पंक्ति ११ पर पढ़ें।

●

जैनप्रभीय प्रकाशित स्तोत्र-सूची

क्रमांक	स्तवनाम	आदिपद	पद्य सं०	मुद्रित स्थल
१.	पञ्चनमस्कृतिस्तव	प्रतिष्ठितं तमःछरे	३३	प्रकरणरत्नाकर भा० ४
२.	पञ्चपरमेष्ठिस्तव	स्वः श्रियं श्रीमदर्हन्तः	५	,, ,,
३.	अर्हदादि स्तोत्र	मानेनोर्वी व्यहृतपरितो	८	जैन स्तोत्र संदोह भा० में चन्द्रप्रभसूतिकृत है।
४.	प्राभातिक नामावली	सौभाग्यभाजन		विधिमार्गप्रपा
५.	वीतरागस्तव	जयन्ति पादा जिननायकस्य	१६	प्रकरणरत्नाकर भा० ४
६.	पञ्चकल्याणकस्तव	निलिम्पलोकामितभूतलं	८	,, ,,
७.	चतुर्विंशतिजिनस्तव	कनककान्तिधनुःशत-	२९	,, ,, काव्यमाला गुच्छक ७
८.	,,	ऋषभनम्रसुरासुरशेखरं	२९	,, ,, जैन स्तोत्र समुच्चय
९.	,,	आनम्रनाकिपतिरत्न	२५	,, ,,
१०.	,,	पात्वादिदेवो दशकल्प-	२९	,, भाग २,
११.	,, (श्लेषमय)	यं सततमक्षमालोप-	३०	

१२.	,,	तत्त्वानि तत्वानि भूतेषु	२८ प्रकरणरत्नाकर भा० ४
१३.	,,	प्रणम्यादिजिनं प्राणी	२८ ,, ,,
१४.	,,	जिनर्षभप्रीणितभव्य-	८ ,, ,,
१५.	,,	नतसुरेन्द्रजिनेन्द्रयुगादि-	९ पञ्चप्रतिक्रमण सूत्र (वीरपुत्र)।
१६.	पुंडरीकगिरिमण्डन ऋषभ-स्तव-कातन्त्र सन्धिसूत्रगर्भित	सिद्धो वर्णसमाम्नायः	२३ प्रकरण रत्नाकर भा० ३; जैन स्तोत्र संदोह भा० २ में निर्नाम।
१७.	युगादिदेवस्तव (८भाषा)	निरवधिरुचिरज्ञानं	४० प्रकरणरत्नाकर भा० २,
१८.	,,	अस्तु श्री नाभिभूर्देवो	११ ,, भा० ४; जैन स्तोत्र समुच्चय।
१९.	,,	अल्लाल्लाहि सुराहं	११ जैन स्तोत्र समुच्चय, जैन साहित्य संशोधक खंड ३. अंक १.
२०.	ऋषभदेवाज्ञास्तव	नयगमभंगपहाणा	११ जैन स्तोत्र संदोह भा० १
२१.	अजितजिनस्तव	विश्वेश्वरं मथितमन्मथ-	२१ जैन स्तोत्र समुच्चय; चतुर्विंशति जिनानन्द स्तुति-मेरुविजयकृत।
२२.	चन्द्रप्रभजिनस्तव (षड्भाषा)	नमो महसेननरेन्द्रतनूज	१३ प्रकरणरत्नाकर भा० ४
२३.	,,	देवैर्यस्तुष्टुवे तुष्टैः	४ ,, ,,
२४.	शान्तिजिनस्तव	श्रीशान्तिनाथो भगवान्	२० ,, ,,
२५.	अरजिनस्तव	जय शरदशकलदशहय.	१४ ,, ,,

२६.	नेमिजिनस्तव (क्रियागुप्त)	श्रीहरिकुल हीराकर	२०	,, ,,
२७.	पार्श्वजिनस्तव	कामे वामेय शक्तिः	१७	काव्यमाला गुच्छक ७.
२८.	,, (फलवर्द्धि)	अधियदुपनमन्तो	१२	,, ,,
२९.	,, (जीरापल्लि)	जीरिकापुरपतिं सदैव तं	१५	प्रकरणरत्नाकर भा० ४.
३०.	,, (८अतिहार्य)	त्वां विनुत्य महिमश्रिया-	१०	,, ,,
३१.	पार्श्वजिनस्तव	श्रीपार्श्वपादानतनागराज	८	प्रकरणरत्नाकर भा० ४.
३२.	,,	पार्श्वं प्रभुं शश्वदकोपमानं	८	,, ,,
३३.	,,	श्रीपार्श्वं परमात्मानं	८	जैन स्तोत्र संदोह भा० २.
३४.	,,	श्रीपार्श्वं भावतः स्तौमि	९	,, ,, प्रकरण रत्नाकर भा० ४.
३५.	,, (नवग्रहगर्भित)	दोसावहारदक्खो	१०	पंचप्रतिक्रमणसूत्र
३६.	,, (फलवर्द्धि)	सयलाहिवाहिजलहर	११	प्रकरणरत्नाकर भा० ४.
३७.	वीरजिनस्तव(चित्रकाव्य)	चित्रैः स्तोष्ये जिनं वीरं	२७	,, ,, जैन स्तोत्र समुच्चय.
३८.	,, (विविधछंद)	कंसारिक्रमनिर्यदा	२५	काव्यमाला गुच्छक ७.
३९.	,,(पंचवर्गपरिहार)	स्वः श्रेयससरसीरूह	२६	प्रकरण रत्नाकर भा० ४.
४०.	,, (लक्षणप्रयोग)	निस्तीर्णविस्तीर्णभवार्णवं	१७	,, ,,
४१.	,,	असमशमनिवासं	२५	,, ,,

४२. ,,	श्रीवर्द्धमानः सुखवृद्धये	९	,, ,,
४३. वीर निर्वाणकल्याणक स्तव	श्रीसिद्धार्थनरेन्द्रवंश	१९	,, ,, काव्यमाला गुच्छक ७,
४४. वीरजिनस्तव (५ कल्याणकमय)	पराक्रमेणेव पराजितोयं	३६	,, ,,
४५. ,,	श्रीवर्द्धमानपरिपूरित	१३	,, ,,
४६. तीर्थयात्रास्तव	सिरिसत्तुंजयतित्थे	९	विधिमार्गप्रपा
४७. मथुरायात्रा स्तोत्र	सुराचलश्रीजिति	१०	,,
४८. मथुरा स्तूप स्तुति	श्रीदेवनिर्मितस्तूप	४	,,
४९. स्तुति त्रोटक	नियजम्मु सफलु	५	,,
५०. ,,	ते धन्न पुन्न सुकयत्थतरा	४	,,
५१. गौतमस्तव	श्रीमन्तं मगधेषु	२१	प्रकरण रत्नाकर भा० ४; काव्यमाला गुच्छक ७,
५२. ,,	जम्मपवित्तियसिरि	२५	जैन स्तोत्र संदोह भा० १,
५३. गौतमाष्टक	ॐ नमस्त्रिजगन्नेतुः	९	,, ,,
५४. जिनसिंहसूरिस्तव	प्रभुः प्रदधान्मुनिप	१३	प्रकरण रत्नाकर भा० ४,
५५. सिद्धान्तागमस्तव	नत्वा गुरुभ्यः श्रुतदेवतायै	४५	काव्यमाला गुच्छक ७,
५६. शारदा स्तव	ॐ नमस्त्रिदशवन्दितक्रमे	९	जैन स्तोत्र संदोह भा० २,
५७. ,,	वाग्देवते भक्तिमतां	१३	प्रकरण रत्नाकर भा० ४,
५८. पद्मावती चतुष्पदिका	जिणसासणु अवधारि	३७	भैरव पद्मावतीकल्प (नवाब)
५९. वर्द्धमान विद्यास्तव	आसि किल ठुत्तरसय	१७	वर्द्धमानविद्याकल्प
६०. चतुर्विंशति जिनस्तव	आनन्दसुन्दर	२९	जैनस्तोत्र समुच्चय में निर्नामिक
६१. वीरजिनस्तव चित्रमय	विश्वश्रीविधुरच्छिदे ●	२१	जैन स्तोत्र समुच्चय

जैनप्रभीय अप्रकाशित स्तोत्र

क्रमांक	नाम	आदि पद	पद्यसंख्या
१.	मंगलाष्टक	जितभावद्विषां	८
२.	पञ्चपरमेष्ठिस्तव	परमेष्ठिनः सुरतरू-	७
३.	द्वित्रिपञ्चकल्याणकस्तव	पद्मप्रभ प्रभोर्जन्म	२५
४.	युगादिदेवस्तव	मेरौ दुग्धपयोधि	३३
५.	चन्द्रप्रभचरित्र	चंदप्पह-चंदप्पह	२२
६.	शान्तिनाथाष्टक (पारसीछपा)	अजि कुदु काफु जुनूवि	८
७.	पार्श्वजिनस्तव	श्रीपार्श्वः श्रेयसे भूयाद्व	४४
८.	,, (फलवर्द्धि)	जयामलश्रीफलवर्द्धि पार्श्व	२१
९.	,, ,,	श्रीफलवर्द्धि पार्श्व	९
१०.	,, (षड्ऋतु वर्णन)	असमसरणीय जओ	७
११.	,, (उवसग्गहर-स्तोत्र पादपूर्ति)	पणमिय सुरनरपूइया	२२
१२.	तीर्थमालास्तव	चउवीसंपि जिणिंदे	१२
१३.	विज्ञप्ति	सिरिवीयरायदेवाहिदेव	३५
१४.	सुधर्मस्वामी स्तोत्र	आगमत्रिपथगाहिमवन्तं	२१
१५.	४५ नामगर्भित आगमस्तव	सिरिवीरजिणं सुयरयरोहणं	११
१६.	परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका	धर्मधर्मान्तरं मत्वा	३२
१७.	कालचक्रकुलकं	अवसप्पिणी उसप्पिणि	३४
१८.	हीयाली	अकुलु अमूलु अ	४

परिशिष्टः जिनप्रभसूरिपरपट्टागीत (जिनप्रभसूरिगीत, जिनदेवसूरिगीत)

●

(१) मङ्गलाष्टकम्

जितभावद्विषां सर्वविदां तत्त्वार्थदर्शिनाम् ।
त्रैलोक्यमहितांह्रीणामर्हतांमस्तु मङ्गलम् ॥ १ ॥
कृत्स्नकर्मक्षयावाप्तमुक्तिसाम्राज्यसम्पदाम् ।
गुणाष्टकैश्वर्ययुषां सिद्धानामस्तु मङ्गलम् ॥ २ ॥
पञ्चाचारसमृद्धानां सुतजीवातुवेदिनाम् ।
भवच्छिदामाचार्याणां श्रीमतामस्तु मङ्गलम् ॥ ३ ॥
वाचकानां जिनवचः-पीयूषरसतृष्णजः ।
भव्यान् सूक्तिसुधावर्षैः प्रीणतामस्तु मङ्गलम् ॥ ४ ॥
साधूनां सिद्धिसम्बन्धी-लीलालालसचेतसाम् ।
सम्यग्ज्ञानक्रियाबद्धो-द्यमनोमस्तु मङ्गलम् ॥ ५ ॥
जिनागमगजेन्द्रस्य स्याद्वादकरशालिनः ।
रहस्योत्सर्गदन्ताभ्यां शोभितस्यास्तु मङ्गलम् ॥ ६ ॥
कुतीर्थिमत्तेभहरेः पूजितस्यार्हतामपि ।
चतुर्विधस्थानधस्य श्रीसंघस्यास्तु मङ्गलम् ॥ ७ ॥
मङ्गलस्तोत्रमंगल्य प्रदीपस्यास्य दानतः ।
येऽर्चयन्ति जिनान् भक्त्या ते स्युः प्राप्तजिनप्रभाः ॥ ८ ॥

इति मङ्गलाष्टकम् ।

[अभयसिंह ज्ञान भंडार पो. १६. गु. २१८ पृ. २२३]

●

(२) पञ्चपरमेष्ठिस्तवः

परमेष्ठिनः सुरतरू-निव नुतविदितत्रिविष्टपावस्थान् ।
पञ्चापि सदा पत्रान् सुमनः प्रियसौरभान् सफलमुक्तीन् ॥ १ ॥

कल्याणमयशरीरा रुचिरचतुःसंख्यकान् ताः सततम् ।
सर्वक्षमाभृदग्र्या मेरव इव सन्तु हृद्यकूटा नः ॥ २ ॥
विधुरवियुक्तमविग्रह-मकर्मकं सततगतमनाकल्पम् ।
अच्युतपदेतिरूढं नभ इव संस्तौमि सिद्धिनिकुरम्बम् ॥ ३ ॥
असमानक्रममकरा मुक्तावासाः सरस्वतीनिलयाः ।
आचार्याः सज्जनद-त्तरङ्गकाः सागरा इव जयन्ति ॥ ४ ॥
पान्तु विनीतागमदा अपव्यपाया अलंकृतसुवर्णाः ।
दर्शितनयनालीकाः शक्रा इव जययुता उपाध्यायाः ॥ ५ ॥
विरचितकेसोद्धरणो जडाशयानामपास्तकालुष्यः ।
अध्युषितो यमकाष्टं साधुगुणं कुम्भयोनिरिव जीयात् ॥ ६ ॥
परमेष्ठिपञ्चकमिदं जिनप्रभवशसनैकसर्वस्वम् ।
यः पठति निर्मलमतिः सततं शिवसौख्यमश्नुते सततम् ॥ ७ ॥

इति श्रीपञ्चपरमेष्ठिस्तोत्रं कृतं श्रीजिनप्रभसूरिभिः ॥
[अभय जैन ग्रन्थालय ९५२३ प. १. ले. १७वीं]

●

(३) द्वित्रिपञ्चकल्याणकस्तवः

पद्मप्रभप्रभोर्जन्म गर्भाधानं च नेमिनः ।
भवार्तिं कार्तिकश्याम-द्वादश्यां लुम्पतां मम ॥ १ ॥
दीक्षारस्य नमेर्ज्ञानं श्रीमल्लेस्ते च जन्म च ।
मार्गस्य शुक्लैकादश्या—मथात्कल्याणपञ्चकम् ॥ २ ॥
ज्ञानश्रिया वासुपूज्यो जन्मना चाभिनन्दनः ।
यां पवित्रितवान् माघ-द्वियीया सा शुचिः श्रिये ॥ ३ ॥
माघश्वेततृतीयायां ययोर्जन्ममहोऽजनि ।
प्रपद्ये शरणं पादांस्तयोर्विमलधर्मयोः ॥ ४ ॥

सुपार्श्वः प्राप कैवल्यं केवलं चन्द्रलाञ्छनः ।
यस्यां सा वः सुखायास्तु कृष्णाफाल्गुनसप्तमी ॥ ५ ॥
श्रीश्रेयांसस्य जन्माभूत् ज्ञानं श्रीसुव्रतप्रभोः ।
यस्यां सा बहुला दद्यात् फाल्गुनी द्वादशी मुदम् ॥ ६ ॥
मल्लिर्मुक्तिमुरीचक्रे दीक्षां च मुनिसुव्रतः ।
यत्र सा श्रेयसे भूयात् फाल्गुनद्वादशी सिता ॥ ७ ॥
अजितः संभवोऽनंतः प्रापुर्यत्र परं पदम् ।
चिनोतु सावः शुचितां शुचिश्चैत्रस्य पञ्चमी ॥ ८ ॥
अनन्तस्य व्रतं ज्ञाने कुन्थोर्जन्ममहोत्सवः ।
वैशाखाद्यचतुर्दश्यां नन्द्यात् कल्याणकत्रयी ॥ ९ ॥
वैशाखे विशदाष्टभ्यां सुमतेर्जननोत्सवः ।
अभिनन्दननाथस्य मुक्तिश्च कुरुतां मुदाम् ॥१०॥
भाद्रस्यासितसप्तम्यां मुक्तिश्चन्द्रप्रभप्रभोः ।
शान्तेश्च गर्भावतरः तारं वितरतां सुखम् ॥११॥
नमेन्द्रचूडारत्नांशु–मञ्जरीपिञ्जरक्रमाः ।
जयन्ति जिनशार्दूलास्त्रैलोक्याभयलग्नकाः ॥१२॥
अजरामरतां यान्ति य–पि भव्यजन्तवः ।
सा सर्वज्ञमुखाम्भोधि–निर्गतावाक्सुधाश्रिये ॥१३॥
विलेपनं ददानाह्रि—नखांशुघुसृणद्रवैः ।
नम्रामराङ्गनास्येषु त्रायतां वः सरस्वती ॥१४॥
इति स्तुताः जिनाधीशाः कल्याणैर्द्वित्रिपञ्चभिः ।
भव्यात्मनां प्रमोदाय श्रीजिनप्रभसूरिभिः ॥१५॥

इति द्वित्रिपञ्चकल्याणकस्तुतयः समाप्ताः ॥

[अभयसिंह ज्ञान भंडार, पो–१६ गु. २१८ प. १६६ ले. १६वीं]

●

(४) युगादिदेवस्तवः

(शार्दूलविक्रीडितच्छन्दः)

मेरौ दुग्धपयोधिवाःप्लवमिषाज्जन्माभिषेके ध्रुवं
यत्कीर्त्तिप्रकराः प्रसस्तुरभितो लोकत्रयीं लङ्घितुम् ।
नैव क्वापि कदापि युष्मदपरं स्वामी करिष्याम इ–
त्यङ्गस्पर्शनतः प्रणीतशपथास्तं नाभिसूनुं स्तुमः ॥ १ ॥
पुण्यश्रीसुरभेरभीप्सिततरां चारिं प्रदातुं किमु
प्रत्याग्राहरितालिकाङ्कुरततिर्न्यस्ता तपः सम्पदा ।
यस्यांशस्थलयोश्चकास्ति चिकुरश्रेणी कृपाणी रुचिः
स श्रीमानृषभप्रभुः प्रभवतु प्रद्रोग्धुमेनांसि नः ॥ २ ॥
वस्तु प्राप्य किमप्यपूर्वमनधा दद्युर्गुरुभ्योऽङ्गजाः
प्रागित्यार्यकुलक्रमानुसरणाद्योऽनर्घरत्नोपम् ।
मात्रे कौशलिकां व्यधत्त विविधक्लेशार्जितं केवलं
सद्यः सद्यतु नाभिनन्दनविभुर्विद्यामविद्यां मम ॥ ३ ॥
मामेवैक्षत पूर्वमस्य जननी स्वप्ने गजादीन् पुनः
पश्चादित्यभजद् भवन्तमृषभः सौभाग्यदर्पा ध्रुवम् ।
जातस्थामतया धुरंधरतया गत्याजितस्त्याजिता–
हङ्कारः शरणी चकार भगवंस्त्वामेव चाङ्कच्छलात् ॥ ४ ॥
त्वां वीक्ष्योभयलोकभोग्यफलदं स्वं चैहिकर्द्धिप्रदं
पङ्क्तिः कल्पमहीरुहास्तव गुणाधिक्येन संप्रेरिताः ।
एकैकं निजपल्लवं नखमिषात् कृत्वार्चनं त्वत्पदो–
र्मोघं मन्यतया जिन त्वदुदये जग्मुः किलादृश्यताम् ॥ ५ ॥
त्वत्सेवां विनमेर्नमेश्च करतोः पातालपातालस–
न्तोषः खेचरचक्रितां निरवपद्यस्मादसौ निश्चितम् ।
त्वां साक्षात्तदसिद्धयेप्युभयतः सङ्क्रान्तमेक्ष्यानुमां
हृद्या धत्त यदादिमध्यनिधने स्वाम्येव सेव्योऽनयोः ॥ ६ ॥

श्रेयांसप्रतिलम्भितैर्गजपुरे पीयूषपूरोपमै–
श्चोक्षैरिक्षुरसैर्भरेण भरिते नाथ त्वदीयाञ्जलौ।
चण्डांशुःप्रतिविम्बितः करतलं प्राप्तः प्रभो केवला–
लोकः पारणयोद्धृते वपुषि ते द्योतिस्म सोसूच्यते ॥ ७ ॥
यत् सर्वं महतां महद्वच इदं सत्यापयन् वत्सरं
मानः संज्वलनोऽपि बाहुबलिनः पक्षायुरप्यस्फुरत्।
तत्रास्कन्ददमूढलक्षतरता सार्वज्ञभाजस्तवो–
पेक्षापारमितैव हेतुपदवीं कालादिसाचिव्यभाक् ॥ ८ ॥
आषाढ़े त्रिदिवादभूदवतरस्तिथ्यां चतुर्थ्यां शिता–
वष्टम्यां बहुले मधोस्तव जनुर्दीक्षा क्षणौ जज्ञतुः।
कृष्णे फाल्गुनिकस्य तीर्थपतिथावेकादशे केवलं
देवैभिस्तु पवित्रतां नवमहैर्नीता विनीतापुरी ॥ ९ ॥
पूर्वाह्ले तपसस्त्रयोदशतिथौ शित्यां नगेऽष्टापदे
प्रायैः षड्भिरभीचिभे व्रतभृतां पंक्त्या सहस्रैः समम्।
पर्यङ्कासनि तस्थिवानुपगतस्त्वं पूर्वलक्षा चतु–
र्युक्ताशीतिमितायुरव्ययपुरश्रीभर्तृभावं विभो ॥१०॥
जित्वा वा लवणोदधिं निजवपुर्लावण्यलक्ष्मीभरै–
र्ज्योतिर्द्योतिभुजाचतुष्टयचतुश्चक्रीपदेशेन या।
तस्माद्दण्डपदेऽग्रहीद्ग्रहपुषानुच्चैश्चतुः संख्यकान्
सा त्वद्भक्तिकृतो भनक्ति विपदां चक्राणि चक्रेश्वरी ॥११॥
मामेकाक्ष मुदाहरन्ति मुनयः कस्मादितीव क्रुधा
रक्तं लोलतरालितारमुदयच्चक्षुःसहस्रं नृणाम्।
रक्ताशोकतरुः प्रसूननिकरव्याजेन संदर्शया–
मास व्याहरतो वृषं हतनतारिष्टोपरिष्टात्तव ॥१२॥
नाहारस्तव संस्कृतोऽजनि गुणैरभ्यूषुषो मन्दिरं
व्याहारस्तु सुसंस्कृतोऽजनि गुणैर्गेहे यतित्वेऽपि च।

किन्तु द्वावपि मार्दवेन सहितौ सौहित्यदौ द्वावपि
द्वावप्यर्पयतः स्म चामृतसुखास्वादं सदा सेवितुः ॥१३॥

दिग्यात्रासु चलद् यदीयपृतनोत्सर्पद्रजो गुण्डितं
स्फूर्जत्तूर्यरवाकुलीकृतचतुःसिन्धूच्छलद् वारिभिः ।
द्यौरभ्यन्तिकवर्तिभास्करकरोत्तप्तैः स्वमक्षालयन्
स श्रीमान् भरतस्त्वदंह्रिकमले भक्त्यालिलीलां ललौ ॥१४॥

द्रष्टव्यान्तररामणीयकमुदत्क्षेडापहारि स्फुरत्
सौन्दर्यामृतपूर्णयोर्भुजशिरः सौवर्णसत्कुम्भयोः ।
स्निग्धश्यामलकान्तिपन्नगपुगं रक्षाधिकारे त्वया
वेल्लन् कुन्तलवल्लरीद्वयनिभान्मन्यामहे स्थापितम् ।१५॥

आदौ शिल्पशतं द्विसप्ततिकलाः षष्ठिश्चतुर्भिः समा-
युक्ताः स्त्रैणगुणाः प्रजाहितकृते नाथस्त्वयाविष्कृताः ।
उत्पन्ने सति केवले तु सुधियां रत्नत्रयं देशिनं
स्वार्थश्चेतसि गौण एव महतां मुख्यः परार्थः पुनः ॥१६॥

आरूढ-त कुञ्जरं शुचिलसज्ज्ञानक्रियाचामरो
भावारींस्तरसा विजित्य शिरसिच्छत्रं त्वदाज्ञां दधत् ।
शिष्याणूस्तव पुण्डरीकगणभृज्जीयात् क्षमाभृत्पतिः
श्री शत्रुञ्जयभूमिभृद्विरचितो येन स्वनामाङ्कितः ॥१७॥

मारिर्वारिहुताशनो द्विरसनः पञ्चाननः काननं
शाकिन्यः पलभुक्कुलं परबलं पाटच्चरः सिन्धुरः ।
कारागारगरग्रहामयमहीपालाः कराला अपि
त्वत्पादस्मृतिमादरान् परवशं नेतर्न नेतुं क्षमाः ॥१८॥

त्वद्देहप्रभया विजित्य कनकं रम्यत्ववादस्थले
वर्णाधिक्यचिराधिरूढमिव तत् पानीयमुत्तारितम् ।
नूनं निष्कमिति प्रथां तदगमल्लोकेऽमुना हेतुना
कं पाथः समुदाहृतं तदभितो निष्क्रान्तमस्मादिति ॥१९॥

दीप्राक्षीयितनिश्चयव्यवहृतिर्भाति क्रियाज्ञप्तिस–
दृंष्ट्राढ्यो नयकेसरप्रसरवान् स्याद्वादपुच्छच्छटः ।
प्रोद्यद्युक्तिनखः कुतीर्थिकरिणां जैत्रः स्फुरद्देशना–
जिह्वः सूरिमतिस्थलीषु विचरन् सिद्धान्तसिंहस्तव ॥२०॥

दिव्यालङ्कृतिभूषितं द्युपतिना क्लृप्ताभिषेकोत्सवं
त्वां वीक्ष्योद्गतविस्मयैर्मिथुनकैर्न्यस्तानि हस्तद्वये ।
पादावेव तवासिचन् पुटकिनी पत्राणि वा पूरिता–
न्याकारैक्यजपङ्कजभ्रमभुवः सा जात्यरागादिव ॥२१॥

यद्राज्यं भरतेश्वराय ददुषी मह्यं तु निर्ग्रन्थतां
तुष्टिस्ते ननु वल्लभोऽस्मि तव तन्मन्ये सुतादप्यहम् ।
सारं वस्तु विभुः प्रियाय हि दिशेद्राज्यं स्वसारं यत-
स्तत्त्यक्त्वा तृणवद्भुवानचकल नैर्ग्रन्थ्यमेव स्वयम् ॥२२॥

सान्द्रामोदविलासवासितदिगाभोगा नभोगामिभि–
र्मुक्तासुस्मितपुष्पवृष्टिररुचद्व्याख्यानभूमौ तव ।
त्वत्संत्रासजुषः प्रसूनधनुषः स्रस्तेव हस्तोदरात्
प्रासूनीशरसंहतिस्त्रिभुवनं चक्रे यया प्राग्वशम् ॥२३॥

वाच्यावाच्यसदृग्विरूपसदसन्नित्यक्षयित्वात्मकं
सद्द्रव्यास्तिक-पर्ययास्तिकनयस्याद्वादमुद्राङ्कितम् ।
विश्वं वस्तुनयप्रमाणघटयोत्पादव्ययध्रौव्ययुक्
त्वं ब्रूषे स्म सतां यथा कुनयिभिः स्वप्नेऽपि नाप्तं तथा ॥२४॥

यद्भानुर्दिनमात्रदीप्तिकलिता नक्तंदिवंद्योतिना
स्पर्द्धाबन्धमयं व्यधत्त भगवन् सार्द्धं प्रतापेन ते ।
गुप्तं गुप्तिगृहे व्यधारि विबुधैर्भास्वन्मणीकुट्टिम–
व्याख्योर्वीप्रतिबिम्बकैतनधरस्तेनागसा मन्महे ॥२५॥

त्वामुच्चैरनमाननक्रमकरं शौर्याश्रयं मत्सर–
त्यक्तं सज्जनदत्तरङ्गमुदयन्मुक्तालयश्रीजुषम् ।

त्राणार्थं भुवनेश्वरं बहुलहर्यन्वास्यमानं जिना–
हार्यापल्यशतकोटिपानचकितोऽभ्येति क्षमाभृद्गणः ॥२६॥

मुक्ताहारतया तवाब्दमधिकं योऽभूद्विहारः क्षितौ
मुक्ताहारतया सहृद्युपदधे चारित्रलक्ष्म्या निजे।
दुर्मेघान्यपि वत्सरेण भवता····जन्मदानैकधी–
रादाने पठिनीकृतो निजकरो दानप्रवृत्त्यै सताम् ॥२७॥

प्राप्तः पाणिरयं प्रतिग्रहमहाविद्याब्धिपारं प्रभो–
रद्येति प्रमदप्ररूढपुलकांकूरांगशृङ्गारिभिः।
भावत्कादिमपारणावधिदिने भक्त्यासुरैर्भासुरैः
प्रादुर्भावितपञ्चदिव्यमिषतश्चक्रेऽत एवोत्सवः ॥२८॥

भेजुर्भद्रकतां भृशोपि भवतो यन्मौनिनोपीक्षणा–
द्बीजाधानमभूच्च तेषु भवतः सद्देशनां भो विना।
सर्वोप्येष तवैव दैवतत्कृतश्लोकत्रिलोकप्रभो-
माहात्म्यातिशयः सुधारसमयः प्रध्वस्तपापोदयः ॥२९॥

त्वच्चैत्यप्रणिनंसया तव पदन्यासैः पवित्रस्य ये
देवाष्टापदभूभृतोऽष्टपदिकाः क्रामन्ति पद्ध्यां नराः।
अष्टानामपि कर्मणां ददति ये पादं शिरस्सु ध्रुवं
जायेरन्नचिराच्च निर्वृतिपुरी साम्राज्यलक्ष्मीभुजः ॥३०॥

निर्वेदोऽ[प्य]सि नाभिभूः स्मरहरोऽप्यालम्बसे नोग्रतां
कंसं नो पुरुषोत्तमोऽपि कलयस्यार्योऽपि नार्यादृतः।
त्वं सोमोपि यमी कृतान्तजनकः श्रीदोऽपि वित्तापहृत्
जायास्तीर्थपते चिरायवि[ग]तच्छद्मापि मायानिधिः ॥३१॥

श्रीनाभेय विभुं पदाननदृभुं त्रैलोक्यरक्षणी प्रभुं
नीरन्ध्रावृजिनप्रभुं कृतशुभं श्रेयः श्रियो वल्लभम्।
स्तुत्वेत्यादिकृतं मयार्जिसुकृतं यत्तुङ्गताऽलंकृतं
भव्यानामसमः समुज्ज्वलतमस्तेनास्तु सौख्यद्रुमः ॥३२॥

सुधीजनश्रोत्रसुधासुगन्धः शार्दूलविक्रीडितवृत्तबन्धः ।
सतामयं भावरिपुद्विपेषु शार्दूलविक्रीडितमातनोतु ।।३३।।
इति श्रीयुगादिदेवस्तवनं श्रीजिनप्रभसूरिविरचितम् ।।
[अभय जैन ग्रन्थालय ९५२१ पृ० १ ले० प्र० "सं० १४८६ वर्षे"]

●

(५) चन्द्रप्रभ-चरित्रम्

चंदप्पह ! चंदप्पह !, पणमिय चरणारविंदजुयलं ते ।
भविय सवणामयपवं भणामि तुह चेव चरियलवं ।। १ ।।
धायइसंडे दीवे अहेसि तं मंगलावईविजए ।
मुणिरयण ! रयणसंचयपुरम्मि सिरिपउमनरनाहो ।। २ ।।
सुगुरुजुगंधरपासे निक्खमिउ चिणिय तित्थयरनामं ।
तुममुप्पन्नो पुन्ननिहि ! वेजयंते विमाणम्मि ।। ३ ।।
तत्तो इह भरहद्धे चविउं चंदाणणाइ नयरीए ।
महसेनराय-पणयिणि-लक्खणदेवीइ कुच्छंसि ।। ४ ।।
चित्ताऽसियपंचमि निसि तं चउदससुमिणसूइओ नाह ! ।
अवयरिओ तिन्नाणी सयलिंदनिवेइयवयारो ।। ५ ।।
पोसाऽसियबारसि निसि विच्छियरासिमि सामि ! सोमंको ।
कासवगुत्ते जाओ तं सारयससहरच्छाओ ।। ६ ।।
छप्पन्नदिसाकुमारी-चउसट्ठिसुरिंदविहियसक्कारो ।
उज्जोइय-भुवणयलो तुह जम्ममहो य सक्कउहो ।। ७ ।।
जणणी पइ गब्भगए अकासि जं चंदपाणदोहलयं ।
चंदप्पहु त्ति तं तुह विक्खायं तिहुयणे नामं ।। ८ ।।
सढ्ढधणुसयपमाणो अढ्ढाइय पुव्वलक्खकुमरत्तं ।
सढ्ढे छपुव्वलक्खे चउवीसंगे य रज्जसिरिं ।। ९ ।।
परिवालिय लोयंतिय-विवोहिओ वरिसकयमहादाणो ।
सिविया मणोरमाए सहसंबवणम्मि छट्ठेणं ।।१०।।

नरवइसहस्ससहिओ चरमवए चरणमेगदूसेण ।
पोसस्स बहुलतेरसि अवरण्हे ते पवज्जेसि ॥११॥
तक्खणमणनाणजुओ अकासि तं पउमसंडनयरम्मि ।
वयबीयदिणे परमन्न-पारणं सोमदत्ताधरे ॥१२॥
वोसट्ठचत्ततणुणो नानादेसेसु विहरमाणस्स ।
भयवं ते मासतिगं अहेसि छउमत्थपरियाओ ॥१३॥
सहसंववणे पडिमाठियस्स छट्ठेण नागतरुहिट्ठे ।
तुह फग्गुणाइसत्तमि पुवण्हे केवलं जायं ॥१४॥
अहसंढ्ढदुल्लक्खमुणी वीससहस्सूण-लक्खचउ समणी ।
तिनवइ गणा गणहरा अढ्ढाइयलक्खवरसढ्ढा ॥१५॥
इगणवइसहस्सअहिया लक्खा चउरो गुणढ्ढसढ्ठीणं ।
इय गुणरयणमहग्घो जाओ तुह चउव्विहो संघो ॥१६॥
दो-दस-चउदससहसा चउदसपुव्वधर-केवलि-विउव्वी ।
अट्ठसहस्सा पत्तेय-मोहि-मणपज्जवंनाणी ॥१७॥
वाईणसत्तसहसा छसयग्गा एस तुब्भ परिवारो ।
तह तुच्छे दुच्छयरा विजओ जक्खो सुरा भिउडी ॥१८॥
अणुराहरिक्ख चउकयकल्लाण गएसु चउजमं धम्मं ।
चउवीसंगूण मय पज्जाउपुव्वलक्ख ते ॥१९॥
दसपुव्वलक्खसव्वाउ पालिउं मुणिसहस्ससहिओ तं ।
करिउं णवोपगमं मासियभत्तेण सम्मेए ॥२०॥
उदहीणं नवकोडी सएसु विगएसु जिणसुपासाओ ।
भद्दवयकसिणसत्तमि सिवं गओ सवणरिक्खम्मि ॥२१॥
इय तुह सुचरियलेसं थो उं पत्थेमि सुममिमं चेव ।
कुण गुणनिहि ! चंदप्पह ! जिणप्पभत्ताण परमपयं ॥२२॥

इति श्री चन्द्रप्रभस्वामिचरित्रम् ॥छ॥

[श्री पुण्यविजयजी संग्रह, नंबर २३४८ पत्र ५ साइज ११½" × ४¼" शुद्ध ले० १६ वीं]

[अभय सिंह ज्ञान भंडार पो० १६ ग्र० २१८ प० ११०-१११] ●

(६) पारसी भाषा चित्रकेण

शान्तिनाथाष्टकम्

[१]

अजि कुद काफु जुनूवि शहरि हथिणापुरगोवनि
वजिपातसाहि विससेणु खिम्मिति ओ राया जेवनि
कौम्यो ऐरादेवि तविहि सीतारा मानइ
जुजि यकि सूहरि षास दिगरि हिम पियरा दानइ
आं दिगरि रोजि षुफ्लसि षुसे दर निगार रवानै निषो
छारिदह वाविअह संदिवइ आषरि सौ विनइ हमो ।

[२]

नेकिस्पे नरगाउ पीलि दरियाउ निशाना
वा नर्गिसि पुरु हौदु कुम्कु उजुलू सदियाना
शमस कमर पुरु सुवो दिगरि मोंहरिसा तूदा
कसरि अजनित्फिमारिष्टिगां सेरि आतसि रुषसिंदा
गह सुबुहु सुदा वेदार सुदु, रल्फु गुल्फु वरिसूइ षो
माविनी ब्वाव दीदौमि सौ चि सवइ षोदिह काम गो ।

[३]

पातसाहि विससेणु पेसि अइरादिवि गोयइ
पिसरि तु हमचो सवइ मुलुकि दुनिए उर जेवइ
विस्नी दो चो चिनी कवी षुसि सुदु दिलि षासा
दमलु नेकि परवरइ निको सीरति मे वासइ
चू हल्फु रोजि नुहु माहु सुदु, शव दुपास दरि षुल्फि गह
विहतरी वल्फि तालिहि निको, पिसरि जादु उ हम चु मह ।।

[४]

दरं सहरि मक्कूर राक्सि शादी इवि कउदनि
कुव्वा जाइ पि जाइ तवल नुहु गाना विजनि
मीर मुकद्दम साहि दरां शादीहरिक्यामा
पातसाहि विससेणि दादु हमगा रा जामा
द्वाज्द हमि रोजि सुदु नामि उर, संतिनाथु ख्वामदि महं,
बुजुरुकु सुदे सिस्तो तष्ति, मुलुकु विरानइ दरिजहा ।

[५]

गौहरि पाक दुहल्फु गंजि नुहु जरि पेरा वा
फंदलि कुननि फेरिष्टिगा शांजूदह जारि हमा वा
सस्तुघ्यरि हज्जारि कौमि दरि हर्मि निकोतरि
लख हष्टादु छहारि पीलि व अस्पि व अस्तरि
शशिनवदु क्रोडि दिहहा मिही कियासि पयादा हम चुनी
अउलाति सी उदु हजारि ओ राया पि हम व हम दुनी ॥

[६]

रोजि दिगरि दानिस्तु नेसि हिचि दरी जमाना
हरि चि ईसाति नुमाइ अवियक साति न माना
सदका दादा गिरिल्फुजरीं दीनार न नुकरा
यक कुरोडि लख हष्टि दिहइ हररोजि कदरे
से सदु व हष्टि हष्टा कुरोडि हष्टा लख यकि सालि दादु
ईं चुनी मुलुकि दौलति चिनी, तरकि गिरिल्फा सेष सुदु ॥

[७]

हल्फु तवक आसमा जमी हर हल्फु मुदौवारी
वीनइ हमचु चरागु हचि दरि दुनी मुनौवरि
मे दानै दरि गैवि हमा मुस्किल हल विकुनै
रहनुमाई गुमरहा तवह वजगारी विजनइ

ई चुनी सक्लित आषरि उमरि दरि सवावि सालहा सुदु
अल उमरि चूकि पि तमामि सुदु, भिष्टि रल्फु एमिना सुदु ।

[८]

नामि तुष्वामदि संतिनाह हरि कि से कि गोयदु
हमा चीजि उर सवइ फुल्लुइव्वुनो वुगोयदु
अजि सेवस्तां गहिल कुंउ पंज्या उ सलामति
खाना विरसादारि पि हम इज्जति जरि दौलति
मिंजुम्लै गनहा वकसिमे बुकुं रहमलुरुफु इं कदरि
अजि अदावि दुनीए निगहदारि, मरा भिष्टि वरियो बुवरि ।

[९]

अजि तेरीष मुहम्मद सन खमस व तिसईन सित्त मिय ।
फितिरीदी शशिमिसरा कउदांमु दौलती वामी ॥

इति पारशीभाषा चित्रकेण श्रीशान्तिनाथाष्टकम् ।

[अभय सिंह ज्ञान भंडार, पो. १६ ग्र. २१८. पृ. १४३-१४२. ले. १६ वीं]

(७)पार्श्वस्तवः

श्रीपार्श्वः श्रेयसे भूयादलितालसमानरुक् ।
अनन्ता संसृतिर्येन दलिताऽलसमानरुक् ॥ १ ॥
अज्ञा न मे दुरध्वान्तकारिणस्त्वद्गुणानलम् ।
अज्ञानमेदुरध्वान्त–भानोऽभिष्टोतुमीश गीः ॥ २ ॥
तथापि नुन्नोन्तर्भक्तिरंहसा महितायते ।
गुणलेशं स्तवीम्युच्चैरंहसामहिताय ते ॥ ३ ॥
अपारे कामरागेण भ्रान्तोस्मि भववारिधौ ।
अपारेका मरागेण दर्शनेन विना तव ॥ ४ ॥

प्राप्येदानीं दर्शनं ते नरामरसभाजनम् ।
स्पृहयामि प्रभो राज्यं न रामरसभाजनम् ॥ ५ ॥
नेच्छा च मेऽप्सरोलोकं सकाममनसं प्रति ।
रुचये मुक्तिकान्तापि सका मम न सम्प्रति ॥ ६ ॥
पुण्योदयादक्षमया मुक्त त्वद्दर्शने सति ।
पुण्यो दयादक्ष मयास्वात्मायं परिनिश्चतः ॥ ७ ॥
जिनास्यसारसंसार किं नेदानीं वराक रे ।
जिनास्यसारसं सार-मद्य यद्वीक्षतं मया ॥ ८ ॥
धन्यास्ते प्रणतास्तुभ्यं वासवाऽमेयशक्तये ।
त्रातुं जगत् सर्वगुणा-वास वामेय शक्त ये ॥ ९ ॥
कल्याणगिरिधीरे मे त्वयि चेत् परमेश्वर ।
कल्याणगिरि धी रेमे करस्थाः सर्वसम्पदः ॥ १० ॥
तवाङ्गे लीनदृष्टित्वा-दूरीकृततमालभे ।
जीवन्मुक्तिदशां कर्हिद्दूरीकृततमा लभे ॥ ११ ॥
कमलायतनेत्राभि-रक्षुब्धमनसस्तव ।
कमलायतनेऽत्राऽभिरमेतां सदृशो मुखे ॥ १२ ॥
दृष्टे तवमुखे प्रीत्या रजनीश्वरकोमले ।
न निर्वाणपदे स्थास्तु-रजनीश्वर कोऽमले ॥ १३ ॥
अक्षोभं गंभीरहितं तवाराध्य वचः प्रभो ।
अक्षोऽभंगं भीरहितं निष्कर्मा लभते पदम् ॥१४॥
पीत्वा वचोऽमृतं तेऽस्तकलि कामधुगर्हितम ।
मेने जनैः स्वर्गतरोः कलिकामधुगर्हितम् ॥१५॥
क्रमतामरसद्वन्द्व सेचने तव सादरम् ।
क्रमतामरसद्वन्द्व मामकीनं मनः सदा ॥१६॥
श्रियस्तवागमो दद्यात् वितता नयशोभितः ।
यस्तवेवं विदोषत्वाद् विततान यशोऽभितः ॥१७॥

अलं ते पदराजीवाऽभ्यर्चनैकरता: प्रभो ।
अलंते पदरा जीवा मुक्तिदुर्गस्त्वयं ग्रहे ।।१८।।
वशीचक्रे भवान् मुक्तिमहिलां छितविग्रह ।
स्वैर्गुणैस्त्रातराकालमहिलाञ्छितविग्रह ।।१९।।
सदानमस्तपापाय गत्या जितवते गजम् ।
सदानमस्तपापायमेघश्यामाङ्ककाय ते ।।२०।।
यस्त्वामेकाग्रधीः स्तौति देवपद्मावतीनतम् ।
इष्टार्थलाभैरऽचिरादेव पद्मा वतीन तम् ।।२१।।
सदानं दंतिना मोघमाप्य चाश्वीयमुत्र के ।
सदा नन्दंति नाऽमोघ त्वद्भक्तिकृतनिश्चयाः ।।२२।।
ये नम्रास्त्वयि वन्द्यार्मदनागविराज ते ।
तेषां च रूपर्द्धिरतिमदना गवि राजते ।।२३।।
अहीनेन सदारेण सेव्यमान कृपानिधे ।
अहीनेन सदा रेण दूनं पाह्यांतरेण— ।।२४।।
हित्वां तरारींस्त्वदाज्ञाविद्यास्मरणभूषिताः ।
जयलक्ष्मीं वयं नाथ विद्यास्म रणभूषिताः ।।२५।।
नमो हराजेनब्रह्मशक्रादीनपि जिष्णुना ।
न मोहराजेन ब्रह्मयोनये विजिताय ते ।।२६।।
यः स्यात् त्वत्पादपद्मार्चारुचिरंजितमानसः ।
सर्वत्र लभते सौख्यं रुचिरं जितमान सः ।।२७।।
सर्वकषायमोहेलापतये द्रुह्यतस्तव ।
सर्वं कषायमो हेलाग्रामराहूपमं वचः ।।२८।।
सरस्वती पातु तवोपदेशामृतपूरिता ।
यत्प्रभावाज्जनैर्मुक्तिपदेशामृतपूरिता ।।२९।।
कामदे हतमोहेऽलिनीलवर्णे नतास्त्वयि ।
कामदेह तमोहेलितुल्ये नाऽश्नुवते श्रियम् ।।३०।।

स्वर्गायति यशो विश्वप्रकाशं ते मरीचय: ।
यस्याग्रे नैव शीतांशो: प्रकाशन्ते मरीचय: ॥३१॥
दर्पकोपरताऽऽयासच्छिदे मुनिगणाय ते ।
दर्पकोपरतायास स्पृहयालुर्नक: खलु ॥३२॥
कल्याणानां पंचतयं मुद्यत्कुवलयद्यु ते ।
कस्य न प्रीतये जातमुद्यत्कुवलयद्युते ॥३३॥
कमलाक्ष तपस्त्यागश्रीभुजंग जिनेश्वर ।
कमलाक्षतपस्त्या गस्तिमिराऽर्कपुनीहि माम् ॥३४॥
त्वदाननं जगन्नेत्रमुदारामघनोदकम् ।
निर्मिमीतां मम प्रीतिमुदारामघनोदकम् ॥३५॥
यैस्त्वं क्षतो मनः कृत्वा प्रमदाभोगभागिन: ।
भवेयुर्दिवि ते दिव्यप्रमदाभोगभागिन: ॥३६॥
नाथ वाऽरितमोहंस मुक्तशर्मापि दुर्लभम् ।
नाथ वारितमोहंसत्तेषामकलुषात्मनाम् ॥३७॥
युग्मम्
आनन्दतो यदऽच्छाय जन्तुजातं ननाम ते ।
आनन्द तोयदच्छाय मुक्तिश्रीस्तत्र रागिताम् ॥३८॥
येन त्वदागम: स्वामिन् स्याद्वादेनोपराजित: ।
निर्णीत: स कुतीर्थ्यानां स्याद् वादे नो पराजित: ॥३९॥
स्मरामि त्रस्यते भव्यसमूहायाऽभयप्रदम् ।
स्मरा मित्रस्य ते भव्यश्रियां धाम पदद्वयम् ॥४०॥
भव्यहृत्पक्षिणां वासक्षणदानाय काननम् ।
त्वां पर्युपासते धन्या: क्षणदानायकाननम् ॥४१॥
जननव्यसनाधीर श्रीवामेय भवे भवे ।
जननव्य सना धीर भूया: स्वामी त्वमेव मे ॥४२॥
त्वद्गुणस्तुतिरंऽभोदकान्ते यमकहारिणी ।
भव्यानवतु विज्ञानां कान्तेयमकहारिणी ॥४३॥

इति प्रभो ते स्तवनं पठन्ति ये मुक्तिश्रियः प्रेत्य लुठन्ति ते हृदि ।
जिन प्रभा चार्य्यमभाति शायिनी जागर्ति तेषामिह पण्डितव्रजेः ॥४४॥

इति श्रीपार्श्वनाथ स्तवनम् ॥

[अभय जैन ग्रन्थालय ९५२६ प० १. ले० १६वीं शुद्धतम]

•

(८) फलवर्द्धिपार्श्वस्तवः

जयामल श्रीफलवर्द्धिपार्श्व पार्श्वस्थनागेन्द्र पृथुप्रभाव ।
भावल्लरीचेष्टितदिग्वितान तानर्चयामः स्तुवतेऽत्र ये त्वाम् ॥ १ ॥
दूरस्थितोऽपि स्मृतिवर्त्मना त्व–मारोपितः सन्निहितत्वमुच्चैः ।
पिपर्षि चिन्तामणिवन्नराणां परः सहस्रा अभिलाषभङ्गी ॥ २ ॥
दुरुत्सहम्लेच्छहत प्रतापी कृतान्यतीर्थे कलुषैककोशे ।
कुतूहलोत्तालहृदस्तवैव कलौ कलामाकलयन्ति सन्तः ॥ ३ ॥
विस्फोटकश्लेष्मसमीरपितृ–लूताज्वरश्चित्रभगंदराद्याः ।
त्वद्ध्यानसिद्धौषधबुद्धबुद्धि न व्याधयो वाधितुमुत्सहन्ते ॥ ४ ॥
शुकच्छदाभैस्तव देहभासि—रालिङ्गिताङ्गीः प्रणता विभान्ति ।
संवीय वर्मा य समाहवो यो—धताः समं मोहमहीभुजे वा ॥ ५ ॥
केऽनन्यसामान्यकृपाकृपाणी छिन्नातुरार्तिं स्पृहणीयमूर्तिम् ।
त्वां भूर्भुवः स्वस्त्रयगीतकीर्तिं सवासनोल्लासमुपासते न ॥ ६ ॥
सिंहोभ वैश्वानरवैरिवार दस्यूदकाशीविषजन्यजन्यैः ।
वैतालभूपालभवैश्च कश्चिन्न स्पृश्यते नान्यभयैः श्रियस्ताम् ॥ ७ ॥
त्वदाननेन्दुद्युतिसंप्रयोगाद् विवेकिनां लोचनचन्द्रकान्तौ ।
प्रमोदवाष्योदकबिन्दुवृन्द—निष्पन्दभाजामुचित्तं भवेताम् ॥ ८ ॥
पश्यन्ति नश्यत् कलिकालखेलं निलिम्पलोकायितभूमिगोलम् ।
हर्षाश्रुवर्षामृतसिक्तगात्रा यात्रा महस्ते महनीयभाग्याः ॥ ९ ॥

सप्तोपरिष्टात्फणभृत्फणास्तैः सतां प्रवेशप्रतिषेधनाय ।
एकाग्रषण्णां नरकावनीनां द्वारापिधाना इव भान्ति सज्जाः ॥१०॥
तवाङ्गरोचिर्जलदैः करांह्रिनखांशुशंपास्फुरितैः परीते ।
शचीशचापं रचयन्ति चित्राः फणामणीनां घृणयोऽन्तरिक्षे ॥११॥
तव क्षणं नोज्झति पादपद्मं पद्मावती तावदियं निरूढिः ।
तद्यस्य चित्ते वसति क्वचंसा सान्निध्यमस्या तनुते न चित्रम् ॥१२॥
भव्याश्रभीक्ष्णं भवतः प्रभावै—श्चमत्कृतं यद्धनु ते शिरांसि ।
अमान्तमन्तः प्रमदं शरीरे समापयन्ते तव वश्यमेते ॥१३॥
तवास्यपद्माद्धूरतो निपीय निपीय लावण्यरसोतिलौल्यान् ।
भव्यात्मनां लोचनचञ्चरीकै—र्मुदष्कदम्भादि न वम्यते न ॥१४॥
अहो मुखेन्दुस्तव कोऽपि दोषा निहन्ति यो यत्र विलोकिते च ।
पद्मानि कामं दधति प्रबोधं भवेन्न दीनोप्यपचीयमानः ॥१५॥
जयत्यपूर्वोभवदाननेन्दुरालोकमात्रेण जिनेश यस्य ।
भवाम्बुराशिः परिशोषमेति विकस्वरी स्यु-र्नयनाम्बुजानि ॥१६॥
तवापि माहात्म्यकलाविशेषाः केषांचिदुच्चैस्तरपातकानाम् ।
मनांसि नाथ व्यथयन्ति दन्ति-दन्तानिवांशुप्रकराः सुधांशोः ॥१७॥
घटाः करीणामिव सिंहनादात् प्रालेयपातादिव पङ्कजिन्यः ।
त्वद्ध्यानमात्रादपयान्ति पीडाः, प्रणेमुषां देहमनः समुत्थाः ॥१८॥
अशान्तिभाजामपि शान्तिशान्त-व्यापादमापादितनेत्र शैत्यम् ।
चैत्यं तवा····तविमानमान—मानन्दयेत्कं न समेतमेतन् ॥१९॥
तवैव वैवस्वतशासनाति-क्रान्तस्य कान्तस्य विमुक्तलक्ष्म्याः ।
भवे भवेदास्यपदं प्रपद्ये यथा तथा नाथ मयि प्रसीद ॥२०॥
इत्थं श्रीफलवर्द्धिपार्श्विभुवने विश्वेन्दिरा नर्त्तकी
नाट्याचार्यजिनप्रभं जनभुजामीशेन सेव्यक्रम ।
श्रेयःश्रीपरिरम्भ संभवसुखव्याघातबद्धोद्यमं
विघ्नौघं विनिगृह्य मह्यमुदयं विश्राणय श्रेयसाम् ॥२१॥

इति श्रीफलवर्द्धिपार्श्वनाथस्तोत्रं समाप्तम् ॥

[अभय सिंह ज्ञानभंडार पोथी १६ ग्र० २१८ । प० १५९–१६०] ●

(९) फलवर्धिपार्श्वजिनस्तवः

श्रीफलवर्द्धिपार्श्व–प्रभुमोंकारं समग्रसौख्यानाम् ।
त्रैलोक्याक्षरकीर्तिं लक्ष्मीबीजं स्तुवेऽर्हताम् ॥ १ ॥
नमिऊण तुह पयजुयं भत्तीए पासनाह जोइ नरो ।
सिहणिज्ज संनिहाणो विसहरवसहस्स धरणस्स ॥ २ ॥
तुह उवरि जिण फुरंता फणिफणरयणिंकुराविरायंति ।
पाववणडहणपजलिरज्झणानलफुडफुलिंगुव्व ॥ ३ ॥
मायाबीयं कम्मं खविउं पत्तस्स परमपयरज्जं ।
सिरिइंदविंदवंदिय अरहंत नमो नमो तुज्झ ॥ ४ ॥
इय मंतसरूओ तं जियचिंतारयणकप्पतरुदप्पो ।
हिययकुसेसेकोसे निवसंतो पूरसिमणिट्ठं ॥ ५ ॥
कलिकुंड-कुक्कडेसर, संसेसर-महुर-कासि-अहिछत्ता ।
थंभणय-अजाहर पवर नयर करहेड नागदहो ॥ ६ ॥
सेरीसअं-तरिरक्खमिणिचारुप्पढिपुरी पमुहा ।
दिट्ठा तित्थविसेसा पइं पहु दिट्ठे गुणगरिट्ठे ॥ ७ ॥
तुह नामक्खरजावेण पडिहया जंति विलयमुवसग्गं ।
किं गरुडपक्खवाएण पियाऊससंति फणी ॥ ८ ॥
विक्रमवर्षे करवसुशिखिकु १३८२ मिते माधवासितदशभ्याम् ।
व्यधित जिनप्रभसूरिस्तवमिति फलवर्द्धिपार्श्वप्रभोः ॥ ९ ॥

इति श्रीफलवर्द्धिपार्श्वस्तवनं समाप्तम् ।

[अभयसिंह ज्ञान भंडार पोथी १६ ग्र० २१८ पृ० २२१]

षड्ऋतुवर्णनागर्भित-

(१०) पार्श्वस्तवः

असमसरणीय जओ निरंतरामोय सुमणमहमहिओ ।
भमरहिओ पियसुहओ जय इव संतुव्व पासजिणो ॥ १ ॥
परिवढ्ढियभूमियसो अहराई उवचाया वचइकरणे ।
बंभपहतत्ताभूमी पासजिणो जयइ गिम्हु च ॥ २ ॥
पयडियविज्जुज्जोओ विरइय मे हुन्नइ हरिपमोओ ।
नंद उदयाभिरामो पहुपासो पावसुव्वचिरं ॥ ३ ॥
उवसंतपंकमग्गं विमलियभुवणासयं अमलविसयं ।
सियपक्खाणंदयरं सेवह सरयं व पासजिणं ॥ ४ ॥
परमहिमाकंपिय जय जियभुवणाभोगसुहयर विमोह ।
निव्वाणलयधरारुह जयसि तुमं पास हेमंत ॥ ५ ॥
खवियारविंदवारो सयलागमपत्ता गणहरो जयइ ।
सिसिरुव्व पासनाहो तणुतेयप्पसर हरियासो ॥ ६ ॥
रिउछक्कवं न गेणं जिणपहसूरीहिं संथुयं पासं ।
जो सरइ हुंति सययं छावि रिऊ तस्स अणुकूला ॥ ७ ॥

इति षट्ऋतुवर्णनागर्भितं श्रीपार्श्वस्तवनं समाप्तम् ।

[अभयसिंह ज्ञान भंडार पो० १६ ग्र० २१८ पृ० २२३-२२४]

●

उवसग्गहरस्तोत्रस्य समग्रपादपूर्तिरूपं

(११) पार्श्वजिनस्तोत्रम्

पणमिय सुरनरपूइया, पयकमलं पुरिसपुंडरीयपासं ।
मंथवण भत्तिचलणो भणामि भवभमणभीमभणो ॥ १ ॥

उवसग्गहरं पासं पणमह नट्ठट्ठकम्मदढपासं ।
रोसरिउभेयपासं विणहियलच्छीतणयवासं ॥ २ ॥
जं जाणइ तेलुक्कं **पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं** ।
जो झाइऊण सुक्कं झाणं पत्तो सिवमलुक्कं ॥ ३ ॥
विसहरविसनिन्नासं रोसगइंदाइभयकयविमाणं ।
मेरुगिरिसन्निकासं पूरिअआसं नमह पासं ॥ ४ ॥
मरगयमणितणुभासं **मंगलकल्लाणआवासं** ।
टालियभवसंतापं थुणिमो पासं गुणपयासं ॥ ५ ॥
विसहरफुलिंगमंतं सच्चं निच्चं मणे धरिज्जं तं ।
कुणइ विसं उवसंतं भवियाईय मुणह निब्भत्तं ॥ ६ ॥
पयपणयदेवदणुओ **कंठे धारेइ जो सया मणुओ** ।
सो हवइ विमलतणुओ नामक्खरमंतमवि अणुओ ॥ ७ ॥
तस्सग्गह रोगमारी पराभवं न करेइ विसभारी ।
जो तुह सुमरणकारी संसारी पत्त भवपारी ॥ ८ ॥
तस्सइ सिज्झइ कामं **दुट्ठजराजंतिउवसामं** ।
संथुणइ जोयकामं अभिरामं तुज्झ गुणगामं ॥ ९ ॥
चिट्ठउ दूरे मंतो जो कायइ निच्चमेव एगंतो ।
तुह नाम मसंभंतो सो जाइ लच्छिमइभंतो ॥१०॥
न डसइ दुट्ठभोई **तुज्झ पणाभो वि बहुफलो होइ** ।
तुह नामेण वि जोई न हवइ न पराहवइ कोई ॥११॥
नरतिरिएसु वि जीवा भमंति नरपयकायरा कीवा ।
सामि जिण समयदीवा जो हि तुह न नामिया गीवा ॥१२॥
रिद्धि आहेवच्चं **पावंति न दुक्खदोगच्चं** ।
जे तुह आणा सच्चं पालंती भावओ निच्चं ॥१३॥
तुह सम्मत्ते लद्धे जीवेणं हवइ सासए सिद्धे ।
अणुवमतेयसमिद्धे अणंतसुहनाणसंबद्धे ॥१४॥

तुह सुरनरवरमहिए **चिंतामणिकप्पपायवब्भहिए** ।
पयकमले मलरहिए मइ वसलोव सडं मह सुहिए ॥१५॥
पावंति अविग्घेणं जीवा जइदुट्ठदोसवग्गेणं ।
न मडिज्जतिय सिग्घेणं भवपारं विहितविग्घेणं ॥१६॥
सासयसुक्खनिहाणं **जीवा अयरामरं ठाणं** ।
लब्भंति तुह पयाणं जेसिं वट्टइ मणे झाणं ॥१७॥
इय संथुओ महायस किंत्ति दित्ति धियं च महपयासं ।
वयणस्य वि जिय पास निन्नासियदूरिय हयअयस ॥१८॥
कलिमलभयरहिएणं **भत्तिब्भरनिब्भरेण हियएणं** ।
थुणिओ हिय सहिएणं मए तुमं कम्मविहिएणं ॥१९॥
ता दिव दिज्जबोहिं उवेमि जं माययंमि तुह गेह ।
कय पावस्सय सोहिं कुणसु भवारणभवणोहिं ॥२०॥
अवगय पवयणनिच्चंद **भवे भवे पास जिणचंद** ।
तुह पयपंकयमयरंद भवभसलत्तं भवउ मह वंद ॥२१॥
सिरिभद्दबाहुरइयस्स **जिणपहसूरिहि** मं सपहावं ।
संथवणस्स समग्गस्स विहिय विवुहाणय पयस्स ॥२२॥

इति श्रीउपसर्गहरस्य स्तवन संपूर्णम् ।

[संवत् १७६४ वर्षे मिती श्रावण वदि १३ दिने लिपी कृतं ॥ पं० जीवराजवाचनार्थं ॥श्रीः॥ अगरचंदजी लिखित प्रेस कॉपी के आधार से ।

●

(१२) तीर्थमालास्तवः

चउवीसंपि जिणिंदे सम्मं नमिऊणाइसरणत्थं ।
जत्ताऽऽराहिय तित्थं नाम संकित्तणं कुणमह ॥ १ ॥

सेत्तुंज-रेवय-ब्बुय तारण-सच्चउर-थंमणपुरेसु ।
संखेसर-फलवद्धी भरूयच्छाएसु जिणा णमिया ॥ २ ॥
साकेय सत्ततित्थी रयणपुरे नागमहिय धम्मजिणो ।
उज्जेणी खउहंसे चक्केसरि उवरि रिसहजिणो ॥ ३ ॥

सावत्थि संभवपहु कोसंबिपुरि पउमपहसामी ।
सीयलकुंथु-पभागे पासजिणो कन्नतित्थंमि ॥ ४ ॥
पास-सुपासा वाणा-रसीय पाडलपुरम्मि नेमिजिणो ।
चंदापुरीय चंदप्पहो य गंगानईतीरे ॥ ५ ॥

काकंदि पुप्फदंतो कंपिल्लपुरम्मि विमलजिणचंदो ।
वैभार नग य देवा मुणिसुव्वयवद्धमाणाई ॥ ६ ॥
खत्तियकुंडग्गामे पावा नालिंद जंभियग्गामे ।
सूयरगामि अवज्झा विहार नयरीय वीरजिणो ॥ ७ ॥
मिहिलाए मल्लिनमी उसभजिणो पुरिमतालदुग्गम्मि ।
चंपाइ वासुपूज्जो नेमिजिणो सोरियपुरम्मि ॥ ८ ॥

सिरिसंतिकुंथुअरमल्लि-सामिणो गयउरंमिपुरमहिया ।
अहिछत्त महुर पासो बहुविहमाहप्पभावा सो ॥ ९ ॥
भद्दिलपुर सीहपुरऽट्ठावय सम्मेयसेलपमुहाइं ।
तित्थाइं बंदियाइं निक्केवलभावजत्ताइं ॥१०॥
एए तित्थविसेसा जिणपहसूरिहिं बंदिया विहिणा ।
सव्वेवि निरुवसग्गं दिंतु सुहं सयलसंघस्स ॥११॥
जो धारइ रसणग्गे थवणमिणं भावसिद्धिसंजणणं ।
ठाणट्ठिउ वि पावइ सुतित्थजत्ताफलं विउलं ॥१२॥

इति श्री तीर्थमालास्तवनं समाप्तम् ॥छ॥

[साराभाई नवाब सं० १५५८ लि० गुटके से]

(१३) विज्ञप्तिः

सिरिवीरराय देवाहिदेव सव्वनु जणिय जयरिक्ख ।
विन्नवणिज्ज जिणेसर विन्नति मुझ निसुणेसु ।। १ ।।
सामिय समत्थु जय जंतुसत्थनित्थारणे समत्थेण ।
भीभंमि भवारन्ने किमहं वीसारिउ तुमए ।। २ ।।

पहु कम्म पयावयणा चउगयभयचक्कमज्झयारंमि ।
मही पिंडव्व अहं हा वहुरूवीकओ बहुसो ।। ३ ।।
हा पहु मोहनिवेणं पावेणं पाडिऊण पहुरहिउ ।
अवहरिय सहमावसरिं भीमं भवचार ए खित्ते ।। ४ ।।

वेसासिऊ ण सामिय सया विसयवासिएहिं विसएहिं ।
तह हं कइत्थिउ जह अज्जवि पउणो न हा होसि ।। ५ ।।
हा हा कसायसुहडेहिं ताडिउ तह पभायदंडेण ।
तिजयपहु संयमं पि हु जह संठाणं न हु लहेंमि ।। ६ ।।
तुह विरहे तिहुयणगुरु कयत्थिउ कत्थ कत्थ न हुएहिं ।
रागाइवेरिएहिं अणेग हा हा भवारन्ने ।। ७ ।।
तुह सामित्ताभावे जं पहु पीडंति महं महापावा ।
मिच्छा य पमाय रागा य वेरिणो तं न हु विरूवं ।। ८ ।।

जं पुण तुमंमि संते सरणागयरक्खणक्कमे नाहे ।
वाहिं ति व हुंता पहु हा सरणं कस्स गच्छामि ।। ९ ।।
अहवा को तुह दोसो पहुआणाभंगधारणं दट्ठुं ।
दट्ठुं रुद्धंति ममं पहुमि चित्ते ठिया एए ।।१०।।

तुम्हं चिय किरिभिच्चा मोहाइ अन्नहा कहन्नाह ।
जो सासणे विवट्टइ तुम हं तं चेव निवडंति ।।११।।
अहह अणिज्झेण मए अकज्ज सज्जेण विगयलज्जेण ।
अवमाणिओ तुमंपि हु तिहुयणचिंतामणी देव ।।१२।।

एयावत्तं नीउजेहिं गुरु अंतरंगसत्तूहिं ।
पोसेमि सामि तं चिय हट्टी मह मूढया महइं ॥१३॥
वसिउ सह गेहिं सयं वेसासिओ मुसंति तं चेव ।
स गिहाओ उट्ठिउसिहिं अहह कहं विज्झवेमि अहं ॥१४॥
जं तुण आणा रहिउ विवहाइ सामि वच्छम्मि ।
पंक्खाइ विणा मूढो तुमहं उड्डेउ मिच्छामि ॥१५॥
मुंचामि नो पमायं पत्थेमि पुणो सुहं सरूवायं ।
भक्खिउ मिच्छामि अहं तुयरिओ कोपरणेमि अहं ॥१६॥
इक्कं अकज्जसज्जो अन्नं पुण पुक्करे पहु पुरओ ।
गामं पिपीलिवेउं छट्ठो पगरेमि वाहरणं ॥१७॥
मग्गामि तुम्ह सरणं वसामि मोहस्सरायहाणीए ।
अन्नस्स कडीचडिओ अन्नस्स वहेमि घणमाणं ॥१८॥
मोहाएहि मुसिओ न नामि देहिं रक्खियं सक्को ।
णीया तुयंगमेउ छड्डा विज्जइ कह खरेहिं ॥१९॥

पहुपसभा मय पाणं तुमाउ पत्तं गयं मह पमाया ।
सिरि सुत्तास्स य गच्छइं पहुणा विणयत्तियं अहवा ॥२०॥
अह किं पयासिएणं तुह भव भावाविभावमाणस्स ।
माया मह गिह थुणणं किरउ किं माउ पुरउवि ॥२१॥
जयवि अहं उल्लंठो तहा वि मनु वक्खिउं तुह न जुत्तं ।
अम्माप्पिउणो किं पु पहु वालं उज्झंति कय हाणं ॥२२॥
वम्मह सिरि वद्धाणं मोहमहाराय पासवद्धाणं ।
रागाइनिरूद्धाणं तं चिय सरणं जए इक्को ॥२३॥

तारिक्खरूक्खहारिणिय अंतरंगारिगरूय सेनाउ ।
मुत्तूणं पुमं सामिय सरणं मे नत्थि कोइ जए ॥२४॥
जाणामि सामि सम्मं अभग्गसि सिहरो सहावि अहं ।
तह चिअ पहु देस सरणं मज्झ असरणस्स रहियस्स ॥२५॥

जय जिणनाह न हुंतो तुमं असंबंधबंधबोधणियं ।
नो हं कस्स सयासे सरणं भुवणम्मि मग्गंतो ॥२६॥

पहु पाय पोय मुक्खो अपारसंसारसायरे घोरे ।
जम्मजरमरणजलचरगमणाहं भक्खणं जाओ ॥२७॥

हा नाह तारय रुंदाओ भीमभवसमुद्दाओ ।
तारिउं को सक्को मुत्तूण तुमं तिहुयणे वि ॥२८॥

भयवं भवाडवीए मइ भमंतेण भूरि रिद्धीउ ।
लब्दा उ सुरावेणं न चेव तुह दंसणं पत्तो ॥२९॥

किमए तुमं नं दिट्ठो दिट्ठोवि न वंदिओ सहावेण ।
जेणज्जवि जगबंधव बंधस्स न होइ बुच्छं उ ॥३०॥

कप्पद्दुम्मस्स चिंतामणिस्स लंभाउ अहिय हरिसेण ।
संपइ दिट्ठोसि तुमं पुव्वज्जियपुन्नजोएण ॥३१॥

जाए तुह सेवाए सिवगणं सामि तुह पयविउगो ।
अहं न करेमि तयं पहु पुण संसारो अहो कट्ठं ॥३२॥

मन्ने न नाह मुक्खं मुक्खेवि मुणिंद मुणिय परमत्था ।
पहु पायाणं पुरउ जह जाए मे लुठंतस्स ॥३३॥

किं बहुणा भणिएणं भवमयभीमो भणामि वयणमिणं ।
काउं दयं दयाउर जत्थ तुमं तत्थ मन्नेसु ॥३४॥

इय विन्नत्तो सिरिजिणपहेण पाठेमि जेण परमपहं ।
तंमि मणोमहलीणं निच्चं चिय कुणसु वे राया ॥३५॥

कृतिरियं श्रीजिनप्रभसूरीणां विज्ञप्तिका समाप्ता ।

[लि० प्र० ''संवत् १५६६ वर्षे फागुण सुदि ५ बुधवासरे । श्रीमज्जवण-कपुरवरे । दोर्दण्डाखण्डलप्राज्यराज्य: सुलित्राणशिकर । प्रभुविजये राज्ये । लिखितं श्रीमत्खरतरगच्छे श्रीजिनसिंहसूरि । श्रीजिनप्रभसूर्यन्विये । श्री-जिनराजसूरिशिष्यहेमकुंजरमुनिना । श्रीमालान्वये श्रीभंडारीयागोत्रे सा. जिनदेव तत्पुत्र साह जाल्टा पुत्र पवित्रचतुरचित साह श्रीकरमसिंह । तस्यात्मज परमप्राज्य सकलकलासौन्दर्यसज्जन चतुर्दशविद्यानिधान । उपांग-विद्याप्रधान । परतक्षमदनावतार मूर्ति निजयशोधवलीकृतकीर्ति । संघाधिपति श्रीश्रीश्रीश्रीनथमल्लेन निजपठनार्थं लिखापितं । छ । कल्याणमस्तु । •

(१४) सुधर्मस्वामि-स्तवनम्

(बहुविधच्छन्दोजातियुक्तम्)

आगमत्रिपथगा हिमवन्तं संसृतेर्नतसमूहभवन्तम् ।
नौ समानमभिनौमि सुधर्म-स्वामिनं महति मोहपयोधौ ॥ १ ॥
स धर्मिलो नंदितधर्मिलोकः सा भद्रिला भद्रनिधिर्मुदे नः ।
त्वां सद्गुरोऽजीजनतां नतांह्रि सुरासुरैरादरभासुरैर्यौ ॥ २ ॥
प्रादुर्भावक-दिव्यपंचकचमत्कुर्वाण सच्चेतसो,
वीरस्यादिमपारणेन बहुलाभिख्य द्विजाद्भाविना ।
श्रीकोल्लाकनिवेशनं कथमपि ज्ञात्वेव पावित्र्यवद्,
तत् स्वामिन्निजजन्मनोऽधिकरणीभावं भवान्नीतवान् ॥ ३ ॥
इह भवत्यसुमान् खलु यादृशः
परभवेऽपि स तादृगुतान्यथा ।
इति जिनः श्रुतिवाक्यविचारणा-
परशुना तव संशयमच्छिदत् ॥ ४ ॥
सा पूर्नन्दतु मध्यमपापा
यत्र जिनो महसेनवने त्वाम् ।
माधवधवलबलिन्दमतिथ्यां
तथ्यां संयमसंपदमनयत् ॥ ५ ॥
बोधः प्रव्रज्यामान्तिषत्पञ्चशत्या
गाणेश्वर्यश्रीः सूत्रणं द्वादशाङ्ग्याः ।
सद्योऽमूदृक्षं भाग्यसामग्र्यमग्र्यं
त्वादृक् कोऽन्यत्र क्वापि किं देद्युतीति ॥ ६ ॥
हलास्त्र हर्यरिधरवानमन्तराद्य-
नुत्तरान्तसुरतृतीयवर्ष्मणाम् ।
यथोत्तरं विलसति रूपवैभवं
ततोऽधिकं गणधरदेव तत्तव ॥ ७ ॥

त्वद्दृब्धैव द्वादशाङ्गी युगेऽस्मिन्
स्याद्वादेन प्रास्यमाना कुतीर्थ्यान् ।
त्रैलोक्याचर्या दीप्यते दीप्रदीप—
प्रख्या मोहध्वान्तविध्वंशनेऽसौ ॥ ८ ॥

यथा पाश्चात्यो दुःप्रसहमुनिनाथः किल युग-
प्रधानानां भावी जजनिथ तथा धस्त्वमुदयी ।
गुणाग्रामारामे विचतुरसहस्रद्वयमिता
स्तुते त्वय्येकस्मिन्नपि त इव सर्वेपि विनुताः ॥ ९ ॥

भाति ऋषिचक्रवर्तिन् षड्व्रत षट्खण्डभरतनेतुस्ते ।
निधिनवकं नवतत्त्वी रत्नानि चतुर्दशापि पूर्वाणि ॥ १० ॥

पुलाकलब्धिः परमावधिर्मनः—
पर्यायमाहारक - केवलश्रियौ ।
श्रेण्योर्द्वयं निवृंतिसंयमत्रिके
कल्पश्च जैनोयमनुद्यंपारमन् ॥ ११ ॥

तमपश्चिमकेवलिनं जम्बूनामानमानतमृषीन्द्रैः ।
स्वपदे न्ववीविशस्त्वं न परिद्रढयति हि पात्रं कः ॥ १२ ॥
युग्यम् ।

जैनत्वेऽपि तवास्थेयं वेदे कास्वपि यत्त्वया ।
'शतायुर्वै पुरुष' इत्युक्तिः सत्यापिता प्रभो ! ॥ १३ ॥

पञ्चाशतं तव समाः सदने निवासः
छद्मस्थता वरद षट्गुणसप्तवर्षान् ।
अब्दानि केवलिविहारवतस्तथाष्टौ
सर्वायुरित्थमभवच्छरदं (दां) शतं ते ॥ १४ ॥

जनुरभजत फाल्गुनीषूत्तरासु प्रधानद्विजश्लाघनीयाऽग्निवैशायना — भिजनजलधिचन्द्रमाश्चण्डमार्तण्डतुल्यप्रतापाभिभूताभियातप्रभः । अधिगतवति वर्द्धमाने जिनेन्द्रे शिवश्रीपरीरम्भलीलां च यः पादपो— पगमनमुपगम्य वैभारशैले द्विपक्षीमवापाऽपवर्गं स जीयाद्भवान् ॥१५॥

अपरेऽवसानसमये निरन्वयाः
सुसदृग् गुणा अपि गणाधिपा दश ।
न्यसृजन् गणास्त्वयि यथायथं विभो !
सरितां व्रजा इव पयोनिधावपः ॥ १६ ॥

भगवन् ! गृहरत्नमेककस्त्वं
गणभृद् द्वीपपरम्परायतोऽभूत् ।
अपरे गणधारिणस्तु सूर्या-
नयदन्यत्र महः ससर्प तेषाम् ॥ १७ ॥

उन्नतिमन्तो विस्तृतशाखाः
सुमनःसेव्या अविकलफलदाः ।
येऽत्रक्षेत्रे सम्प्रति गच्छा—
स्तेषां मूलं त्वमसि बतैकम् ॥१८॥

ध्यायति प्रतिदिनं सपर्षदं
त्वां य उज्ज्वलसुवर्णरोचिषि ।
तस्य मंक्तु (मङ्क्षु) गणसंपदेधते
लब्धिभिः स सकलाभिरीयते ॥१९॥

धर्मं शास्ति त्रियुक्त त्रिगुणदशसमायुक् सहस्रैकविंश—
त्यब्दे स्थायी यदीयो जगति सुरनृणां माननीयोऽन्ववायः ।
धीरः श्रीवीरपट्टोदयगिरिशिखरोत्सङ्गशृङ्गारभानु—
र्ज्ञानं स श्रीसुधर्मा वितरतु गणभृत् पञ्चमः पञ्चमं नः ॥२०॥

इति पदलुठत्सौधर्मेन्द्रः सुधर्मगणाधिपः
कृतगुणकणस्तोत्रः स्तोत्रं कुवादिगजव्यधे ।
उपचिततयतु क्षेमस्थेमश्रियं मम निर्मम
प्रभुरभजतो दूरस्थ त्वं जिनप्रभवाध्वन ॥२१॥

इति श्रीसुधर्मस्वामिस्तवनम् ॥छ॥

(१५) ४५ नामगर्भित-आगमस्तवनम्

(आर्याच्छन्दः)

सिरिवीरजिणं सुयरय-रोहणं पणमिऊण भत्तीए।
कित्तेमि तप्पणीयं सिद्धंतमहं जगपईवं ॥ १ ॥
पढमं आयारंगं सूयडं ठावणंग समवायं।
भगवइ अंगं नाया-धम्मकहो-वासगदसा य ॥ २ ॥
अंतगडदसा-अणुत्तार-ववाइदसा वागरण नामं च।
सुहदुहविवागसुइं दिट्ठीवायं च अगाणि ॥ ३ ॥
ओवाई रायप्पसेणि तह जीवभिगम पन्नवणा।
जंबूपन्नत्ती चंद-सूरपन्नत्ति नामाओ ॥ ४ ॥
निरयावलिया कप्पा-वयंसि पुप्फीय पुप्फचूलीय।
वण्हीदसाओ एए वारसुवंगाणि नामाणि ॥ ५ ॥
दसवेयालिय तह ओह-पिंडनिज्जुत्ति उत्तरज्झयणा।
चत्तारि मूलगंधा नंदी अणुओगदाराइं ॥ ६ ॥
चउसरण चंदविज्जग आउर-महपच्चखाणं च।
भत्तपरिन्ना तंदुल-वेयालियं च गणविज्जा ॥ ७ ॥
मरणसमाही देविंदत्थओ य संथार दस पयन्ना य।
वीरत्थय गच्छायार पमुह चउदससहस्सपुरा ॥ ८ ॥

[श्रीपुण्यविजयजी संग्रह, नं. २३४८ पत्र ५, साइज ११॥" × ४॥" शुद्ध, १६वीं शती]

१. स्वागता, २. इन्द्रवज्रा, ३. शार्दूलविक्रीडित ४. द्रुतविलम्बित, ५. उपचित्रा, ६. वैश्वदैवी, ७. रुचिरा, ८. शालिनी, ९. शिखरिणी १०. गीति, ११. इन्द्रवंशा, १२. आर्या, १३. अनुष्टुप्; १४. वसन्त-तिलका, १५. चण्डवृष्टिदण्डक, १६. मंजुभाषिणी, १७. मालभारिणी, १८. अपरान्तिका; १९. रथोद्धता, २०. स्रग्धरा, २१. हरिणी।

निसीह तह कप्प-ववहार पंचकप्पो दसासुयक्खंधो ।
तह महानिसीह एए तत्थेया जीयकप्पो य ।। ९ ।।
पंचपरमिट्ठसामाइयाइं आवस्सयं च छब्भेयं ।
निजुत्ति-चुन्नि-वित्ति विसेस आवस्सयाइं जुयं ।।१०।।
इय जिणपहेण गुरुणा रइया सिद्धंतमालनामेण ।
पणयालीसपमाणं णिय-णियणामेण णायव्वा ।।११।।

इति ४५ आगमस्तवनम् ।।

[अभय जैन ग्रन्थालय प्र० सं० ९५५० पत्र १ साइज १०' × ४'
लें० प्र० "पं० कनकसोमेन लिखितं" श्री० भरही पठनार्थं"
अनुमान १७ वीं शती]

●

(१६) जिनप्रभ-रचिता

परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका

धर्माधर्मान्तरं मत्वा, जीवाजीवादितत्त्ववित् ।
ज्ञास्यसि त्वं यदात्मानं तदा ते परमं सुखम् ।। १ ।।
यदा हिंसां परित्यज्य कृपालुस्त्वं भविष्यसि ।
मैत्र्यादिभावना भव्य-स्तदा ते परमं सुखम् ।। २ ।।
न भाषसे मृषा भाषां विश्वविश्वासघातिनीम् ।
सत्यं वक्ष्यसि सौहित्यं तदा ते परमं सुखम् ।। ३ ।।
परपीडां परिज्ञाय यदाऽदत्तं न लास्यसि ।
परार्थं हि परार्थाय तदा ते परमं सुखम् ।। ४ ।।
यदा सद्धर्ममथनान्मैथुनात्त्वं विरज्यसि ।
ब्रह्मव्रतरतो नित्यं तदा ते परमं सुखम् ।। ५ ।।
यदा मूर्च्छां विधायोच्चै-र्धनधान्यादिवस्तुषु ।
परिग्रहग्रहान्मुक्त-स्तदा ते परमं सुखम् ।। ६ ।।

स्वरे श्रव्ये च वीणादौ खरोष्ट्रीणां च दुःश्रवे ।
यदा सममनोवृतिस्तदा ते परमं सुखम् ।। ७ ।।
इष्टेऽनिष्टे यदा दृष्टे वस्तुनित्यस्तशस्तधीः ।
प्रीत्यप्रीतिविमुक्तोसि तदा ते परमं सुखम् ।। ८ ।।
घ्राणदेशमनुप्राप्ते यदा गन्धे शुभाशुभे ।
रागद्वेषौ न चेत्तत्र तदा ते परमं सुखम् ।। ९ ।।
यदा मनोज्ञमाहारं यद्वा तस्य विलक्षणम् ।
समासाद्य तयोः साम्यं तदा ते परमं सुखम् ।।१०।।
सुखदुःखात्मके स्पर्शे समायाते समो यदा ।
भविष्यसि भवाभावी तदा ते परमं सुखम् ।।११।।
मुक्त्तवा क्रोधं विरोधं च सर्वसंतापकारकम् ।
यदा शमसुधासिक्त-स्तदा ते परमं सुखम् ।।१२।।
मृदुत्वेनैव मानाद्रिं यदा चूर्णी करिष्यसि ।
मत्वा तृणमिवात्मानं तदा ते परमं सुखम् ।।१३।।
यदा मायामिमां मुक्त्तवा परवंचकतापराम् ।
विधास्यस्याज्र्जवं वर्यं तदा ते परमं सुखम् ।।१४।।
यदा निरीहतानावा लोभांभोधिं तरिष्यसि ।
सन्तोषपोषपुष्टः सन् तदा ते परमं सुखम् ।।१५।।
कषायविषयाक्रान्तं भ्रमस्त्वां (?) तमनारतम् ।
यदात्मारामविश्रान्तं तदा ते परमं सुखम् ।।१६।।
यदा गर्वान्वितां व्यर्थां विमुच्य विकथाकथाम् ।
वचोगुप्त्याथ गुप्तोसि तदा ते परमं सुखम् ।।१७।।
अंगोपांगानि संकोच्य कूर्मवत्संवृतेन्द्रियः ।
यदा त्वं कायगुप्तोसि तदा ते परमं सुखम् ।।१८।।
निर्वास्यसि घनंघोरं रागोरुगमहाविषम् ।
यदा सदागमास्वादात्तादा ते परमं सुखम् ।।१९।।

यदा कृपा कृपाणेन रागद्वेषौ विनापिहि ।
हनिष्यसि सुखान्वेषी तदा ते परमं सुखम् ।।२०।।
यदा मोहमयीनिद्रां ध्रुवं विद्रावयिष्यसि ।
अस्ततंद्रः सदाभद्र-स्तदा ते परमं सुखम् ।।२१।।
प्रमादं परिहृत्याशु यदा सद्धर्मकर्मणि ।
समुद्यतोसि निश्शंक-स्तदा ते परमं सुखम् ।।२२।।
यदा कामं प्रकामं तु निराकृत्य विवेकतः ।
शुद्धध्यानधनोषित्वं तदा ते परमं सुखम् ।।२३।।
यदा हर्ष विषादं च करिष्यसि कदापि न ।
सुखे दुःखे समायाते तदा ते परमं सुखम् ।।२४।।
यदा मित्रेऽथवामित्रे स्तुति-निन्दां विधातरि ।
समानं मानसं तत्र तदा ते परमं सुखम् ।।२५।।
लाभाऽलाभे सुखे दुःखे जीविते मरण तथा ।
औदासीन्यं यदा ते स्या-त्तादा ते परमं सुखम् ।।२६।।
यदा यास्यसि निःकर्मा साधुधर्मधुरीणताम् ।
निर्वाणपथसंलीन-स्तदा ते परमं सुखम् ।।२७।।
निर्ममो निरहंकारो निराकारं यदा स्वयम् ।
आत्मानं ध्यास्यसि ध्यायं तदा ते परमं सुखम् ।।२८।।
निंश्शेषदोषमोक्षाय यदिष्यसि यदा सदा ।
परात्मगुणतां यात-स्तदा ते परमं सुखम् ।।२९।।
योक्ष्यसे सद्गुणग्रामैरात्मानं परमात्मना ।
यदा त्वं तत्स्वरूपः सं-स्तदा ते परमं सुखम् ।।३०।।
यदात्मज्ञानसम्पन्नः परमानंदनन्दितः ।
पुण्यपापविनिर्मुक्त- स्तदा ते परमं सुखम् ।।३१।।
आत्म-पद्मवनं ज्ञान-भानुना बोध्य लप्स्यसे ।
यदा जिनप्रभां वर्यां तदा ते परमं सुखम् ।।३२।।

इति श्रीजिनप्रभसूरिकृता
।। परमतत्त्वावबोधद्वात्रिंशिका ।।

शास्त्रसंग्रह छाणी की प्रति से

(१७) हीयाली

अकुलु अमूलुअ जोणी संभवु निर्मल वण्णु सो दीसइ
हरिहर बंभु न सिद्धनु गोरसु इंदु चंदु न सलीसइ ।। १ ।।
आ आ बूझहु पंडित विचारू । संनु निरंजनु थानु जु
भणियइ,तहि निवसइ निरधारु ।।आंचली।।
फिरइ न मरइ न जीउ धरइ सो न पियइ नीक न जेमइं ।
हासण कर करिस विहूणउं धरण न जाई केमई ।। २ ।।
कदा कालि दृष्टि गोचरि आवइ ध्यानु जुगति नहु पारइ
अकलु सकलु अति रूपि मनोहरु देखत जन सुहकारइ ।। ३ ।।
इसउ पुरिषु तउ परओखलि लखिजइ जउगुरु करइ पसाउ ।
परमारथ थिति इकु पर जाणइ जिणप्रभसूरि मुणिराउ ।। ४ ।।

•

हीयाली

पहाड़िया रागः

चारि चलण चउ सवण चउरभुज बंधण करइ पचारि
बूझहु सकल सयाणा पंडित कासु कहउं सा नारी ।। १ ।।
संनेहा चे कारणियारे अति गाहइ अति लीगी
हुंकारइ पर हुइ न भुयंगी चारि

•

(१८) कालचक्रकुलकम्

अवसप्पिणि उसप्पिणि भेएणं होइ दुविहउ कालो ।
सागरकोडाकोडीउ वीसा एसो समप्पेइ ।। १ ।।
सुसमसुसमादि सुसमा सूसमदुसमा य दुसमसुसमा य ।
पंचमिया पुण दूसम तह दूसमदूसमा छट्ठी ।। २ ।।

तत्थ चत्तारिसागर-कोडाकोडीउ सुसमसुसमा य ।
तिन्नि सुसमाइ नामं दुन्नेवय सुसमदुसमाए ।। ३ ।।
दूसमसुसमा एगा-कोडाकोडींदूचत्तसहसूणा ।
इगवीसवरिस सहसा दूसहं तह दूसमाणं तु ।। ४ ।।
इय दसकोडाकोडी अमराणवसप्पिउपरिमाणं ।
एमेवोसप्पिणि पुण दुण्हं पि हु वीसकोडीउ ।। ५ ।।
अवसप्पिणि छ अरया एमेवोसप्पिणं ईव चरीया ।
एवं वारस अरए विवट्टइ कालचक्कमिणं ।। ६ ।।
पढम दु तिरयाणं ति-दु-इग पलिउव आउयं कमसो ।
ति दु इग कोसुच्चत्तं ति दु इग दिवसाण आहारो ।। ७ ।।
कप्पद्दुमफलाणं सत्त ठ्ठवगु इगुणसीई ७९ बालंमि ।
सोलसवग्गद्धद्धं पिट्ठींवसा मुणेयव्वा ।। ८ ।।
मज्जंकघालपल्लंक तूरजोइयफुल्लभोयणयं ।
भूसणगेहागार वत्तांगा दसविहा रुक्खा ।। ९ ।।
चुलसीइ पुव्वलक्खा तिवरसद्धद्धमाससेसाओ ।
तइयर भरहपिया जाउ उसहो भरहवासे ।।१०।।
तेवीसं तित्थयरा अजियाईया चउत्थ अरयंमि ।
तह बारस ए चक्की हरि-बल-पडिवासदेव नव ।।११।।
चउत्थारय धुरि पणसय धणूसया पुव्वकोडिवरिसाओ ।
अंते य सत्ताहत्थी वरस सयाऊ नरा हुंति ।।१२।।
इगुणनवइ पक्खंसो चउत्थ अरयम्मि निव्वुओ वीरो ।
इगुणनवइपक्खंते नवमे अरये पउमजम्मो ।।१३।।
चुलसीयं च सहस्सा वासासत्तेय पंचमासा य ।
वीरमहापउमाणं अंतरमयं सुणेयव्वं ।।१४।।
वीरजिणे सिद्धिगए वारसवरसम्मि गोयमो सिद्धो ।
तह वीराउ सुहम्मो वीसहिं वरसेहिं सिद्धिगओ ।।१५।।

वीरजिणे सिद्धिगए चउसठिवरिसम्मिं जबुनामस्स ।
केवलनाणेण समं वुच्छिन्ना दस इमे ठाणे ॥१६॥
मण-परमोहि पुराए आहारग-खवग-उवसमे कप्पे ।
संजमतिय केवलि सिज्झाणाय जंबुम्मि वुच्छिन्ना ॥१७॥

चउदसपुव्वच्छेओ वरिससए सत्तरीय अहियम्मि ।
भद्दवाहुम्मि जाओ वीरजिणंदे सिवं पत्तो ॥१८॥
पुव्वाणं अणुओगे संघयणं पयय संठाणं ।
सुहम महापाणिणया बुच्छिन्ना थूलभद्दम्मि ॥१९॥

दसपुव्वि वि वुच्छेओ वयरे तह अट्ठकीलिसंघयणं ।
पंचहिं वाससएहिं चउरासी एस महिएहिं ॥२०॥
तह अज्जरक्खिनाहे वुच्छिन्ना सद्दनवय पुव्वाय ।
सुन्नमणि वेयसंखाओ विक्कमकालाए जिणकालं ॥२१॥

इगुणवीसवरिससएहिं चउदसवरिसम्मि वीरनिव्वाणे ।
छासीइ वरिसे होही कक्की चंडो व पडिकूलो ॥२२॥
पाडलपुरम्मि कक्की चंडालघरम्मि चित्तमासम्मि ।
अट्ठमि बुट्ठी जाओ चउम्मुहो बीय नामं तु ॥२३॥
कक्की हणिउं दत्तं तत्पुत्तो भावगं करिवि इंदो ।
रज्जे ढविउं भो पुण पुरे पुरे चेइयं होही ॥२४॥
पंचम अरयस्संते दुहत्थमणुयाउ वीसवरिसाओ ।
इह छट्ठअट्ठमपरं अट्ठमिंमिदो करावही ॥२५॥
दुप्पसहो फग्गुसिरी नायल सढ्ढोय सच्चसिरी सट्ठी ।
तह विमलवाहण निवो सोहमो य अपच्छिमो मंती ॥२६॥
सोहम्मे दप्पसहो एगवयारी दसालिय धरो य ।
सोहम्मा उ सागर विमाणाउच्चुओसि सही भरहे ॥२७॥
पच्चूसे जिणधम्मो मज्झण्हेनासिहीनिवइ धम्मो ।
अग्गी विपच्छिमद्धे दुसभाए अंतसमयम्मि ॥२८॥

घोऽमुहमंसभक्खग कसिणा चिविडा जंति तिरिनरए।
छट्ठंते इगहत्था विलवासी सोलवरिसाउ ॥२९॥
नव नव दु तडासन्ने रहचक्कवाहाण गंगसिंधूणं।
सव्वे विलवाहभरि वेयड्ढे आरओ पुरओ ॥३०॥
छव्वरिस गब्भधरित्थी छ सत्त अरए तहेव अट्ठमए।
पुक्खलसंवट्टयखीर अमियरसयं च मेह हमे ॥३१॥
इक्किक्को सत्तदिणे वरिसेहि तत्थडि बुई पुढवें।
पढमो बीओ धन्नं तेहं तइउ चउत्थो य ॥३२॥
पोसेइ उ सहिओ तह रस दव्वाइं पंचमं मेहो।
अह नवमे अरयम्मि य सलाण पुरिसाण ते वट्ठी ॥३३॥
अबुहजणबोहणत्थं(तहा अ) अप्पणो समासेण।
कालचक्कस्स गाहा जिणपहसूरीहिं संठविया ॥३४॥

इति कालचक्ककुलकं समाप्तं

[ले० १७वीं० 'सुखनिखान पठनार्थम्' अभयजैन ग्रन्थालय प्रति २१८४]

•

श्री जिनप्रभसूरि परंपरा गीतम्

खरतर गच्छि **वर्द्धमान**-सूरि, जिणे**सर** सूरि गुरो।
अभयदेव सूरि **जिणवलह** सूरि **जिणदत्त** जुगपवरो ॥ १ ॥
सुगुरू परंपर थुणहु तुम्हि, भवियहु भत्ति भरि।
सिद्धि रमणि जिम बरई सयंवर नव नविय परि ॥ आंचली ॥
जिणचन्दसूरि **जिणपति**सूरि, **जिणेसर** गुणनिधानु।
तदनुबुमि उपनले सुगुरु, जिण**सिंघसूरि**जुगप्रधानु ॥ २ ॥
तासु पाटि उदयगिरि उदयले, **जिनप्रभ** सूरि भाणु।
भविय कमल पडिबोहवु, मिच्छत तिमिर हरणु ॥ ३ ॥

राउमहंमद साहि जिणि, निय गुणि रंजियऊं ।
मेढ मंडलि **ढिल्लिय** पुरि, जिण धरमु प्रकटु किऊं ।। ४ ।।
तसु गछ धुर धरणु भयलि, **जिणदेव**सूरि सूरिराऊं ।
तिणि थापिउ जिणमेरुसूरि, नमहु जसु मनइ राऊ ।। ५ ।।
गीतु पवीतु जो गायए, सुगुरु—परंपरह ।
सयल समीह सिझहिं, पुहविहिं तसु नरह ।। ६ ।।

जिनप्रभसूरीणां गीतम्

के सलहउ ढीली नयरु हे, के वरनउ वखाणू ए ।
जिनप्रभसूरि जग सलहीजइ, जिनि रंजिउ **सुरताणु** ।। १ ।।
चलु सखि वंदण जाण्ह गुण गरुवउ **जिनप्रभ**सूरि ।
रलियइ तसु गुण गाहिं राय-रंजणु पंडिय-तिलउ ।। आंचली ।।
आगमु सिद्धंतु पुराणु वखाणिइ, पडिवोहइ सव्वलोइ ए ।
जिणप्रभसूरि गुरु सारिखउ हो विरला दिसउ कोई ए ।। २ ।।
आठाही आठमिहि चउथी, तेजवइ सुरिताणु ए ।
प्रह सितु मुग्व **जिनप्रभ**सूरि चलियउ, जिमिससि इंदुविमणिए ।।३।।
"असपति" "**कुतुबदीनु**" मनि रंजउ, दीठेल जिनप्रभसूरी ए ।
एकंति हि मन सासउ पूछइ, राय मणोरह पूरी ए ।। ४ ।।
गाममूरिय पटोला गज वल, तूठउ देइ सुरिताणू ए ।
सूरि **जिणप्रभ**गुरु कंपि नई छइ, तिहुअणि अमलिय माणू ए ।। ५ ।।
ढाले दमामा अरु नीसाणा, गहिरा वाजइ तूरा ए ।
इन परि जिणप्रभसूरि गुरु आवइ, संघ मणोरह पूरा ए ।। ६ ।।

श्री जिनप्रभसूरि गीत

उदय ले खरतर गच्छ गयणि, अभिनवउ सहस करो ।
सिरी **जिणप्रभ**सूरि गणहरो, जंगम कल्पतरो ।। १ ।।
वंदहु भविक जन जिणसासण, वठ नव वसंतो ।
छतीस गुण संजूत्तो वाइय मयगल दलण सीहो ।। आंचली ।।

तेर पंचासियइ पोस सुदि आठमि, सणिहिं वारो।
भेटिउ असपते "**महमदो**" सुगुरि **ढीलिय** नयरे ॥ २ ॥
आपुणु पास बइसारए, नमिवि आदरि नरिन्दो।
अभिनव कवितु बखाणिवि, राय रज्जइ मुणिंदो ॥ ३ ॥
हरखितु देइ राय गय तुरय, धण कणय देस गामो।
भणइ अनेवि जे चाह हो, ते तुह दिउ इमो ॥ ४ ॥
लेइ णहु किंपि **जिणप्रभसूरि**, मुणिवरो अतिनिरीहो।
श्रीमुखि सलहिउ पातसाहि, विविह परि मुणिसीहो ॥ ५ ॥
पूजिवि सुगुरु वस्त्रादि कहिं, करिवि सहिथि निसाणु।
देइ फुरमाणु अनु कारवाइ, **नव वसति** राय सुजाणु ॥ ६ ॥
पाट हथि चाडित्रि जुगपवरु, **जिणदेवसूरि** समेतो।
मोकलइ राउ पोसालहं वहु, मलिक परिकरीतो ॥ ७ ॥
वाजहि पंच सवुद गहिर सरि, नाचहि तरुण नारि।
इंदु जम गइंद सहितु, गुरु आवइ **वसतिहिं** मझारे ॥ ८ ॥
धम्म धुर धवल संघवइ सघल, जाचक जन छिति दानु।
संघ संजूत वहु भगति भरि, नमहिं गुरु गुणनिधानु ॥ ९ ॥
सानिधि **पउमिणि**-देवि रम, जगि जुग जयवन्तो।
नंदउ **जिणप्रभसूरि** गुरु, संजम सिरि तणउ कंतो ॥१०॥

जिनदेवसूरि गीत

निरुपम गुण गण मणि निधानु संजमि प्रधानु।
सुगुरु **जिणप्रभसूरि** पट उदयगिरि उदयले नवल भाणु ॥ १ ॥
वंदहु भविय हो सुगुरु **जिणदेवसूरि ढिल्लिय** वर नयरि देसणउ।
अमियरसि वरिसए मुणिवरु जणु ऊनह्निउ ॥ आंचली ॥
जेहिं **कन्नाणापुर** मंडणु सामिउ **वीर** जिणु।
महमद राइ समप्पिउ थापिउ सुभलगनि सुभदिवा ॥ २ ॥

नाणि विन्नाणी कला कुसले विद्या वलि अजेउ ।
लखण छंद नाटक प्रमाण वखाणए आगमिगुण अमेउ ।। ३ ।।
धनु **कुलधरु** कुलि उपनुं इहु मुणिरयणु ।
धणु **वीरिणि** रमणि चुडामणि जिणि गुरु उरि धरिउ ।। ४ ।।
धणु **जिणसिंघसूरि** दिखियाउ धनु चन्द्र गछु ।
धणु **जिणप्र**सूरि निज गुरु जिणि निज पाटिहि थापियउ ।। ५ ।।
हलि सखे 'हाणउ सोहावणिय रलियावणिय ।
देसण **जिणदेव**सूरि मुणिरायहं जाणउँ नित सुणउ ।। ६ ।।
महि मंडलि धरमु समुधरए जिणसासणिहि ।
अणुदिण प्रभावन करइ गणधरो, अवयारउ वयरिसामि ।। ७ ।।
वादिय मयगल-दलणसीहो विमल सीलधरु ।
छत्रीस गुणधर गुण कलिउ चिरु जयउ **जिणदेव**सूरि गुरु ।। ८ ।।

"इति श्रीआचार्याणां गीतपदानि"